# हिन्दी उपन्यासों में दाम्पत्य जीवन

## १९१८–१९७०

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशिका
डा० आशा गुप्त

प्रस्तुत कर्त्री
अलका दुबे

हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय
प्रयाग

सितम्बर १९७४

स्मृति शेष पिता

पण्डित उमेशचन्द्र मिश्र

को सादर —

## भूमिका

साहित्य और समाज का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है । समाज में जो कुछ घटित होता है, उससे अछूता रहे कर साहित्यकार साहित्य का सर्जन नहीं कर सकता और साहित्यकार साहित्य के द्वारा समाज को जो कुछ देता है, उससे प्रभावित हुये बिना समाज नहीं रह सकता है । साहित्य में काव्य की रचना कवि देशकाल से परे अपनी अनुभूति में व्याप्त होकर कर सकता है परन्तु उपन्यासकार उपन्यास की रचना समाज से अलग हट कर नहीं कर सकता है, क्योंकि उपन्यास मानव-जीवन की कथा को कहता है और यह निर्विवाद सत्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है ।

समाज का आधार परिवार है और परिवार के प्राण दम्पती होते हैं । प्रत्येक व्यक्ति हर क्षण दाम्पत्य-जीवन के मध्य से गुजरता है भले ही वह उसका अपना दाम्पत्य-जीवन न होकर किसी दूसरे का हो । प्रत्येक स्थान पर प्रतिदिन, प्रतिक्षण और प्रतिपल जिये जाने वाले दाम्पत्य-जीवन की उपेक्षा उपन्यासकार नहीं कर पाये हैं । समाज में दाम्पत्य-जीवन केन्द्र और परिधि दोनों ही है इसलिए उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यासों में दाम्पत्य-जीवन को विशेष महत्त्व दिया है ।

हिन्दी-उपन्यासों के आधार पर गत वर्षों में पर्याप्त शोध-कार्य हुआ है । डा० चण्डीप्रसाद जोशी द्वारा प्रस्तुत 'हिन्दी-उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन' में १९१७ से १९५० तक के सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में नारी समस्या पर विचार किया गया है और नारी-समस्या के अन्तर्गत दाम्पत्य-जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है । डा० सुरेश सिन्हा ने 'हिन्दी-उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना' शोध-प्रबन्ध में 'गृहस्थ नायिकाएँ' अध्याय के अन्तर्गत अनमेल विवाह, पातिव्रत धर्म, आभूषण-प्रेम, विवाहित जीवन में पति की अपेक्षा प्रेमी को अधिक महत्त्व देना आदि बिन्दुओं से नारी के पारिवारिक जीवन को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । डा० गीतालाल ने

अपने शोध-प्रबन्ध 'प्रेमचन्द का नारी-चित्रण' में प्रेमचन्द कालीन दाम्पत्य-जीवन को नारी के संदर्भ में उभार देने का प्रयत्न किया है । नारी-जीवन से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण शोध कार्य डा० बिन्दु अग्रवाल ने 'हिन्दी उपन्यासों में नारी-चित्रण' पर प्रयाग विश्व-विद्यालय से १९६० में किया है । इस शोध-प्रबन्ध में १९५० तक के हिन्दी-उपन्यास ही लिये गये हैं । अत: स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद तेज़ी से बदलते सामाजिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय नारी की अधुनातन समस्याएं इसमें अछूती ही रह गई हैं । नारी की स्थिति पर एक और महत्त्वपूर्ण कार्य 'हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में नारी-चित्रण' मगध विश्वविद्यालय में डा० रामविनोद सिंह द्वारा किया गया है । परन्तु इस प्रबन्ध में दाम्पत्य-जीवन पूर्णत: उभर नहीं पाया है । इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी-उपन्यासों से सम्बन्धित शोध कार्यों में नारी-जीवन को उठाया गया है परन्तु दाम्पत्य-जीवन की दृष्टि से यह प्रयास नहीं के बराबर है क्योंकि नारी दाम्पत्य-जीवन का अर्धांश भाग है और मात्र नारी पक्ष से दाम्पत्य-जीवन को परखने पर पुरुष, जो स्वयं भी अर्धांश होता है, नितांत उपेक्षित हो जाता है । इस शोध-प्रबन्ध में पति एवं पत्नी दोनों से सम्बन्धित व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में उठने वाली अनेक समस्याएं हिन्दी-उपन्यासों में किस प्रकार चित्रित हैं इस का स्पष्ट विवेचन है । अत: यह शोध-प्रबन्ध अपने विषय एवं विवेचन की दृष्टि से नितान्त मौलिक एवं उपादेय है ।

आज जब कि 'विवाह' को एक 'रूढ़िगत संस्था' माना जा रहा है, 'विवाह संस्था टूटेगी या बनी रहेगी' आदि प्रश्न उठ रहे हैं, साथ ही 'विवाह के मारल कोड' को समाप्त कर देने के सुझाव दिये जा रहे हैं, ऐसी स्थिति में दाम्पत्य-जीवन अध्ययन का विषय स्वयं बन जाता है । दाम्पत्य-जीवन के प्राचीन मापदण्ड समाप्त हो चुके हैं और नवीन मापदण्ड अभी निर्धारित नहीं हो पाये हैं, इस स्थिति में उपन्यासकार और समाजशास्त्री समान रूप से सामाजिक व्यवस्था को कायम रखने के लिये वैवाहिक-जीवन के नये मूल्यों को निर्धारित करने की दिशा में प्रयत्नशील हैं । दाम्पत्य-जीवन के बिखराव और तनाव की स्थिति में सामाजिक दृष्टिकोण के साथ ही शिल्प की दृष्टि से भी साहित्य में दाम्पत्य-जीवन का अध्ययन आवश्यक हो जाता है । इस प्रकार साहित्य और समाज की स्थिति को देखते हुए प्रस्तुत शोध विषय अपने महत्त्व को स्वयं ही स्पष्ट कर देता है ।

दाम्पत्य-जीवन समाज की ऐसी आधारभूत संस्था है जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों से पूर्णतः प्रभावित होती है । १६१८ से पूर्व हिन्दी-उपन्यास-साहित्य दो युग समाप्त कर चुका था । देश की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक स्थिति क्रान्ति के मध्य से गुजर रही थी । १६ वीं शताब्दी में प्रारम्भ होने वाले समाज-सुधारक आन्दोलनों, ब्रह्मसमाज, आर्य समाज तथा थियोसोफिकल सोसाइटी, का प्रभाव सामाजिक रूढ़ियों पर विशेष रूप से पड़ा । समाज के दलित-वर्ग, विशेष रूप से स्त्री-वर्ग, की स्थिति में सुधार के प्रयत्न किये गये । सती-प्रथा-विरोध, बाल-विवाह-विरोध, विधवा-विवाह और अन्तर्जातीय-विवाह के प्रति समाज सुधारक विशेष आग्रहशील रहे । आन्दोलनों के परिणामस्वरूप १८५६ में 'विधवा-पुनर्विवाह-कानून' के पास हो जाने से हिन्दू-समाज में एक बहुत बड़ा परिवर्तन आया । १८७२ में केशवचन्द्र सेन के प्रयत्नों के फलस्वरूप 'विशेष-विवाह-कानून' द्वारा अन्तर्जातीय विवाहों को मान्यता दी गयी । १६२८ में बाल-विवाह-विरोध कानून पास हुआ तथा १६२६ में उत्तराधिकार कानून द्वारा स्त्री को भी सम्पत्ति में समानाधिकार मिल गये ।

बीसवीं शताब्दी में लोकनायक तिलक, महात्मागान्धी, लाला लाजपतराय, सुभाषचन्द्रबोस, जवाहरलाल नेहरू जैसे राष्ट्र-प्रेमी राजनीतिज्ञों और स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रामतीर्थ तथा अरविन्द जैसे क्रान्तिदर्शी मनीषियों के विचारों से देश में एक प्रकार की वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ ।

१६१४ में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ था और १६१६ में समाप्त हुआ । इस समय के अनन्तर अंग्रेजों ने भारतीय जन से वादे करके जो सुनहरे स्वप्न दिखाये थे, वे अन्त में मृगतृष्णा साबित हुये, अतएव भारतवासियों का हृदय पीड़ा से भर उठा । सन् १६१७ में रूस में साम्यवादी शासन स्थापित हुआ । फलतः भारत के युवक भी मनुष्य-मनुष्य का भेद-भाव दूर करने के लिये छटपटाने लगे । सन् १६१६ में जलियानवाला बाग का काण्ड हुआ जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जनता में हिंसात्मक क्रान्ति का श्रीगणेश हो गया । हड़तालें, पिकेटिंग तथा असहयोग-आन्दोलन उग्ररूप पकड़ते जा रहे थे । सम्पूर्ण भारतीय जनता राष्ट्रीयता के एक सूत्र में बंध कर अंगरेजों का विरोध कर रही थी । स्त्रियों ने घरों से निकल कर सामाजिक-कार्यों में सक्रिय सहयोग दिया । श्रीमती

सरोजनी नायडू, श्रीमती कमला नेहरू आदि नारियों को स्वतंत्रता-आन्दोलन में भाग लेने के कारण कारावास भी हुआ, जिसका प्रभाव सामाजिक ढांचे पर प्रतिक्रियावादी रूप से पड़ा ।

इन सब स्वदेशी-आन्दोलनों के अनन्तर भारतीय-समाज के वर्ग विशेष को अंगरेजी शिक्षा के माध्यम से आई अंगरेजी संस्कृति ने भी पर्याप्त रूप से प्रभावित किया। आन्तरिक रूप से भारतीय होते हुए भी हमारा बाह्य जीवन अंगरेजों की संस्कृति की नकल करने में व्यस्त था, आखिर कुछ भी हो पाश्चात्य संस्कृति शासक वर्ग की संस्कृति थी, जिसका अनुकरण गौरव की वस्तु ही माना जाता रहा है । सामाजिक-आन्दोलन, राष्ट्रीय-आन्दोलन तथा आर्थिक-स्थिति ने जितना दाम्पत्य-जीवन को प्रभावित किया उतना ही भारतीय-दाम्पत्य-जीवन को पाश्चात्य संस्कृति ने भी प्रभावित किया, इसमें शंका नहीं है ।

साहित्य की दृष्टि से भी सन् १९१८ हिन्दी-साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । प्रेमचन्द से पूर्व जो उपन्यास रचे गए थे वे तिलस्मी, जासूसी शृंगारिक अथवा आदर्श-प्रधान थे । प्रेमचन्द ने सन् १९१९ में 'सेवासदन' की रचना की जिसमें स्वत्त्व की रक्षा में तत्पर नारी का चित्रण उपन्यास-साहित्य में प्रथमबार इतनी यथार्थवादी दृष्टि से हुआ है । काव्य में छायावाद का प्रारम्भ भी इसी समय हुआ । प्रसाद का 'झरना' कविता-संग्रह इसी समय प्रकाशित हुआ ।

सन् १९१४ से १९१८ के मध्य हुई राष्ट्रीय क्रान्ति सन् १९४७ तक भारतीय जीवन को पूर्णत: आच्छादित किये रही । हिन्दी के उपन्यासों में चाहे वे आदर्श-प्रधान हों चाहे यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक, भारतीय जनजीवन की तत्कालीन स्थिति का चित्रण हुआ है, जिससे भारतीय दाम्पत्य-जीवन में क्रमश: आने वाले भावनात्मक, वैचारिक सैद्धान्तिक तथा मनोवैज्ञानिक परिवर्तन स्पष्ट होते हैं ।

सन् १९४६ में द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हुआ और १५ अगस्त १९४७ में भारत को स्वतंत्रता मिली । भारतवासियों में भारत की स्वतंत्र स्थिति के प्रति जो सुन्दर कल्पनाएं थीं, वे स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् एक भ्रान्ति ही प्रमाणित हुईं । देश का सम्पूर्ण आर्थिक और सामाजिक ढांचा हिल गया । आज जब हम स्वतंत्र भारत की

रजत जयन्ती मना चुके हैं हम अनुभव करते हैं कि वस्तुत: यह स्वतंत्रता व्यर्थ हुई । १९४७ से १९७० के मध्य देश चार पंचवर्षीय योजनाओं तथा दो सीमाबन्दी के युद्धों के परिणामों को सहन कर चुका है । बढ़ती हुई बेरोजगारी, आर्थिक कठिनाई और साथ ही विभिन्न संस्कृति के सम्मिश्रण ने भारतीय दाम्पत्यजीवन को पुन: नए मोड़पर लाकर खड़ा कर दिया । नारी की सामाजिक स्थिति में सुधार भी हुआ है । १९५५ में हिन्दू-विवाह-कानून के द्वारा विवाह की समाप्ति की व्यवस्था कर दी गयी । यद्यपि यह नियम कुछ राज्यों में स्वतंत्रता से पहले ही लागू हो गया था, जिसका चित्रण प्रेमचन्द तथा उनके समय के लेखकों ने अपने उपन्यासों में किया है परन्तु राष्ट्रीय-स्तर पर इसको सन् १९५५ में ही मान्यता मिली । दाम्पत्य-जीवन की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण कदम था, जिसका प्रभाव भारतीय दाम्पत्य-जीवन पर पड़ा । स्त्री की स्थिति भी अब आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने लगी क्योंकि वह भी पुरुष की भांति भिन्न क्षेत्रों में अर्थोपार्जन के लिए कार्य करने लगी है । आर्थिक रूप से स्वतंत्र नारी किसी भी ऐसी सामाजिक नियमों की संहिता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है जो उसपर पुरुषों के आधिपत्य की मान्यता बलपूर्वक थोपती है । नारी की स्थिति ने वर्तमान दाम्पत्य-जीवन को पूर्णत: प्रभावित किया । परम्परागत नैतिकता और सदाचार के नियम पिछड़ते जा रहे हैं और भावनात्मक निष्ठा ही विवाह का आदर्श बन गया है । नवीनतम स्थिति में पत्नी दुहरे जीवन को ढोती हुई कहीं टूट भी रही है, क्योंकि पारिवारिक उत्तरदायित्व उसके कम नहीं हुए हैं और अर्थोपार्जन की दृष्टि से बाह्यजीवन का बोझ भी उसे सहना पड़ता है, जो उसके लिए अतिरिक्त बोझ है — पति की स्थिति परिवार में आज भी वही है जो स्वतंत्रता से पूर्व थी ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में सन् १९१८ से १९७० तक के विस्तृत काल में जिये जाने वाले दाम्पत्य-जीवन को उपन्यासों के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है । सामाजिक यथार्थ को उपन्यासकार कहां तक ग्रहण कर पाया है और उसे किस स्तर तक साहित्यिक रूप से प्रस्तुत करने में सफल हो पाया है, इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए सम्पूर्ण विवेचन किया गया है ।

संसार की सम्पूर्ण मानवता उसी रूढ़ि संस्था 'कुटुम्ब' के सहारे कायम है और वह रूढ़ि संस्था 'विवाह' पर टिकी है । इस कथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रथम

अध्याय में दाम्पत्यजीवन के आधार 'विवाह' पर विचार किया गया है । प्रथम अध्याय के प्रथम भाग में संस्कृत के आचार्यों, आधुनिक भारतीय-विचारकों, पाश्चात्य-विचारकों तथा उपन्यासकारों द्वारा 'विवाह' के विषय में दिये गए मन्तव्यों के आधार पर विवाह की सामाजिक स्थिति और उपदेयता को निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया है । द्वितीय भाग में यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि समाज में प्रचलित विवाह प्रणालियों को तथा विवाह के समय उत्पन्न होने वाली समस्याओं को हिन्दी के उपन्यासकारों ने किस रूप में उठाया है और उनको चित्रित करने में कहाँ तक सफल हुए हैं ।

द्वितीय अध्याय में बहुपत्नीत्त्व और अनमेल-विवाह की समस्या को दो स्वतंत्र खण्डों में विभक्त करके स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है । वस्तुत: बहुपत्नीत्त्व विवाह की एक विधा नहीं वरन् सामाजिक-समस्या का समाधान है अथवा यह नितान्त व्यक्तिगत-समस्या है, जिस पर स्वतंत्र रूप से विचार करना आवश्यक है । बहुपत्नीत्त्व के कारणों को और बहुपत्नीत्त्व की अमनोवैज्ञानिकता को उपन्यासों के संदर्भ में स्पष्ट किया गया है । अनमेल-विवाह भी विवाह की प्रणाली नहीं वरन् विवाह के परिणाम का एक अस्वस्थ पक्ष मात्र है । इस पक्ष को आयु, शरीर, धन तथा शिक्षा-स्तर पर स्पष्ट किया गया है ।

तृतीय अध्याय में दम्पती को पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में रख कर संयुक्त-परिवार में अन्य सम्बन्धों के मध्य दम्पती की स्थिति तथा संयुक्त-परिवार के विघटन के कारणों को उपन्यासों के माध्यम से खोजने का प्रयत्न किया गया है । इस अध्याय के उत्तरार्द्ध में दाम्पत्य-जीवन के महान लक्ष्य 'सन्तान' के साथ दम्पती को रख कर सन्तानों के प्रति दम्पती के दायित्व और सन्तानों के मध्य दम्पती की स्थिति के औपन्यासिक चित्रणों की विवेचना की गई है ।

चतुर्थ अध्याय में दाम्पत्य-जीवन के संदर्भ में विचार-स्वातंत्र्य की समस्या को उठाया गया है । समाज-सेवा, राष्ट्रीय-भावना, हिंसात्मक-क्रान्ति की भावना तथा राजनीति में सक्रिय भाग लेने वाले पति-पत्नी की वैचारिक स्थिति द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि विचार-स्वातंत्र्य का दाम्पत्य-जीवन में कहा तक निर्वाह हो

महत्त्व दिया गया है ।

पंचम अध्याय में उपन्यासों में वर्णित दम्पती का मनोविश्लेषण-पद्धति द्वारा अध्ययन करके समयानुसार उनकी बदलती हुई भावनाओं और विचारों को स्पष्ट किया गया है, साथ ही यह भी ध्यान रक्खा गया है कि उपन्यासकार का अपना दृष्टिकोण दम्पती के मनोविज्ञान को कहाँ तक प्रभावित किये हुए है क्योंकि उपन्यास के पात्र अन्ततोगत्वा उपन्यासकार की ही सृष्टि होते हैं ।

षष्ठ अध्याय में दाम्पत्य-जीवन के संदर्भ में स्त्री और पुरुष के चरित्र को परखने का प्रयत्न है । दाम्पत्य-जीवन के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष का चरित्र विशिष्ट स्थान रखता है । एकनिष्ठा की भावना के प्रति तथा विवाहेतर सम्बन्धों के प्रति हमारे उपन्यास-कारों की क्या दृष्टि है, साथ ही पात्रों के चरित्र को मानवीय स्तर पर चित्रित करने में कथाकार कहाँ तक सफल हो पाये हैं और कहाँ कथाकार अपने आदर्शों को चरित्र पर आरोपित करते हैं, आदि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर चरित्र के माध्यम से विचार किया गया है ।

सप्तम अध्याय में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में दाम्पत्य-जीवन को स्पष्ट किया गया है । हिन्दी का उपन्यास-साहित्य जिस दौर से गुजरा है और गुजर रहा है, उसमें भारतीय-संस्कृति और पाश्चात्य-संस्कृति का अद्भुत सम्मिश्रण प्राप्त होता है । कौन-सी संस्कृति भारतीय-दाम्पत्य-जीवन को कहाँ पर और कहाँ तक प्रभावित कर पायी है, इसका विवेचन 'भारतीय-संस्कृति का प्रभाव तथा पाश्चात्य-संस्कृति का प्रभाव' के अन्तर्गत किया गया है ।

दाम्पत्य-जीवन के संदर्भ में हिन्दी-उपन्यास-साहित्य के गहन अध्ययन से उद्भूत मेरा अपना दृष्टिकोण 'अस्तु' शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तुत है ।

डा० वार्ष्णेय की मैं हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे प्रस्तुत विषय पर शोधकार्य करने की अनुमति दी । यह मेरा सौभाग्य है कि डा० आशा गुप्त के निर्देशन में मुझे कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ । आशा दीदी के मातृस्नेह की छाया में ही यह कार्य सम्भव हो सका है । मेरी मा श्रीमती विद्वत्तमा मिश्रा का आशीर्वाद ही इस शोध-प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत है । आशा दीदी और मां के प्रति आभार की अभि-

श्री रामकृष्ण गुप्त जी द्वारा दिया गया प्रोत्साहन निराशा के क्षणों में सम्बल बना है । मेरे पति राजकिशोर दुबे जी की इच्छा ही आज साकार हुई है । उनको धन्यवाद देने का अर्थ है स्वयं के प्रति आभार प्रदर्शन करना । श्री मेवालाल मिश्र जी की मैं आभारी हूं जिन्होंने शोध-प्रबन्ध के टंकण में मुझे पूर्ण सहयोग दिया ।

— अलका दुबे

## विषय-क्रम

## प्रथम अध्याय

### विवाह सम्बन्धी मान्यताएं और हिन्दी-उपन्यासों में विवाह के रूप

(१) विवाह सम्बन्धी मान्यताएं —

(क) भारतीय मान्यता

१. संस्कृत आचार्यों के विचार

२. आधुनिक समाजशास्त्रियों के विचार

(ख) पाश्चात्य मान्यता

(ग) हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकारों के विचार :

प्रेमचन्द, प्रसाद, जैनेन्द्र, यशपाल, आचार्य चतुरसेन और अमृतलाल नागर

निष्कर्ष

(२) विवाह के विविध रूप

(अ) अभिभावकों द्वारा किए गए विवाह—

क. विवाह में अभिभावकों की समस्याएं

१. दहेज़-प्रथा

२. अंध-विश्वास

३. जाति-प्रथा

४. सामाजिक-स्तर

ख. बाल-विवाह

ग. विधवा-विवाह

घ. अन्तर्जातीय तथा अन्तर्धर्मी विवाह.

(ब) प्रेम-विवाह—.

क. जातीय प्रेम-विवाह ख. अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह

ग. अन्तर्धर्मी प्रेम-विवाह घ. विधवा-विवाह

ड०. स्त्री का पुनर्विवाह च. मान्यता प्राप्त अवैध सम्बन्ध

(स) बल पूर्वक किए गए विवाह

निष्कर्ष

१. भारतीय मान्यता (प्राचीन आचार्यों के विचार)

'विवाह' शब्द संस्कृत की 'वह्' धातु 'वि' उपसर्ग और (घञ्) प्रत्यय से बना है। विवाह का शाब्दिक अर्थ है विशिष्ट रूप से वहन करना। पति-पत्नी को विशेष अभिप्राय से अपने घर लाता है। यजुर्वेद में पति को 'गृहपति' सम्बोधित किया गया है। पत्नी पति का वरण करते समय कहती है — हे विद्यादि शुभगुण प्राप्त आदित्य व्रतिन्! तुम विवाह सम्बन्ध से प्राप्त हुए हो। मैं सन्तान के लिए तुम्हें वरण करती हूँ। हे अतिशय प्रशंसनीय यह जो तुम्हारा शुक्ररूप सोम है उसकी रक्षा करो। व्याधियां तुमको अभिभूत न करें।[१]

वैदिक ऋषि विवाह को संस्कार मान कर पति-पत्नी के सम्बन्धों में अलौकिकता का समावेश कर देता है। विवाह में पवित्रता की कल्पना करने वाला संस्कृत का मनीषी विवाह के दस प्रकारों को स्वीकार करता है क्योंकि समाज में प्रचलित प्रथाओं को वह अस्वीकार नहीं कर सका, परन्तु प्रचलित प्रथाओं में भी समाज के कल्याण की दृष्टि से उसने उत्तम, मध्यम और निम्न श्रेणियों में प्रथाओं को वर्गीकृत किया है।

मनु ने 'मनुस्मृति' में विवाह के आठ प्रकार माने हैं। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस और आठवां बहुत तुच्छ पैशाच[२]। समाज में उपर्युक्त आठ विवाह-प्रथाओं के प्रचलित होते हुए भी संस्कृत के आचार्यों ने प्रथम ब्राह्म-विवाह को उचित धर्मयुक्त और श्रेष्ठ माना है। 'अग्नि पुराण' में ब्राह्म-विवाह की श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए कहा गया है - 'वर को बुलाकर दान करना ब्राह्म-विवाह है। वर कुलशील से समन्वित होना चाहिए। इस प्रकार के विवाह से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह कन्या के दान के महात्म्य से पुरुषाओं का उद्धार करता है।[३]

---

१. उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा। विष्ण उरुगायैष ते सोमस्ताᳪ रक्षस्व मा त्वा दभन् ।।१।८।। पृ० १५३। यजुर्वेद

२. ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ।।२१।।३।।१०५।। मनुस्मृतिः.

३. अग्निपुराण। ६।५६।।२८२।।

'याज्ञवल्क्य स्मृति' में प्रथम चार विवाह उत्तम स्वीकार किए गए हैं और ब्राह्म विवाह सर्वश्रेष्ठ माना गया है । क्योंकि ऐसे विवाह से उत्पन्न पुत्र इक्कीस पीढ़ियों को पवित्र करता है ।[१]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि विवाहित-जीवन में भोग (काम) को स्वीकार करते हुए भी भारतीय मनीषी काम की प्रबलता को स्वीकार नहीं करता । काम का लक्ष्य पुत्र-प्राप्ति है और पुत्र मोक्ष-प्राप्ति का साधन है । नितान्त लौकिक सम्बन्धों में मोक्ष की भावना का समावेश करके विवाह को धार्मिकता से बांध दिया है ।

दक्ष स्मृति में लिखा है 'प्रथमा धर्मपत्नी'[२] अर्थात् धर्म-पत्नी धार्मिक विधि से धर्मवृद्धि के लिये होती है । क्योंकि कौटिल्य के अनुसार 'विवाह पूर्वो व्यवहार:'[३] सांसारिक व्यवहार विवाह होने पर ही प्रारम्भ होते हैं इसलिए संसार में धर्म की प्रमुखता स्थापित करने के लिए पति-पत्नी के सम्बन्धों को संस्कृत के आचार्य धार्मिक भावना से बांध देते हैं ।

उपर्युक्त शास्त्रकारों ने विवाह के समय वर-कन्या के रूप, गुण, शील तथा स्वास्थ्य पर विशेष बल दिया है । प्राचीन साहित्य में विवाह के प्रकार, विवाह की विधियां, कुल-गोत्र, सम्भोग आदि समस्याओं पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है । विवाह के सामाजिक तथा सम्भोगिक (शारीरिक स्तर पर) पक्ष का शास्त्रकार विस्तार से वर्णन करते हैं किन्तु उसके आध्यात्मिक तथा भावनात्मक पक्ष को स्वीकार करते हुए भी, गौण स्थान देते हैं । शारीरिक सम्भोग पक्ष का इतना विस्तार इन ग्रन्थों में है कि एक बार ऐसा प्रतीत होता है जैसे स्त्री और पुरुष के जीवन का लक्ष्य मात्र कामवृत्ति की तृप्ति है । पति-पत्नी के कर्तव्य और अधिकार की मीमांसा भी प्राप्त होती है । जिससे विवाह एक समझौता मात्र ही लगता है । पुरुष को परिवार-वृद्धि और कामतृप्ति का आधार मिलता है और स्त्री को भरण-पोषण तथा सुरक्षा के लिए शक्तिशाली पुरुष की प्राप्ति होती है । मनु ने कहा है कि स्त्री की रक्षा करता हुआ मनुष्य

---

१. याज्ञवल्क्य, याज्ञवल्क्य स्मृति, 'विवाह-प्रकरण, '५८।३।२४

२. दक्ष स्मृति, चतुर्थ अध्याय, श्लोक संख्या १५

३. कौटिल्य-अर्थशास्त्र- तृतीय अधिकरण द्वितीय अध्याय : प्रथम श्लोक

अपनी सन्तान, आचरण, कुल, आत्मा और धर्म की रक्षा करता है । याज्ञवल्क्य स्मृति में भी स्त्री की रक्षा पर बल दिया गया है क्योंकि शास्त्रीय विधि से भार्या ग्रहण करने, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्रादि के होने पर वंश का अविच्छेद् और कल्याण तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है । इसलिए गार्हस्थ्य में प्रवेश कर स्त्री का सेवन करना चाहिए और उसकी पूर्णतया सुरक्षा करनी चाहिए ।[1]

संस्कृत के आचार्यों के सम्मुख सुसंगठित तथा स्वस्थ समाज का प्रश्न था । दाम्पत्य-जीवन समाज का आधार है इसलिए दाम्पत्य-जीवन की व्यवस्था के माध्यम से सामाजिक-जीवन को व्यवस्था प्रदान करने की चेष्टा की गई है । 'विवाह' की परिभाषा जैसी कोई भी वाक्यावलि न लिखते हुए भी प्राचीन आचार्यों ने इतना तो स्वीकार कर लिया है कि विशेष कर्म-काण्डों के द्वारा स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों को सामाजिक तथा धार्मिक मान्यता मिलती है । शास्त्रों में निहित प्रणाली द्वारा सम्पादित विवाह को धर्म, समाज और माता-पिता सभी समान रूप से मान्यता देते हैं । विवाह का उद्देश्य स्वस्थ एवं उच्च विचारों के पति- पत्नी द्वारा अपने ही अनुरूप सन्तान उत्पन्न करके समाज की वृद्धि करना था । पितृ-ऋण से उऋण होने का विधान भी इसी कारण से बनाया गया है कि पुरुष विवाह करके प्रजा की वृद्धि करे । मनुष्य के समक्ष मोक्ष का लोभ सबसे बड़ा रखा गया । शास्त्रीय विधि से सम्पन्न विवाह के द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसी मान्यता रही है । इन फलों को प्राप्त करना ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य समझा जाता रहा है ।

## आधुनिक भारतीय आचार्यों के विचार-

प्राचीन भारतीय जीवन की धर्म-प्राणता वर्तमान जीवन में भी प्राप्त होती है । भारतीय विचारकों ने स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को दाम्पत्यजीवन से बांध कर उनके सामाजिक, पारिवारिक तथा धार्मिक उत्तरदायित्वों को स्पष्ट किया है । वैवाहिक-जीवन का अर्थ बताते हुए महात्मा गान्धी ने कहा है, 'विवाहित-जीवन का

---

१. याज्ञवल्क्य-- 'याज्ञवल्क्यस्मृति--'विवाह प्रकरण', ७८।३।३१

अभिप्राय यह है कि पारस्परिक लाभ । इस संसार में भी हो और बाद के लिए भी[१]। लौकिक जीवन के साथ ही 'बाद के लिए 'अर्थात् पारलौकिक जीवन के लिये भी विवाह के द्वारा पति-पत्नी बंध जाते हैं । आगे गान्धी जी कहते हैं कि वह तो मानवजाति की सेवा के लिए भी है ।[२] इससे स्पष्ट होता है कि पति-पत्नी का कार्य क्षेत्र गान्धी जी सीमित परिवार ही नहीं, व्यापक-मानव-सेवा का क्षेत्र स्वीकार करते हैं । परिवार के साथ ही पति-पत्नी सम्पूर्ण मानवजाति के प्रति भी उत्तरदायी हैं ।

डा० राधाकृष्णान दाम्पत्य-जीवन को संयम की परिधि में घेरते हुए लिखते हैं -"विवाह एक वैध परिवार की स्थापना के लिये सामाजिक अधिकार पत्र अधिक है और यौन-सम्भोग के लिए अनुज्ञापत्र कम है[३]।" सम्भोग के सन्तुलन को और स्पष्ट करते हुए डा० राधाकृष्णान् कहते हैं -"विवाह का हिन्दू-आदर्श सारत: एक पुरुष और एक स्त्री के बीच साहचर्य है, जो जीवन के चार महान लक्ष्यों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए मिल कर सृजनशील ढंग से जीवन बिताना चाहते हैं । इसके प्रयोजन के अन्तर्गत सन्तान का प्रजनन उसकी देखभाल और पालन-पोषण एवं एक उत्कृष्ट सामाजिक व्यवस्था में सहयोग देना भी है ।[४]

कामसूत्र की व्याख्या करते हुए वाचस्पति गैरोला ने स्पष्ट किया है कि विवाह मात्र वासना-तृप्ति का साधन नहीं है, स्त्री-पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं । विवाह के माध्यम से व्यक्ति अपने आचरण की उन्नति करता है,सामाजिक-हित और राष्ट्रीय हित में योगदान देता है । यों तो वाचस्पति गैरोला वैधिक मान्यता द्वारा स्थिर किए गए स्त्री-पुरुष संयोग को विवाह मानते हैं, किन्तु विवाह के साथ वे आध्यात्मिक उन्नति के प्रश्न को जोड़ते हैं ।[५]

---

१. महात्मा गान्धी- विवाह और समस्या अर्थात् स्त्री जीवन, पृ० .१३४
२. ,, ,, ,, पृ०१३४
३. डा० राधाकृष्णानन्- धर्म और समाज, पृ० १७७ (हिन्दी अनुवाद)
४. ,, ,, ,, १८६
५. वाचस्पति गैरोला -.कामसूत्र परिशीलन, पृ० १६७

डा० राजबली पाण्डे ने 'हिन्दू-संस्कार' में लिखा है –"विवाह क्षणिक शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने या कुछ काल तक परस्पर सहवास का लाभ उठाने के लिए किया जाने वाला एक अस्थाई सम्बन्ध नहीं है, जो नाममात्र की असुविधा होते ही विच्छिन्न हो जाये। यह एक ऐसा सम्बन्ध है, जो जीवन के विभिन्न परिवर्तनों तथा संकटों की भट्ठी में पक कर और भी दृढ़तर तथा स्थाई हो जाता है[१]।"

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट होता है कि प्राचीन विचारकों की भांति ही आधुनिक भारतीय विचारक भी विवाह को धार्मिक बन्धन मानते हैं। विवाह मात्र वासनापूर्ति का साधन नहीं है वरन् स्त्री-पुरुष का ऐसा सम्बन्ध है जिसके समक्ष पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्व है। पति-पत्नी के सम्बन्ध मात्र लैंगिक स्तर पर न होकर आध्यात्मिक स्तर पर होते हैं। जीवन की पूर्णता प्राप्त करने से विचारकों का अभिप्राय यही जान पड़ता है कि संसार में पति-पत्नी सहयोगी बन कर कर्मरत रहें साथ ही धार्मिक कार्यों द्वारा मोक्ष को प्राप्त करें। भारतीय मत में पति-पत्नी के सम्बन्ध को अविच्छेद्य माना गया है।

## २. पाश्चात्य-मान्यता

पाश्चात्य विचारकों ने स्त्री पुरुष के स्वाभाविक शारीरिक सम्बन्ध को, विवाह की वैधानिक मान्यता द्वारा, सामाजिक तथा पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में रखकर सन्तुलित करने का प्रयत्न किया है।

विवाह की परिभाषा देते हुए वैस्टर मार्क ने कहा है कि विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह सम्बन्ध है जिसे प्रथा या कानून स्वीकार करता है और जिसमें विवाह करने वाले व्यक्तियों के और उनसे पैदा सम्भावित बच्चों के बीच में एक दूसरे के प्रति होने-वाले अधिकारों और कर्तव्यों का समावेश होता है।'[२]

कर्तव्यों और अधिकारों की विवेचना करते हुए वैस्टर मार्क ने स्पष्ट किया है कि भिन्न-भिन्न पतिपत्नी के कर्तव्य तथा अधिकार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, फिर

---

१. डा० राजबली पाण्डे-हिन्दू संस्कार, पृ० २८६

भी विवाह में ऐसा अवश्य कुछ है जो प्रत्येक व्यक्ति को सामान्य रूप से प्राप्त होता है। विवाह का (सार्वभौम) आशय सम्भोग अधिकार से होता है।' एक ही साथी से सम्भोग की दृष्टि को उचित स्वीकार करते हुए भी वैस्टरमार्क व्यभिचार की भावना को अस्वीकार नहीं करते हैं। 'वैधानिक दृष्टिकोण से व्यभिचार अपराध समझा जाता है, जो दूसरे साथी को वैवाहिक सम्बन्ध तोड़ने का अधिकार देता है। परन्तु ऐसा हमेशा नहीं होता।'[१]

विवाह-विच्छेद के सम्बन्ध में वैस्टरमार्क स्पष्टतः कहते हैं कि विवाह यदि विवाह के नाम पर मात्र कलंक है तो उसके लिए तलाक आवश्यक साधन के रूप में प्रयुक्त हो सकती है।[२]

वेबर ने विवाह के पारिवारिक पक्ष को दृष्टिकोण में रख कर कहा है- 'स्त्री और पुरुष विवाह के द्वारा सन्तोष प्राप्त करते हैं।...... कम से कम परिवार, जो उनकी आधार संस्था है, के प्रति अपने अनुराग को प्रगट करते हैं। अतएव वे (विवाहद्वारा) सामाजिक आदर्श को सामाजिक दाय के अमूल्य अंग के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित करते हैं।'[३]

नीतिशास्त्री बर्ट्रेन्डरसेल ने अन्य यौन-सम्बन्धों को परिप्रेक्ष्य में रखकर विवाह द्वारा स्थापित सम्बन्धों का मूल्यांकन करते हुए कहा है -"विवाह अन्य सैक्स-सम्बन्धों से इस कारण भिन्न है कि वह विधिगत संस्था है। अधिकतर समुदायों में यह धार्मिक संस्था भी है परन्तु इसका सारभूत पहलू तो विधिगत ही है।[४]

दाम्पत्य-जीवन की पूर्णता पर विचार प्रगट करते हुए रसेल लिखते हैं कि "दम्पति में पूर्ण समानता की भावना होनी चाहिए, पारस्परिक स्वतंत्रता में कोई

---

१. एडवर्ड वेस्टर मार्क - ए शार्ट हिस्ट्री आफ मैरिज, पृष्ठ ९
२. वैस्टरमार्क (विवाह और समाज)-(हिन्दी अनुवाद), पृ० १५०
३. वेबर, -मैरिज एण्ड द फैमिली, पृ० १६०
४. बर्ट्रेन्ड रसेल - विवाह और नैतिकता (हिन्दी अनुवाद), पृ० ८७

हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, सम्बन्धों में पूर्ण मानसिक प्रगाढ़ता होनी चाहिए और जीवन-मूल्यों के मानकों में कुछ सादृश्य होना आवश्यक है ।' इन शर्तों को यदि दम्पती पूर्ण कर सकते हैं तो विवाह सर्वोत्तम और एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है जो कि दो मानवों में हो सकता है ।'[१]

पतिपत्नी के वैवाहिक जीवन में सन्तान के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए रसैल कहते हैं कि'यदि मां बाप में इतना आत्मनियन्त्रण भी न हो कि वे अपने मतभेद का ज्ञान बच्चों को होने देने से रोक सकें तो अच्छा यही है कि विवाह-विच्छेद कर दिया जाय ।'मत-भेद और मानसिक कलह की स्थिति में कानून द्वारा सम्बन्ध बनाये रखने के लिये दबाव डालना उचित नहीं है ।'उचित तो यह है कि दाम्पत्य-जीवन में बच्चों के महत्त्व को समझा जाये और दम्पति एक दूसरे को तनिक स्वतंत्रता दें जिससे विवाह अधिक स्थाई हो ।'[२]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि पाश्चात्य-संस्कृति के भौतिकतावादी दृष्टिकोण का प्रभाव पाश्चात्य-विवाह-संस्था पर भी पड़ा है । पाश्चात्य-समाज-शास्त्री के सम्मुख भोगवाद तथा भौतिकतावाद से परिव्याप्त असंयमित जीवन है जिसे नियमों में बांधकर व्यवस्था देना उसका कर्तव्य है । विवाह के द्वारा स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों से उत्पन्न सन्तान को आश्रय तथा संरक्षण प्राप्त होता है । पति-पत्नी के सम्बन्धों को वैधानिक मान्यता प्राप्त हो जाने पर सन्तान,परिवार,समाज तथा राष्ट्र का हित होता है । पाश्चात्य-विचारक विवाह को मात्र विधिगत सामाजिक संस्था के रूप में ही स्वीकार कर सके हैं,उसके धार्मिक तथा आध्यात्मिक सम्बन्ध की कल्पना वे नहीं कर सके । यही कारण है कि विवाह के स्थायित्व पर पाश्चात्य-विचारकों को विश्वास नहीं है और सम्बन्ध-विच्छेद की व्यवस्था वैवाहिक बन्धन के साथ ही पाश्चात्य-विचारकों ने जोड़ दी है ।

---

१. बर्ट्रेन्ड रसैल-विवाह और नैतिकता (हिन्दी अनुवाद), पृ०६६

२. ,, पृ० २१५

## ३. हिन्दी-उपन्यासकारों के विचार

विवाह के सम्बन्ध में हिन्दी-उपन्यासकारों के विचार यत्र-तत्र प्राप्त हो जाते हैं। कहीं ये विचार उपन्यासकारों के द्वारा प्रकट किये गए हैं कहीं उनके विचारों के प्रगटीकरण का माध्यम उनके विशेष पात्र बनते हैं।

प्रेमचन्द पति-पत्नी के मध्य भावना की सच्चाई और ईमानदारी पर अधिक बल देते हुए आदर्शवादी दृष्टिकोण रखते जान पड़ते हैं। गोदान में प्रेमचन्द की आदर्शवादी दृष्टि अधिक उभर कर सामने आई है। विवाह के सम्बन्ध में मेहता की स्पष्ट उक्ति है 'ब्याह तो आत्म समर्पण है। प्रेम जब आत्मसमर्पण का रूप लेता है तभी ब्याह होता है, उसके पहले ऐयाशी है।'[१]

विवाह को प्रेमचन्द मात्र शारीरिक सम्बन्ध अथवा भोग-विलास की वस्तु नहीं बना सके। उनकी दृष्टि में 'विवाह एक तपस्या' है।[२]

विवाह के स्थायित्व पर प्रेमचन्द अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं - 'सेवा ही वह सीमेण्ट है, जो दम्पति को जीवन पर्यन्त स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है। जिस पर बड़े-बड़े आघातों का भी कोई असर नहीं होता है। जहां सेवा का अभाव है वहीं विवाह-विच्छेद है, परित्याग है।'[३]

विवाह के संदर्भ में प्रसाद के ज्वलन्त विचार उनके उपन्यासों में इस प्रकार से नहीं उपलब्ध होते जिस प्रकार कि उनके विशिष्ट नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' में।

पति-पत्नी के सम्बन्धों में विश्वास की महत्ता स्थापित करते हुए प्रसाद ने वैवाहिक जीवन की मधुरता की व्याख्या 'ध्रुवस्वामिनी' के पुरोहित के मुख से करवाई है। 'स्त्री और पुरुष का परस्पर विश्वासपूर्वक अधिकार, रक्षा और सहयोग ही तो विवाह कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो विवाह और धर्म खेल है।'[४]

---

१. प्रेमचन्द- गोदान, पृ० १४१

२. ,, पृ० ३३३

३. ,, पृ० १५७

४. जयशंकर प्रसाद - ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६०

विवाह की परिभाषा देते हुए उसके कई पक्षों को समेटने की जैनेन्द्र ने चेष्टा की है। 'विवाह परिवार की सृष्टि करता है और उस व्यवस्था से संतति-रक्षा और पालन-पोषण का प्रश्न एक हद तक निबट जाता है।'[१]

अन्यपक्षों की भांति ही जैनेन्द्र विवाह के सम्बन्ध में भी प्रेमचन्द की प्रतिक्रिया में अपनी धारणा व्यक्त करते हुए कहते हैं,- 'पति-पत्नी का आशय यदि परस्पर भोग की एकाधिकारिता का ही सम्बन्ध हो तो इस धारणा को बदलना होगा[२]।' सबसे मुख्य बात जो जैनेन्द्र के विचारों में प्राप्त होती है वह है कि 'पति-पत्नी एक दूसरे की जायदाद नहीं हैं। दोनों अपने में व्यक्तित्व हैं और एकमात्रा तक उन्हें स्वतंत्रता भी अपेक्षित है[३]।'

व्यक्तित्व के स्वातंत्र्य में जैनेन्द्र कुछ अतिरिक्त प्रतिक्रियावादी दिखलाई पड़ते हैं। दरअसल जैनेन्द्र व्यक्तित्व के बिन्दु पर सदैव भयभीत जान पड़ते हैं, विवाह-यज्ञ में पति का या विशेषकर पत्नी का व्यक्तित्व कहीं आहुति को न प्राप्त हो जाय, और इसीलिए उपर्युक्त कथन में वे गोदान के मेहता द्वारा कहे गए आत्मसमर्पण की बात का बलपूर्वक विरोध करते जान पड़ते हैं। वे स्पष्टतः कहते हैं कि 'विवाहेतर सम्बन्ध विवाह की मौजूदगी में नहीं है या कम है, यह मानना भ्रम पोसना है[४]।' किन्तु जब वे यह कहते हैं कि 'विवाहसंस्था को उत्तरोत्तर यज्ञमूलक बनाया जा सकता है और बनाया जाना चाहिए .... भावना वहां कर्तव्य और अर्पण की हो: अधिकार और उपयोग की नहीं', तब जैनेन्द्र प्रेमचन्द के पूर्ण समर्पणभाव को स्वीकार करते हुए ही जान पड़ते हैं।[५] पर यह तो निश्चय ही है कि भोग के एकाधिकार को जैनेन्द्र किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करते।[६]

---

१. जैनेन्द्र - समय, समस्या और सिद्धान्त, पृ० १६६
२. ,, ,, ,, पृ० १४७
३. ,, ,, ,, पृ० १४७
४. ,, ,, ,, पृ० १४६
५. ,, ,, ,, पृ० १५१
६. ,, ,, ,, पृ० १५५

जैनेन्द्र के समकालीन उपन्यासकार यशपाल मनुष्य की सम्भावित मनोवैज्ञानिक दुर्बलता को ध्यान में रखते हुए पति-पत्नी के सम्बन्ध को 'झूठा सच' में गिल द्वारा दो टूक शब्दों में स्पष्ट करवाते हैं 'यह सम्बन्ध ही एकाधिकार का है ।'[१] यद्यपि आगे एकाधिकार की सीमाओं को निर्धारित करते हुए यशपाल कहते हैं कि तीसरे व्यक्ति से मानसिक सन्तोष प्राप्त करने में एकाधिकार पर आंच नहीं आती परन्तु वैवाहिक जीवन में व्यभिचार को यशपाल स्वीकार नहीं करपाते । यशपाल दाम्पत्य-जीवन में एकनिष्ठा को महत्त्व देते हुए जान पड़ते हैं । अस्वस्थ दाम्पत्य-जीवन के निर्वाह की यशपाल द्वारा बिलकुल पुष्टि नहीं हुई है । वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं – 'भूल एक बार भाग्य से हो जाये तो उसे सुधारा जा सकता है । यह आवश्यक नहीं कि पति-पत्नी अपनी भूल को जीवन भर सहन करने के लिए विवश किए जायें ।'[२]

जैनेन्द्र की व्यक्तिपरकता के सम्मुख व्यक्ति का नितान्त निषेध करते हुए आचार्य चतुरसेन दाम्पत्य-जीवन को सामाजिक सम्बन्ध का बिल्ला देते हैं । चतुरसेन इस विभेद को स्पष्ट करते हुए कहते हैं – कि जहां तक व्यक्ति-व्यक्ति का सम्बन्ध है, स्त्री-पुरुष केवल पति-पत्नी नहीं, वे नर-नारी भी हैं । जहां स्त्री-पुरुष के दाम्पत्य -सम्बन्धों में सामाजिकता है वहीं वे पति-पत्नी हैं और वहीं 'एकनिष्ठा' की मांग उभरती है । इस बात को 'पत्थरयुग के दो बुत' में वे बिल्कुल स्पष्ट भाषा में कह देते हैं –'नर-नारी पृथक वस्तु हैं पति-पत्नी पृथक् ।'[३]

विवाह जीवन की पूर्णता का माध्यम है इस संदर्भ में आचार्य चतुरसेन का यह कथन महत्त्वपूर्ण है – विवाह एक आत्मिक सम्बन्ध है और शारीरिक भी । वैवाहिक जीवन की सार्थकता तभी है जब शारीरिक सम्बन्ध आत्मिक सम्बन्ध में परिणात हो जाये ।[४]

---

१. यशपाल- झूठासच (भाग १), पृष्ठ ५१३

२. ,, ,, ,, ५३०

३. आचार्य चतुरसेन 'पत्थर युग के 'दो बुत', पृ० ७२

४. पृ० १००

अमृतलाल नागर ने वैवाहिक जीवन को सामाजिक उपादेयता की दृष्टि से देखा है। उनके अनुसार स्त्री-पुरुष का स्वतंत्र शारीरिक सम्बन्ध अवांछनीय है 'बात सीधी होनी चाहिए। स्त्री और पुरुष बाते का अन्तिम रूप है पतिपत्नी होना[१]।' 'बूंद और समुद्र' की वनकन्या' के माध्यम से नागर जी के विचार और स्पष्ट होते हैं - 'एक दूसरे को पाने के लिए आपस में अपने आप को अनेक कसौटियों पर कसना होता है।'क्योंकि' यह जिम्मेदारी का नाता है, रईसों, कलाकारों, मनचलों के दिल बहलाव का खेल नहीं[२]।' अमृतलाल नागर ने वैवाहिक जीवन को कर्तव्य और विश्वास की कसौटी माना है। शारीरिक सम्बन्ध की एकनिष्ठा के साथ ही सामाजिक जीवन के प्रति कर्तव्य की भावना का समावेश भी उपर्युक्त परिभाषा में हो जाता है।

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकारों ने विवाह पर गंभीरता से चिन्तन किया है। हिन्दी के उपन्यासकार विवाह में शारीरिक सम्बन्ध की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए उसकी सामाजिक उपादेयता और भावनापरकता पर अधिक बल देते हैं। पाश्चात्य-विचारकों और उपन्यासकारों की अपेक्षा भारतीय-उपन्यासकारों की दृष्टि विवाह के संदर्भ में कहीं अधिक समाजवादी और कर्तव्यवादी जान पड़ती है।

निष्कर्ष -

सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री और पुरुष का आकर्षण अनादि और स्वाभाविक है। प्रत्येक युग और प्रत्येक देश का समाजशास्त्री निश्चित नियमों की परिधि में घेर कर स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को सामाजिकता प्रदान करने का प्रयत्न करता है। पति-पत्नी परिवार बनाते हैं, परिवारों से समाज और समाज से राष्ट्र बनता है। विवाह के पश्चात् स्त्री-पुरुष-संयोग से उत्पन्न सन्तान को भी समाज में वैधानिक अधिकार प्राप्त होते हैं। इस प्रकार विवाह जीवन के तीन मुख्य लक्ष्यों की पूर्ति करता है -

---

१. अमृतलाल नागर- बूंद और समुद्र, पृ० १३४

२. ,, ,, पृ० १३४

१. स्त्री-पुरुष की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति ,

२. समाज को स्वस्थ नवीन पीढ़ी प्रदान करना,

३. मोक्ष की प्राप्ति करना (भारतीय-मान्यता )

भारतीय-विचारक विवाह की पूर्णता तब स्वीकार करते हैं जब पति-पत्नी का शारीरिक सम्बन्ध आत्मिक-सम्बन्ध में परिणत हो जाए । पाश्चात्य-विचारक दाम्पत्य-जीवन की पूर्णता और स्थायित्व के लिए पति-पत्नी में परस्पर विश्वास और त्याग के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी विवाह को मात्र सामाजिक साझेदारी मानते हैं ।

## (२) विवाह के रूप

विवाह-प्रणाली के आठ प्रकारों में समान्य रूप से दो प्रकार समाज में सर्व-मान्य हैं -

अ. अभिभावकों द्वारा किया गया विवाह

ब. प्रेम-विवाह

उपर्युक्त दो प्रणालियों के अतिरिक्त एक और प्रणाली प्राप्त होती है जिसमें न तो कन्या के माता-पिता का योगदान रहता है न हीं कन्या का । अपहरण करके बलपूर्वक कन्या को ले आना और भय दिखाकर उससे विवाह कर लेना । इस प्रकार समाज में तीसरी प्राप्त प्रणाली को 'बलपूर्वक किए गए विवाह' के अन्तर्गत रख सकते हैं । तीसरी प्रथा हुई --

(स) बलपूर्वक किए गए विवाह ।

### अ. अभिभावकों द्वारा किया गया विवाह

कन्यादान की प्रथा भारत में प्राचीनकाल से आज तक अनवरत प्रवाहित होती आ रही है । मनुस्मृति में गांधर्व-विवाह को उचित अवश्य कहा गया है परन्तु ब्राह्म -विवाह सर्वोत्तम माना गया है । सन्तान के जन्म से लेकर विवाह तक के सम्पूर्ण संस्कारों के लिए माता-पिता उत्तरदायी होते हैं ।

(क) विवाह और अभिभावकों की समस्याएं

माता-पिता अपनी सन्तान के संस्कारों के लिये उत्तरदायी होते हुए भी स्वतंत्र नहीं होते। जिस समाज में वे रहते हैं और जिस धर्म को मानते हैं विवाह कार्यों में उस समाज और धर्म के नियमों को मानने के लिए भी माता-पिता बाध्य होते हैं। विवाह के समय माता-पिता को कतिपय समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पहली समस्या है दहेज की समस्या।

१. दहेज-प्रथा : कन्या-पक्ष

समाज में दहेज-प्रथा के प्रचलन ने सबसे पहले कन्या के अभिभावक की स्थिति को झकझोरा। धनीवर्ग तो कन्या के विवाह के व्यय को इच्छा से वहन करता है, मध्यम वर्ग बीच में पिसता हुआ परम्परा का निर्वाह करता है परन्तु विपन्न वर्ग की कमर ही व टूट जाती है। दहेज-प्रथा से पीड़ित अभिभावकों के लिये कन्या अभिशाप बन कर पैदा होती है। अभिशप्त माता-पिता सामाजिक मर्यादा बनाये रखने के लिये नैतिक-अनैतिक सभी कार्य करते हैं।

१६ वीं शताब्दी से प्रारम्भ होने वाले समाज-सुधारों के अनन्तर समाज में वैवाहिक कुरीतियों का प्रचलन रहा। हिन्दी के उपन्यासकारों ने अभिभावकों की परिस्थितियों को पहचाना और अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज की कुरीतियों को हटाने का प्रयत्न किया।

प्रेमचन्द का निर्मला उपन्यास दहेज-प्रथा से पीड़ित हिन्दू-कन्या की कहानी है। मध्यवित्त परिवार के बाबू उदयभानु कुल-प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये निर्मला की शादी में घर फूंक कर खर्च करने को तैयार हो जाते हैं।[१] निर्मला के विवाह से पूर्व ही उदयभानुकुल की हत्या हो जाती है।[२] धन के लोभी वर पक्ष के लोग निर्मला से विवाह करने के लिए मना कर देते हैं। क्योंकि उन्हें पता है कि पिता के न रहने पर पर्याप्त दहेज प्राप्त न हो पायेगा।[३] निर्मला की मां कल्याणी धन के अभाव में निर्मला का

---

१. प्रेमचन्द, निर्मला, पृ० ३१

२. ,, ,, पृ० ३७

विवाह पैंतीस साल के वकील तोताराम से कर देती हैं ।

कल्याणी के माध्यम से प्रेमचन्द ने विधवा माता की विवशता का चित्र खींचा है । कल्याणी निर्मला का विवाह अच्छी जगह करना चाहती है, परन्तु वर-पक्ष वाले दहेज मांगते हैं ।[1] फिर 'वहां एक हजार देने को कहां से आयेगा ? ... आप तो घर की दशा देख ही रहे हैं, भोजन मिलता जाय यही गनीमत है ।'[2] ऐसी स्थिति में विवश माता 'पैंतीस साल' का आदमी बुड्ढा नहीं कहलाता । अगर लड़की के भाग्य में सुख भोगना बदा है तो जहां जायेगी सुखी रहेगी'[3] सोच कर निर्मला का विवाह तोताराम से कर देती है ।

दहेज-प्रथा से पीड़ित अभिभावकों का मार्मिक चित्रण गोदान में हुआ है । सबसे अधिक कष्टमय जीवन व्यतीत करता है विपन्न वर्ग, जिसके पास न कपड़ा है,न अन्न है, न पैसा । प्रत्येक दिशा से निराश माता-पिता वर-पक्ष से धन लेकर कन्या का विवाह करने के लिये बाध्य हो जाते हैं । होरी और धनिया जीवन में अथक परि-श्रम करते हैं, सत्य के लिये संघर्ष करते हैं । कर्ज से लदे होने पर भी धर्म नहीं छोड़ते हैं । परन्तु खेतों की बेदखली उनकी कमर तोड़ देती है । पंडित दातादीन के वचन 'लड़की का ब्याह भी हो जायेगा और तुम्हारे खेत भी बच जायेंगे । सारे खरच-बरच से भी बच जाते हो'[4] तथा 'रामसेवक का दर्पपूर्ण व्यक्तित्त्व' पति-पत्नी को प्रभावित करता है ।'तकदीर में जो लिखा है वह आगे आयेगा ही, मगर आदमी अच्छा है,[5] सोच कर निराश होरी' अपने से दो ही चार साल छोटे रामसेवक[6]' से 'फूल सी रूपा'[7] का ब्याह करने को तैयार हो जाता है ।

---

१. प्रेमचन्द- निर्मला, पृ० ५७
२. ,, पृ० ५८
३ ,, पृ० ५८
४. प्रेमचन्द,गोदान, पृ० ३३२
५. ,, पृ० ३३५
६. ,, पृ० ३३२
७. ,, पृ० ३३२

धन लेकर विवाह करने की प्रथा भारतीय समाज में निंद्य तथा अधार्मिक है। धन लेते समय होरी की धर्मभीरु हृदय कांप जाता है जो उसके हाथों के कम्पन में अभिव्यक्ति पाता है।[१] उसका सिर ऊपर न उठ सका, मुंह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गड्ढे में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है[२]। विपन्न होरी के जीवनकी यह विवशता ही है जो उससे लड़की बेचने की बात कही जाती है[३]।

दहेज-प्रथा से पीड़ित वर्ग का चित्रण उषामित्रा ने भी अपनी रचनाओं में किया है। 'पिया' और 'जीवन की मुस्कान' में धन के कारण जीवन में उत्पन्न होने वाली विषमताओं का करुण चित्रण हुआ है। प्रेमचन्द का 'निर्मला' तथा उषामित्रा का 'जीवन की मुस्कान' दहेज की समान समस्याओं को लेकर चले हैं। 'जीवन की मुस्कान' में सविता के पिता की मृत्यु हो जाने पर वर पक्ष वाले वाग्दत्ता सविता से सम्बन्ध तोड़ देते हैं। टूटते हुए सम्बन्धों का मुख्य कारण कन्यापक्ष से दहेज़ न मिलने की सम्भावना है। 'पिया' उपन्यास में अभिभावक की दरिद्रता का करुण रूप उभरा है। माँ अपने दारिद्र्य को समाप्त करने के लिए वयस्क बेटी कविता का विवाह अधेड़ श्रीमन्त जमीन्दार से कर देती है। त्यागमयी कविता यह सोचकर कि माँ का दु:ख दारिद्र जाता रहेगा, इस जीवन के प्रात:काल में क्या इतना उत्सर्ग कम है ?[४] 'सम्पूर्ण जीवन मानसिक द्वन्द्व झेलती है।

यशपाल ने राजनैतिक परिस्थितियों के साथ-साथ बदलती हुई सामाजिक स्थितियों का बहुत सूक्ष्मता से अध्ययन किया। नारी-शिक्षा के प्रसार ने कन्याओं को सुशिक्षित तथा योग्य बनाया। शिक्षित कन्या के लिए योग्यवर -प्राप्त करना भी माता-पिता के लिये आवश्यक हो गया। माता-पिता कन्या को योग्य बनाते हैं इसलिए कि वर-पक्ष स्वयं कन्या की योग्यता से प्रभावित हो जायेगा। परन्तु योग्यवर योग्यकन्या के साथही उचित धनराशि की मांग करने लगा है। यशपाल ने शिक्षितकन्या के माता-पिता की बाध्यताओंको समझा। 'झूठा सच' में मास्टर जी कन्या की शिक्षा के समर्थक हैं। उन्हें आशा है कि लड़की की बुद्धि और शिक्षा उसकेलिए स्वयं वर आकर्षित कर लेंगी। परन्तु विवाह के अवसर पर सभी धारणाएं

---

१. प्रेमचन्द, गोदान, पृ० ३३८
२. ,, पृ०३३८
३. ,, पृ० ३३२
४. उषा मित्रा- पिया, पृ० ११३

मिथ्या प्रमाणित हो रही थीं ।[१] मास्टर जी अन्त में बाध्य होकर 'हाथलगे से मैली होने वाली' तारा का विवाह सोमराज जैसे अयोग्य और दुहाजू वर से कर देते हैं ।' विवाह में तारा के विचारों का कोई महत्त्व नहीं रहता यहाँ तक कि उससे कुछ पूछा ही नहीं गया ।'[२]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् भी स्त्रियों की स्थिति विवाह के क्षेत्र में अच्छी नहीं थी । वरण की स्वतंत्रता कन्या को नहीं मिलती थी । कन्या को नतशिर होकर परिवार-वालों की इच्छा और अपने भाग्य को स्वीकार करना पड़ता था ।

वर-पक्ष

विवाह में दूसरा पक्ष वर-पक्ष होता है । यदि कहा जाय कि वर-पक्ष दहेज-प्रथा का पोषक होता है तो अनुचित न होगा । वर-पक्ष वालों के लिये लड़का एक हुंडी होता है जिसे भुना कर धन प्राप्त किया जा सकता है । बहुधा वरपक्ष वाले धन के लोभ में फंस कर ही विवाह करते हैं । धन के बल पर किये गये विवाह प्राय: असफल होते हैं और विवाह का परिणाम पति-पत्नी जीवन भर भाररूप में ढोते हैं ।

प्रेमचन्द ने यदि अभिभावकों को दहेज-प्रथा के कुप्रचलन में पिसते देख कर उनके प्रति अपनी सहानुभूति दिखलाई है, तो दहेजप्रथा के पक्षपातियों के ऊपर व्यंग्य करने में संकोच नहीं किया । व्यंग्यात्मक स्थानों पर साधारण तथा चुटीले मुहावरों का प्रयोग कर हास्य की सृष्टि भी की है । 'कर्मभूमि' के लाला समरकान्त विधुर हैं । समरकान्त अपनी कन्या नैना का विवाह नहीं कर सकते क्योंकि बाल-विवाह की बुराइयों को जानते हैं ।[३] फलत: पुत्र अमरकान्त का विवाह करना चाहते हैं । अमरकान्त १६ वर्ष का हो गया था फिर भी 'किशोरावस्था' में ही था ।' परन्तु व्यवसाइयों में इसका (योग्यता का) महत्त्व नहीं होता, धन की महत्ता प्रमुख होती है । लखनऊ से एक धनी परिवार की बातचीत चल पड़ी । समरकान्त की तो लार टपक पड़ी ।

---

१. यशपाल-झूठा सच (भाग १), पृ० १४

२. ,, ,, ,, पृ० १६,१९

कन्या के घर विधवा माता के सिवा निकट का सम्बन्धी न था और धन की कहीं थाह नहीं थी ।'[१]

राजेन्द्र यादव ने 'सारा आकाश' में माता-पिता की स्वार्थवृत्ति का खुला चित्रण किया है । वर-पक्ष की धन-पिपासा काल की सीमाओं में बंधी नहीं होती, निरन्तर-काल के साथ चलती जाती है । माता-पिता की दहेज-लालसा आज भी ज्यों की त्यों है । 'सारा आकाश' के अभिभावक बड़े परिवार वाले मध्यवर्ग से सम्बन्धित माता-पिता का प्रतिनिधित्व करते हैं । माता-पिता पारिवारिक आवश्यकताओं के कारण या पुत्री के विवाहादि में होने वाले व्यय से ऋणी हो जाते हैं । घर में आय का अन्य कोई सशक्त साधन नहीं होता है । जो आय एक व्यक्ति द्वारा घर में लाई जाती है वह दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्याप्त नहीं होती । पुत्र ही एक मात्र अवलम्ब होता है, जिसके द्वारा ऋण-मुक्त हुआ जा सकता है । पुत्र का विवाह ही वह माध्यम है जिससे दहेज रूप में धनप्राप्ति होती है ।' एक और माता-पिता चिन्तित रहते हैं कि कौन सा दिन होगा जब देहली पर छोटी बहू का पांव पड़ेगा ।[२] दूसरी तरफ शुभकामनाओं के साथ ही स्वार्थ का पुछल्ला लग जाता है — इस मुन्नी के ब्याह में सात-आठ हज़ार का कर्ज़ हो गया अब ये लड़के ही कुछ करें तो मेरे बस का है...... ।'[३] परोक्ष से, लड़के के विवाह में धन आये तो परिवार से कर्ज का बोझ उतरे ।

धनाढ्य परिवार के लोभ में पिता पुत्र की इच्छा-अनिच्छा के विषय में सोच ही नहीं पाता । साथ ही अपनी इच्छानुसार पुत्र का विवाह करने के लिए भिन्न-भिन्न उपायों से बाध्य करता है । पिता द्वारा पुत्र को विवाह के लिए बाध्य करने का एक पारस्परिक उपाय रमेश बक्षी के 'अठारह सूरज के पौधे' में वर्णित हुआ है ।[४]

---

१. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ० ११

२. राजेन्द्र यादव- सारा आकाश, पृ० १४

3. ,, ,, ,, पृ० १४

४. रमेश बक्षी - 'अठारह सूरज के पौधे', पृ० ८४

सम्पन्न वर्ग की धन लिप्सा का नग्न चित्रण नरेश मेहता ने 'यह पथ बन्धु था' और 'डूबते मस्तूल' में किया है। 'डूबते मस्तूल' के सर साहब अपने पागल बेटे का विवाह कर देते हैं। कन्यापक्ष द्वारा स्वीकृत देय धनराशि पैंतीस हज़ार में पांच हज़ार नहीं दिये जाने पर 'सरसाहब' की सम्पूर्ण लोभवृत्ति क्रोध रूप में रंजना के ऊपर उतरती है। रंजना पर पाशविक अत्याचार करने के अतिरिक्त रंजना के माता-पिता को धमकी दी जाती है कि 'शेष राशि यदि शीघ्र नहीं दी गयी तो वे रंजना' को मार-मार कर जिन्दा दफना देंगे।[१] सर महोदय की धन पिपासा चरम सीमा पर पहुंच जाती है। रंजना की सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिये सर महोदय रंजना के माता-पिता को स्वर्ग भिजवा देते हैं।[२]

'यह पथबन्धु था' में बधू के ऊपर सास-ससुर के अत्याचार का अत्यन्त निकृष्ट रूप प्राप्त होता है। धन के लोभ में गुनी के ससुर रावल जी तथा सास द्वारा गुनी को त्रासित किया जाता है। जब तक इच्छित धन नहीं प्राप्त होता है बहू की रोज पिटाई होती है। ...... बहू को खंभे से बांध कर या खाट से बांध कर मारा जाता है और कोठरी में बंद पड़ी रहती है। रोज बहू को तेल गरम कर जला देने की धमकी दी जाती है कि क्यों नहीं वह अपने घर से बाकी रुपये और सोना मंगवाती है?[३] और अन्त में जब पंडित श्रीनाथ ठाकुर गुनी की विदा के लिये रावल जी के पैरों पर अपनी पगड़ी उतार कर रख देते हैं तब इस शर्त पर गुनी को भेजते हैं कि वह तभी इस घर में आ सकेगी जबकि बाकी की रक़म तथा सोना साथ लायेगी।[४] धन-लोभी वरपक्ष समाज का कुत्सित अंग है जो कन्या को दूध के एक थन से अधिक महत्त्व नहीं देता।

## २. अंधविश्वास

माता-पिता के अंध-विश्वास भी सन्तान के विवाह में हस्तक्षेप करते हैं। कुण्डली का मिलाना और निर्धारित गुणों के मिलने पर ही वर-कन्या का विवाह

---

१. नरेश मेहता - डूबते मस्तूल, पृ० ८५
२. ,, ,, पृ० ७२
३. नरेशमेहता- यह पथबन्धु था, पृ० २४३
४. नरेश मेहता- यह पथ बन्धु था, पृ० २४४

करना एक प्राचीन परम्परा है । आज के समाज में भी 'जन्म-कुण्डली' का विशेष स्थान है । सामान्य मान्यता है कि कुण्डली द्वारा निर्धारित गुणों के मिलने पर पति-पत्नी का दाम्पत्य-जीवन सुखी रहता है । अभिभावकों का कुण्डली मिलाकर अयोग्यवर से विवाह करना, अपने ओछे सिद्धान्तों पर दृढ़ होकर कन्या के जीवन को नष्ट कर देना आदि सामाजिक अंधविश्वासों का विरोध वृन्दावनलाल वर्मा ने 'कुण्डली चक्र' में किया है । कुण्डली मिल जाने पर भी रतन और भुजबल की प्रकृति का विरोधाभास कथाकार के मन्तव्य को स्पष्ट कर देता है ।[१]

'प्रेमाश्रम' में स्थिति भिन्न है । 'राय कमलानन्द बहादुर ने गायत्री का विवाह बड़ी धूमधाम से किया था । विवाह के दो साल पीछे ही गायत्री विधवा हो गयी थी । उसके पति को किसी ने ज़हर दे दिया था ।'[२] प्रथम जामाता की मृत्यु राय साहब के विचारों में परिवर्तन लाती है तथा राय साहब ने मिथ्या आस्था के वशीभूत होकर 'विद्या को किसी साधारण कुटुम्ब में ब्याहने का निश्चय किया, जहाँ जीवन इतना कष्टमय न हो ।'[३]

३ जाति का बन्धन

जाति अभिभावकों के लिये कठिन परिधि है जिससे बाहर निकल कर अभिभावकों को सामाजिक अपमान सहन करना पड़ता है तथा अन्दर रहने पर दहेज-प्रथा का सामना करना पड़ता है । हिन्दू माता-पिता जाति के सभी बन्धन और अत्याचार सहन कर सकते हैं, परन्तु पुत्र तथा पुत्री का जाति से बाहर विवाह करना सहन नहीं कर पाते । जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में अभिभावकों की जाति-प्रेम-भावना को उभारा है 'त्यागपत्र' में प्रमोद की बुआ और शीला के भाई का प्रेम-सम्बन्ध वंशाभिमानिनी भाभी सहन नहीं कर पाती ।[४] गोदान के राय साहब अपने बेटे से सम्बन्ध तोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं क्योंकि रुद्रपाल का सरोज से अन्तर्जातीय-विवाह करना राय-

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा 'कुण्डली-चक्र, पृ० ५३,७२

२. प्रेमचन्द, 'प्रेमाश्रम', पृ० ६७

३. ,, ,, पृ० ६७

४. जैनेन्द्र त्यागपत्र, पृ० १२,१३

साहब की मर्यादा के प्रतिकूल है[१]। राय साहब अन्तर्जातीय-विवाह को अपने धन-बल से रोकने का प्रयत्न भी करते हैं। जाति से अधिक धर्म का बन्धन कड़ा होता है । यदि जात-पांत के भेद-भाव को अभिभावक छोड़ भी दें तो भी धर्म के बन्धन को तोड़ना उनके लिए दुष्कर होता है। 'रंगभूमि' में सोफिया के चरित्र और गुणों पर मुग्ध रानी जाह्नवी उसे अपनी कुल-वधू नहीं बना सकती क्योंकि सोफिया ईसाई है।[२] 'झूठासच' में यशपाल ने धर्म के बन्धन की समस्या को मध्यवर्गीय स्तर पर उठाया है। तारा और असद के प्रेम सम्बन्ध को जानते हुए भी माता-पिता तारा का विवाह अन्य स्थान पर कर देते हैं।[३] असद मुसलमान है और मुसलमान से हिन्दू का बेटी ब्याहना जातीय नहीं धार्मिक अपमान भी है।

४. सामाजिक स्थिति

जहां जाति और धर्म की समस्या नहीं होती वहां माता-पिता की सामाजिक स्थिति का प्रश्न उठता है। 'डूबते मस्तूल' में रंजना का विवाह अकलंक से मात्र इसलिए नहीं करते कि अकलंक राजद्रोही है। राजद्रोही से सम्बन्ध रखने का अर्थ है, राज्य का कोपभाजन बनना। परिणामत: माता-पिता रंजना को अकलंक से अलग करने का प्रत्येक प्रयत्न करते हैं। 'तीन महीने तक घर से बाहर नहीं निकलने देते। रंजना अपने आप को माता-पिता की इच्छाओं के लिए इच्छाहीन' बनाती है और स्वयं को परिस्थितियों के हाथ में ढीला छोड़ देती है।[४]

ख. बाल-विवाह

पूर्व विवेचन में हम देख आए हैं कि अभिभावकों को विवाह के समय अपनी धारणाओं, अन्धविश्वासों, जाति के बन्धनों आदि का विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है। अन्धविश्वास सबसे अधिक प्रकट होता है। बाल-विवाह-प्रथा में। गौरी कन्या के दान से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।' उपर्युक्त विचार ने हिन्दू-माता-पिता

---

१. प्रेमचन्द - गोदान, पृ० ३०२,३०३,३०४

२. प्रेमचन्द- रंगभूमि, पृ० ३६२

३. यशपाल- झूठासच, भाग १, पृ० ३५५

को अजन्मी सन्तानों के विवाह के लिये भी प्रेरित किया ।

प्रेमचन्द ने कर्मभूमि में लिखा है लाला समरकान्त बाल विवाह की बुराइयां समझते थे ।[१] इस आधार पर हम स्वीकार कर सकते हैं कि प्रेमचन्द के समय में समाज में एक विशेष वर्ग पैदा हो गया था जो कानूनी मान्यताओं को स्वीकार कर समाज की कुप्रथाओं को छोड़ने के लिए तैयार था । यह विशिष्ट वर्ग बाल-विवाह को सामाजिक तथा वैयक्तिक रूप से हानिकारक मानकर छोड़ना चाहता था ।

१६२६ में 'बाल-विवाह निरोधक कानून' के लागू हो जाने पर भी समाज में बाल-विवाह-प्रथा नितान्त समाप्त नहीं हो पाई थी । उषा देवी मित्रा ने 'पिया' तथा अमृतलाल नागर ने 'अमृत और विष' मे बाल-विवाह की कुप्रथा का वर्णन किया है । माता-पिता स्वर्ग की मिथ्या लालसा में तथा आत्म-सन्तोष के लिये अबोध बालकों का विवाह कर देते हैं । 'गौरी कन्यादान' के महत्त्व के समक्ष अबोध बालिका के भविष्य का प्रश्न नगण्य हो जाता है । ऐसी स्थिति में भाग्य ही बालकों का साथी होता है । 'पिया' में उषा मित्रा ने बाल-विवाह के कारण को स्पष्ट करते हुए लिखा है -'अभाव और दारिद्र्य के भीतर नीलिमा का जन्म हुआ था पिता अल्प वेतन पाते थे, कठिनाई से गृहस्थी चलती थी । स्त्री-शिक्षा में पिता की रुचि अवश्य थी किन्तु आजी थीं विरोधी । मातृभक्त पिता, माता के सन्तोष के लिए गौरीदान का संचय कर बैठे अष्ट वर्षीय नीलिमा का विवाह करके ।'[२]

भावनाओं में बहकर आत्मसन्तोष के लिये भी माता-पिता कन्याओं का विवाह कम उम्र में कर देते थे । 'अमृत और विष' में रानी कहती है -'तेरह बरस की उमिर थी मेरी । अम्मा टी०बी० की लास्ट स्टेजों में थीं । उन्हें अपने बचने की आशा तो नहीं थी, बस एक रट पकड़ली कि रानी के हाथ पीले करके जाऊंगी , आठ जनवरी को मेरी शादी हुई और पन्द्रह फरवरी को वह लड़का मर गया ।'[३]

'अमृत और विष' के लाल साहब और हिण्डोलवाली के बाल विवाह का कुपरिणाम नागर जी ने उनके सम्पूर्ण दाम्पत्य-जीवन पर दिखाया है । 'ब्याह' के

---

१ प्रेमचन्द कर्मभूमि पृ [illegible]

२, उषादेवी मित्रा -'पिया' , पृ० ८

३ अमृतलाल नागर -'अमृत और विष . पृ० २६०

वक्त लालइसाहब दस बरस के थे और हिण्डोल वाली सात की थी[1]। पांच छः वर्ष पश्चात् जब गौना हुआ तो पलंग पूजने की नौबत ही नहीं आती दोनों में गांठे पड़ जाती हैं, लाल साहब तप कर बाहर निकल जाते हैं।[2] बारहवर्ष की कन्या और पन्द्रह वर्ष के वर से सौहार्द,त्याग आदि आदर्श भावों की आशा भी नहीं की जाती है। परिणामत: प्रथम मिलन में उनके अविकसित हृदय में एक दूसरे के प्रति जो धारणाएं बन जाती है वह जीवन पर्यन्त अपना प्रभाव रखती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि समाज में बाल-विवाह का प्रचलन है,भले ही छिटपुट हों। बाल-विवाह का एक कारण दरिद्रता यदि 'पिया' में दृष्टिगत होता है तो रानी के विवाह के माध्यम से माता-पिता का कोरा हठ कारण-स्वरूप में प्राप्त होता है। लालसाहब और हिण्डोलवाली के विवाह में न तो आर्थिक समस्या का प्रश्न है न भावनाओं का, यदि कुछ है तो मात्र,परिपाटी का पालन।

ग. विधवा-विवाह

बाल-विवाहों के साथ ही समाज में बाल-विधवाओं की संख्या बढ़ी। प्राचीनशास्त्रों में शास्त्रकारों ने विधवा को एकाकी जीवन व्यतीत करने का उपदेश देते हुए भी विशिष्ट परिस्थितियों में विवाह की अनुमति दी है। परन्तु बदलते हुए जीवन-संदर्भ में विधवा-विवाह अनैतिक माना गया। आश्रयहीना विधवा का एकमात्र सहारा अग्नि हो गयी। १६ वीं शताब्दी में हुए प्रयत्नों से सती-प्रथा का अन्त हुआ सती-प्रथा की रोकथाम मानवोचित कार्य था। मृत्यु के मुंह से निकली हुई विधवा को अपमान जनक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ा। फलत: १८५६ ई० में 'विधवा-पुनर्विवाह-कानून' पास हुआ। हिन्दू-समाज में विधवा-विवाह को अपने सांस्कृतिक प्रतिमानों के विरुद्ध पाया। विधवाओं की दशा समाज में शोचनीय होती गयी। बाधित वैधव्य को ओढ़े विधवाएं दीवारों के अन्दर घुटने लगीं।

---

१. अमृतलाल नागर - अमृत और विष, पृ० ४६७
२. अमृतलाल नागर- अमृत और विष, पृ० ४६७

हिन्दी-उपन्यास-कारों ने समाज में विधवा की हीनदशा का अनुभव किया तथा अपने उपन्यासों के माध्यम से उनकी मानसिक दशा तथा सामाजिक स्थिति का चित्रण किया। प्रेमाश्रम में गायत्री की उखड़ी हुई असंयमित चित्तवृत्ति से विधवाओं के प्रति समाज की सहानुभूति जाग्रत करने का सफल प्रयत्न प्रेमचन्द ने किया है परन्तु उच्चवर्ग में आदर्श विधवा-विवाह सम्पन्न कराने का ~~लक्ष्य~~ नव साहस प्रेमचन्द नहीं कर पाये।[१] परिणामत: प्रेमचन्द समाज में विधवाओं के प्रति कोरी सहानुभूति मात्र देकर ही ठिठक गए।

उषादेवी मित्रा के उपन्यास 'पिया' में बाल विधवा नीलिमा के मानसिक सन्ताप और अन्तर्दाह का मार्मिक वर्णन हुआ है। आठ वर्ष की नीलिमा को जिसे अपना विवाह नहीं 'सपना' लगता था, विधवा होने का ज्ञान तब होता है जब उसे हृदय से लगाकर माता ने विवश होकर आंसू की झड़ी लगा दी थी और उसकी मांग का सिन्दूर, नदी में बहाकर कांच की चूड़ियां उतार ली थीं।[२] उषा मित्रा भी समाज में विधवाओं के प्रति सहानभूति उत्पन्न करने के अतिरिक्त कोई अन्य साहसपूर्ण कदम नहीं उठा सकीं।

विधवा-समस्या के समाधान का सफल प्रयास-वृन्दावन लाल वर्मा ने 'अचल मेरा कोई' में किया है। 'अचल मेरा कोई' में पहली बार पिता अपनी विधवा बेटी के लिये सुधारवादी दृष्टिकोण से तथा सच्ची सहानुभूति से सोचता है। "निशा को अपने पति की स्मृति अतीत के पटल पर लिख छोड़ने के सिवाय और कुछ करने को था भी क्या? पिता जर्जर था। सोचता था अब कोई पढ़ा लिखा साधारण घर का ही युवक मिल जाये तो निशा का विधवा-विवाह कर दूं। वह सुधारवादी था और निशा को इनकार नहीं था।[३] अचल और निशाकेविवाहोपरान्त जिस सुन्दर-सरल दाम्पत्य-जीवन का चित्रण लेखक ने किया है उससे विधवा-विवाह के प्रति सुधारवादी मान्यताओं को बल मिलता है।

---

१. प्रेमचन्द-प्रेमाश्रम, पृ० ६६, ३३३.

२. उषादेवी मित्रा, पिया, पृ० ८

३. वृन्दावनलाल वर्मा - अचल मेरा कोई, पृ० २५०

प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने 'विजय' उपन्यास में विधवा-समस्या को उच्च-वर्गीय समाज के परिपार्श्व में उठाया है । बाल विधवा कुसुमलता की अतृप्त इच्छाओं का चित्रण करके विधवाओं की मानसिक स्थिति को व्यक्त किया है । कुसुमलता के विचारों के माध्यम से कथाकार ने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि भारत देश में विधवा-विवाह का प्रचलन नहीं है इसलिए अपने देश की रूढ़िवादिता के प्रति कुसुमलता मनोरमा में क्षोभ संचित होता रहता है ।[१]

कुसुमलता के पिता रामप्रसाद कुसुमलता की स्थिति से परिचित हैं । वे स्वयं कुसुमलता का विधवा-विवाह करना चाहते हैं । उनकी इच्छा है कुसुमलता को सांसारिक देखकर अपनी हवस पूरी कर लें ।[२] डा० आनन्दीप्रसाद से कुसुमलता का विधवा-विवाह सम्पन्न करके रामप्रसाद अपने पिता के उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हैं ।[३]

विधवाओं की आंतरिक हूक, अतृप्त साहचर्येच्छा, ओढ़े हुए धार्मिक बन्धन का प्रेमचन्द तथा उनके बाद के उपन्यासकारों ने वर्णन किया है । जैनेन्द्र ने भी 'परख' में कट्टो के माध्यम से यह दिखाया है कि समाज में शृंगार में रुचि रखते हुए भी बाल विधवाओं को वैधव्य ओढ़ना पड़ता है ।[४] प्रेमचन्द के उपन्यासों में उठी विधवा-समस्या को उषा मित्रा और जैनेन्द्र ने आगे बढ़ाया तथा वृन्दावनलाल वर्मा और प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने अभिभावक द्वारा विधवा-विवाह सम्पन्न करा कर समस्या का समुचित समाधान प्रस्तुत किया है ।

## घ. अन्तर्जातीय तथा अन्तर्धर्मी-विवाह

माता-पिता के लिए जाति का बन्धन दुर्भेद्य होता है । प्रेमचन्द तथा उनके समकालीन उपन्यासकारों के चित्रण से प्रतीत होता है कि माता-पिता जाति तथा धर्म के कट्टर अनुयायी होते हैं । 'गोदान' के राय साहब इसका एक पुष्ट प्रमाण हैं ।[५]

---

१. प्रतापनारायण श्रीवास्तव, विजय, पृ० ५९-६४
२. ,, ,, ,, पृ० १७५
३. ,, ,, ,, पृ० ३४०
४. जैनेन्द्र- परख , पृ० ४२
५. प्रेमचन्द 'गोदान' , पृ० ३०२

इसके पश्चात् भी ऐसे उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं जहां माता-पिता पुत्र के वात्सल्य में बंध कर अपनी जाति तथा धर्म सम्बन्धी कट्टरता को त्याग देते हैं। 'रंगभूमि' की रानी जाह्नवी और कुंवर भरत सिंह तथा 'तितली' की रानी श्यामदुलारी पुत्र -प्रेम में बंध कर जाति ही नहीं धार्मिक बन्धनों का भी परित्याग कर देती हैं।[१] भावी पुत्र-वधुओं ( सोफिया और शैला ) का त्याग पूर्ण जीवन माताओं की ममता को जाग्रत कर देता है।[२]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि जातिप्रथा धर्म के बन्धनों को तोड़ने में युवक वर्ग अग्रगामी रहा है परन्तु माता-पिता विशेष विवशतावश ही बन्धनों का त्याग करते हैं।

यशपाल के 'झूठा- सच' में पं० गिरधारीलाल का विवाह और जाति के विषय में पर्याप्त सुधारवादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है।[3] कंचन और नरोत्तम के विवाह में गिरधारीलाल सहर्ष अनुमति प्रदान करते हैं। उनके लिए जाति का बन्धन व्यर्थ है[4]। फिर भी इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि प्रोग्रेसिव विचारों के होते हुए भी जाति-प्रथा को तोड़ने में पं० गिरधारीलाल के उन्नत विचारों का कम, उनकी आर्थिक स्थिति का हाथ अधिक है। रानी जाह्नवी और रानी श्यामदुलारी के समक्ष यदि पुत्र स्नेह की विवशता है तो पंडित गिरधारीलाल के समक्ष धनहीनता ही एक विवशता है।

पुत्री के हित के लिए योग्यवर की तलाश के संदर्भ में जात-पांत के बन्धन को अस्वीकार करने का पुष्ट उदाहरण आचार्य चतुरसेन के 'बगुला के पंख' उपन्यास में प्राप्त होता है। 'बगुला के पंख' का कथानक स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् के भारत से सम्बन्ध

---

१. प्रसाद - रंगभूमि, तितली
प्रेमचन्द - तितली    क्रमश: पृष्ठ २५०, ४३७
२. प्रसाद - तितली, पृ० २५१
३. यशपाल -झूठासच, भाग २, पृ० ६०७-६०८
४. यशपाल - झूठा सच, भाग २, पृ० ५८३

रखता है । स्वतंत्र भारत में जाति-पाँति के बन्धनों में शिथिलता भी आई है । शिथिलता आने का मुख्य कारण युवकवर्ग है परन्तु उसके प्रभाव से माता-पिता भी मुक्त नहीं हो पाये । 'बगुला के पंख' के डाक्टर साहब' जाति-पाँति की कैद में होते हुए भी कहते हैं -'शारदा के लिए यदि कोई मेरा मन पसन्द लड़का मिल जाये तो मैं जाति-पाँति की ऐसी परवाह न करूंगा ।'[1] शारदा की माँ अपने पति के विचारों को ही दो टूक भाषा में कह देती हैं' वाह हम खत्री हैं, आप अग्रवाल हैं, हममें आप में क्या अन्तर है ?'[2]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् से भारतीय समाज में जाति के बन्धनों को लेकर शिथिलता आ रही है , अभिभावक स्वयं जाति से अधिक वर की योग्यता को महत्त्व देने लगे हैं ।

ब. प्रेमविवाह

पौराणिक कथाओं से प्रकट है कि भारत के लिए प्रेमविवाह' कोई नवीन पद्धति नहीं है ।[3] शास्त्रों में उल्लिखित गान्धर्व-विवाह का ही आधुनिक रूप प्रेम-विवाह है । गान्धर्व-विवाह में नारी और पुरुष का विवाह से पूर्वशारीरिक संयोग आवश्यक है परन्तु प्रेम-विवाह में कानून द्वारा संरक्षता प्राप्त हो जाने से पूर्व शारीरिक संयोग आधार नहीं रह गया है ।

महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता-आन्दोलन में पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी घर से बाहर निकल कर काम करने की प्रेरणा दी । गोली और लाठी का सामना करने वाली स्त्री ने अपनी शक्ति तथा सामाजिक स्थिति को पहचाना । आर्थिक स्वतंत्रता, स्त्री-शिक्षा और स्त्री की स्वतंत्रता की मांग ने स्त्री और पुरुष को एक ही स्तर पर खड़ा कर दिया । शिक्षा के प्रसार ने पुरुषों के विचारों को परिवर्तित किया। युवक-वर्ग अपनी पत्नी के रूप में ऐसी स्त्री की इच्छा करने लगा जो उसकी दासी मात्र न बनकर सहयोगिनी हो । स्त्री-वर्ग ने पतियों से नैतिक सदाचार और पारिवारिक चरित्र में समझौते की इच्छा व्यक्त की । इस प्रकार शिक्षित युवकवर्ग ने पुराने विवाहमूल्यों

---

१. आचार्य चतुरसेन : बगुला के पंख, पृ० २५८
२. ,, ,, पृ० २६०

का खण्डन किया जिससे पतिपत्नी के जीवन के सम्बन्धों का नवीन मापदण्ड निर्धारित हो सका । यह युवकवर्ग माता-पिता की इच्छाओं के आगे नतशिर न होकर, अपने जीवन साथी के चुनाव में, अपने विचारों को महत्त्व देता हुआ विद्रोही प्रकृति का दिखाई देता है ।

क. जातीय प्रेम-विवाह

स्वजाति के युवक-युवती में यदि प्रेमभाव अंकुरित होकर विवाह की संज्ञा धारण करना चाहता है तो अभिभावकों को, यदि कोई विशेष समस्या न हो तो, आपत्ति नहीं होती है । प्राय: जातीय प्रेम-विवाह निर्विघ्न सम्पन्न होते हैं क्योंकि अभिभावकों का अनुमोदन युवक-युवतियों को समाज से संघर्ष करने का साहस देता है ।

प्रसाद ने 'तितली' उपन्यास में तितली और मधुबन में उत्पन्न होते हुए प्रेम-अंकुरों का चित्रण किया है । तितली और मधुबन के प्रेम को बाबा रामदीन पहचान लेते हैं और उनका विचार है कि बिना सामाजिक विरोध के तितली-मधुबन का विवाह सम्पन्न हो सकता है । बाबा रामदीन का अवलम्ब पाकर तितली और मधुबन समाज से लड़ने की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं । विवाह के समय उठी आपत्ति कोई उन दोनों को बहका तो नहीं रहा है, दोनों अपनी इच्छा से विवाह कर रहे हैं और 'सम्पूर्ण चेतनता' से दिया गया मधुबन का छोटा सा उत्तर 'हाँ' तथा तितली का 'मैं भी' तितली और मधुबन के प्रेम की गम्भीर मादकता को अभिव्यक्त करता है ।[१] इस प्रेम-विवाह का सरस प्रभाव तितली और मधुबन के दाम्पत्य-जीवन में परिलक्षित होता है । दोनों के सन्तुष्ट पारिवारिक जीवन को देखकर उदासीन शैला के हृदय में भी मधुर भाव जागृत हो होताहै ।[२]

प्रेम का पवित्र रूप 'कुण्डलीचक्र' में भी प्राप्त होता है । अपने इच्छित वर को प्राप्त करने के लिये अनाथ 'पूना' को समाज और परिवार वालों से संघर्ष करना पड़ता है । पूना अपनी अनिच्छा से भुजबल के साथ होने वाले विवाह को स्वीकार

---

१. जयशंकर प्रसाद - 'तितली', पृ० १२०

२. जयशंकर प्रसाद 'तितली', पृ० १५१

नहीं करती, अपनी सहायता के लिए वह अपने विश्वासपात्र अजित को पुकारती है[१]। एक ग्रामीण कुलीन बालिका का विवाह के क्षेत्र में लेखक ने साहस दिखाया है जो अपढ़ और दरिद्र होते हुए भी न्याय और अन्याय को पहचान सकती है। मरते समय माँ ने अजित को पहचाना नहीं था परन्तु माँ पूना का विवाह अजित से ही करना चाहती थी।[२] पूना भुजबल की लोलुपवृत्ति का तिरस्कार करती है। पूना के हृदय में 'माँ दुर्गा और अपने देव' अजित के अतिरिक्त अन्य किसी का रूप हो ही नहीं सकता[३] मन्दिर के पास तालाब के किनारे एकांत में पूना अजित का वरण करती है और अजित 'शरण से दूर न करने की प्रतिज्ञा' करता है।[४] अजित और पूना के परस्पर समर्पण तथा विश्वास के माध्यम से वर्मा जी ने युवक-युवतियों के प्रेम-सम्बन्धों की दृढ़ता को व्यक्त किया है साथ ही पूना के माध्यम से स्पष्ट किया है कि नारी परिवार वालों की सम्पत्ति नहीं है, उसके पास हृदय है, विचार है, और है आत्मरक्षा की दृढ़ संकल्प शक्ति।

'व्यतीत' में जैनेन्द्र ने जयंत और चंद्री के प्रेम-विवाह को वर्णित किया है। जयंत पत्नी का पूर्ण समर्पण प्राप्त करके भी सुखी नहीं हो पाता क्योंकि वह अपनी पूर्वप्रेमिका अनिता को नहीं भूल पाता। जयन्त और चन्द्री का प्रेम-सम्बन्ध एकपक्षीय है। दाम्पत्य-सम्बन्ध आरोपित लगता है। विकृत मनोदशा में किए गए प्रेम और प्रेम-विवाह का दुष्परिणाम चन्द्री तथा जयन्त के दाम्पत्य-जीवन में परिलक्षित होता है[५]।

'झूठा-सच' की कनक तत्कालीन शिक्षित स्वावलम्बी तथा विद्रोही नारी का प्रतिनिधित्व करती है। कनक का स्वतंत्र व्यक्तित्व तब उभरता है जब वह पुरी को विवाह से पूर्व ही समर्पण कर देती है।[६] कनक के समर्पण में कहीं हिचकिचाहट नहीं

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा - कुण्डलीचक्र, पृ० १२७,१६३
२. ,, ,, पृ० ११७
३. ,, ,, पृ० १६७
४. ,, ,, पृ० २०१
५. जैनेन्द्र - व्यतीत, पृ० ८५,८७, ६३
६. यशपाल - झूठासच, भाग २, पृ० २८२

है । माता-पिता, जीजा, तथा अन्य पारिवारिक-जनों का विरोध सहन कर पुरी और कनक एक दूसरे का वरण करते हैं ।[१] जाति का न होते हुए भी पुरी, कनक के परिवार वालों को पसन्द नहीं था ।[२] सम्पूर्ण विरोधों के होते हुए भी कनक का हठ और पुरी का आग्रह परिवार वालों को विवाह के लिए बाध्य कर देता है ।[३] कनक के पिता भी कनक और पुरी को सिविल मैरेज करने की आज्ञा दे देते हैं।

ख. अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह

स्वजातीय प्रेम-विवाहों को यदि माता-पिता की स्वीकृति प्राप्त हो जाती है तो अन्तर्जातीय प्रेम-विवाहों के लिए उनका विरोध भी उतना ही प्रबल होता है । प्रेमचन्द ने परिवर्तित होती हुयी विवाह-मान्यताओं को पहचाना और समाज की प्रचलित मान्यताओं द्वारा अवैधानिक घोषित विवाह की स्वच्छन्द प्रेमपद्धति को उचित और अधिक मनोवैज्ञानिक ठहराया । युवकवर्ग जाति-बन्धन की रूढ़ियों को तोड़ना चाहता था तथा प्रौढ़-वर्ग जाति के बन्धनों को युवकवर्ग पर लादना चाहता था । इसी ऊहापोह की स्थिति में प्रेमचन्द ने 'गोदान' में सरोज और रुद्रपाल की रचना की । जब लड़का बालिग है तथा अपना नफा नुकसान समझने का जिम्मेदार वह स्वयं हो जाता है, न कि माता-पिता ।[४] बालिगों के लिए प्रेम-विवाह उचित मानते हुए भी कहीं अन्तर्तम में प्रेमचन्द इसके विरोधी भी हैं क्योंकि उन्होंने युवकवर्ग के इस साहस को कच्चा-साहस कहा है साथ ही युवक-वर्ग को कच्चा आदर्शवादी, उद्दण्ड और निर्मम आदि विशेषण दिए हैं ।[५]

उपर्युक्त शब्द प्रेमचन्द के प्रगतिशील विचारों पर एक प्रश्नचिह्न बन जाते हैं । क्या युवक-वर्ग जो पुरानी मान्यताओं के घेरे से निकलना चाहता है वास्तव में मात्र उद्दण्ड और निर्मम ही है ? उसके विचारों में स्थिरता या गम्भीरता नहीं है ?

इसका मुख्य कारण प्रेमचन्द की आदर्शवादिता थी । अपने पात्रों में विनम्रता, सहजता और त्याग आदि का समन्वय पाना ही प्रेमचन्द की दृष्टि से वांछनीय था,

---

१. यशपाल, झूठा सच, भाग २, पृ० ३३६

२. ,, ,, पृ० ३३७

३. ,, ,, पृ० ३३६

जिसका उदाहरण 'रंगभूमि' के सोफिया और विनय हैं । प्रेमचन्द परम्परा से बंधे समाज को बदलना तो चाहते थे पर विध्वंस उनके वश की बात नहीं थी । यही कारण है कि यथार्थ को चित्रित करते हुए भी प्रेमचन्द यथार्थ की त्वरा को नहीं सह पाये । जीवन की प्राचीन अवांछित मान्यताओं के प्रति संकेत तो कर सके, पात्रों के माध्यम से पुरानी मान्यताओं को चुनौती भी दी, परन्तु उग्र रूप से उन मान्यताओं का विरोध न कर सके ।

'गढ़कुण्डार' में वृन्दावनलाल वर्मा ने प्रेम-सम्बन्धों तथा प्रेम-विवाहों में आने वाले व्यवधान के रूप में जाति-समस्या को ऐतिहासिक परिवेश में चित्रित किया है, तो 'मृगनयनी' में अन्तर्जातीय विवाह भी सम्पन्न कराया है । मृगनयनी और मानसिंह का अन्तर्जातीय विवाह समाज की दृष्टि में उचित है क्योंकि राजा ईश्वर का अवतार है और उसके लिए सब कुछ क्षम्य है ।[१] जाति की समस्या उठती है लाखी और अटल के विवाह में । अटल गूजर है और लाखी अहीर । गूजर और अहीर का विवाह धर्म-विरुद्ध है । परिणामत: पंडित, ग्राम, समाज यहां तक कि सम्पूर्ण राज्य लाखी और अटल के विवाह का विरोध करना चाहता है,[२] परन्तु मानसिंह की स्वीकृति और सहयोग प्राप्त होते ही प्रजा शान्त हो जाती है ।

आचार्य चतुरसेन ने 'पत्थरयुग के दो बुत' में राय और माया के अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह का चित्रण किया है । माता-पिता और समाज की अवहेलना करके विवाह करने वाले दम्पती अपने में दृढ़ और विश्वस्त हैं । 'पत्थरयुग के दो बुत' में 'मृगनयनी' के लाखी और अटल के प्रेम की सी पवित्रता तथा प्रसाद के पात्रों की सी आदर्शवादिता न होकर सत्य की कटुता है । क्योंकि चतुरसेन ने प्रेम के आकर्षण को मात्र शारीरिक भूख माना है ।[३] विवाह के पश्चात् प्रेमी-प्रेमिका पति-पत्नी हो जाते हैं जिनके समक्ष उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन होता है । पति-पत्नी का सम्बन्ध प्रेमी-प्रेमिका की भांति

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी, पृ० २०५,२१३

२. ,, ,, पृ० २१२

३. आचार्य चतुरसेन - पत्थरयुग के दो बुत, पृ० ५२

भावनाओं पर नहीं शर्त पर चलता है ।[१]

'रेखा' में भगवतीचरण वर्मा ने प्रेम के आवेश में सम्पन्न हुए अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह के अत्यन्त कुत्सित रूप को प्रस्तुत किया है ।[२] अतृप्त काम-भावना, दाम्पत्य-जीवन से परे शारीरिक सम्बन्ध, मानसिक घुटन तथा टूटते हुए सम्बन्धों में पति-पत्नी का अपरिपक्व प्रेम कारण रूप से निहित है ।[३]

सफल अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह का चित्रण अमृतलाल नागर के 'बूंद और समुद्र' में प्राप्त होता है । मध्यमवर्ग के तारा और मिस्टर वर्मा अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह करते हैं । 'मिस्टर वर्मा जब अपनी अन्तर्जातीय प्रेमिका को मिसेज बनाकर आर्यसमाज मन्दिर से लौटे तो दोनों के घर दोनों के लिए सदा के लिए बन्द हो गए ।'[४] परिवार वालों का विरोध होने पर भी तारा का कदम नई पीढ़ी के लिए आदर्श बन जाता है । 'बड़ी से कहे गए तारा के शब्दों में "अरे बहन ऊंच-नीच की बातें अब कौन मानता है । और हम तो जात-पांत ही को नहीं मानते"[४] अकेली तारा के ही नहीं समस्त युवक-वर्ग के परिवर्तित विचारों की अभिव्यक्ति होती है ।[५] 'बड़ी की नज़रों में तारा हीरोइन है... तारा छोटी की नज़रों में भी हीरोइन है । तारा खुद अपनी नज़रों में भी हीरोइन है'[६] इस वाक्य से स्पष्ट होता है कि आज का युवक-वर्ग जाति-पांति के बन्धनों को तोड़कर जिस मार्ग पर चल पड़ा है उसे वह किसी भी प्रकार हेय नहीं मानता । अपने साहसपूर्ण कार्य को युवकवर्ग सराहना की दृष्टि से देखता है ।

सज्जन और वनकन्या के अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह में एक और यदि जाति-प्रथा का विरोध स्पष्ट होता है तो दूसरी ओर पति-पत्नी के शारीरिक सम्बन्ध के साथ ही आत्मिक सम्बन्ध की पुष्टि होती है । शारीरिक भूख को गौण करके यदि परस्पर

---

१. आचार्य चतुरसेन - पत्थर युग के दो बुत, पृ० ६६,६७

२. भगवतीचरण वर्मा, रेखा, पृ० १६७, ३२१

३. ,, ,, पृ० १६७,१६६,३०६

४. अमृतलाल नागर- बूंद और समुद्र, पृ० ७

५. ,, ,, पृ० १

६. ,, ,, पृ० २

प्रेम और निष्ठा का व्यवहार हो तो निश्चय ही प्रेम की गांठ जीवन भर नहीं खुल सकती । कन्या की दृष्टि में स्त्री-पुरुष का अन्तिम सम्बन्ध विवाह है उसके अतिरिक्त कुछ नहीं । कन्या भोग को नहीं कर्तव्य को जीवन में महत्त्व देती है । सज्जन विलासी है परन्तु वनकन्या के सहवास में वह अपने को उत्तरोत्तर ऊंचा बनाने का प्रयत्न करता है । अपने को कन्या के योग्य 'निर्मल' बनाने की दृढ़ता ही सज्जन और वनकन्या के दाम्पत्य-जीवन को सुखी कर देती है । कन्या के सहवास में सज्जन को नयामार्ग मिलता है और रूढ़िवादिता को हटाने के लिए दोनों एक लक्ष्य होकर चलते हैं ।[१]

ग. अन्तर्धर्मी प्रेमविवाह

प्रेम-विवाह के क्षेत्र में प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' में विनय और सोफिया की रचना करके धार्मिक अभेदता की भूमिका तैयार की । सोफिया और विनय प्रेम के क्षेत्र में धर्म के बन्धन को अस्वीकार कर देते हैं । सोफिया विनय पर अपना पूर्ण अधिकार समझने लगती है, 'उन समस्त नीतियों के अनुसार जिनकी मनुष्य ने और ईश्वर ने रचना रची है ।'[२] विवाह द्वारा विनय पर अधिकार के लिए सोफिया माता-पिता की स्वीकृति अवश्य चाहती है परन्तु 'रियासत नहीं, अपना स्वत्व' जिसे सोफी ने त्याग और प्रेम द्वारा प्राप्त किया है ।[३] विनय और सोफिया का एकनिष्ठ प्रेम माता-पिता को विवाह के लिए बाध्य कर देता है । पर ऐसा लगता है जैसे ईसाई कन्या का हिन्दू वर से विवाह सम्पन्न कराकर सम्भवतया प्रेमचन्द धार्मिक बन्धनों को तोड़ना नहीं चाहते थे, इसलिये विनय और सोफिया के प्रेम का अन्त उन्होंने दोनों की मृत्यु में कर दिया ।

---

१. अमृतलाल नागर, बूंद और समुद्र, पृ० ३७६
२. प्रेमचन्द - रंगभूमि, पृ० ४००
३. ,, ,, पृ० ४००

धार्मिक अभेदता की जिस भूमिका को प्रेमचन्द ने तैयार किया था उसको प्रसाद ने अपने 'तितली' उपन्यास में साकार किया । शैला इन्द्रदेव के साथ विदेश से अपनी जन्मभूमि देखने आती है । जन्मभूमि के साथ ही शैला इन्द्रदेव के प्रति भी आकर्षित है । शैला ईसाई धर्म को मानने वाली है और इन्द्रदेव हिन्दू है । समाज तथा परिवार शैला और इन्द्रदेव के सम्बन्ध को अधार्मिक घोषित कर देता है ।[१] शैला हिन्दू धर्म को स्वीकार कर लेती है और हिन्दू नारी के त्यागमय जीवन को अपना कर समाज-सेवा में लग जाती है । शैला और इन्द्रदेव का वैभव त्याग तथा सेवाप्रधान जीवन परिवार वालों को प्रभावित करता है । अन्त में शैला इन्द्रदेव से विवाह करके आदर्श दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करती है ।[२]

भगवती चरण वर्मा ने अपने उपन्यास 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में बन्धनहीन होते हुए उस युवकवर्ग का चित्रण किया है जो पाश्चात्य जीवन की उच्छृंखलता ग्रहण कर भारतीय जीवन की विनम्रता को त्याग देता है । उमानाथ विदेश जाते हैं और वहीं कामरेड हिल्डा से विवाह कर लेते हैं ।[३] उमानाथ अपने विवाह में न तो माता-पिता तथा परिवार वालों की स्वीकृति आवश्यक समझते हैं और न ही हिल्डा के प्रति पति के भारतीय कर्तव्यों को स्वीकार करते हैं ।[४]

'डूबते मस्तूल' में रंजना डाक्टर जांस्टीन से विवाह करती है । मूलत: रंजना हिन्दू है, परिस्थितियां उसे मुसलमान बना देती हैं । दो पतियों (हिन्दू तथा मुसलमान) द्वारा धोखा दिये जाने के पश्चात् जांस्टीन का प्रेम रंजना के जीवन में सरसता ला देता है । रंजना के शब्दों में,जांस्टीन एक चरित्रहीन पत्नी का चरित्रवान पति था ।[५] रंजना का धर्म-परिवर्तन तथा जांस्टीन के साथ किया गया प्रेम-विवाह रंजना की विव-

---

१. जयशंकर प्रसाद-तितली, पृ० ३२

२. ,, ,, पृ० ११५,२०८

३. भगवतीचरण वर्मा, टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृ० २०४

४. भगवतीचरण वर्मा, ,, पृ० १०५-१०६

५. नरेश मेहता - डूबते मस्तूल, पृ० २०९

शता है । जॉस्टीन के प्रेम में रंजना को पतिप्रेम की पूर्णता प्राप्त होती है ।[१]

घ. विधवा-विवाह

पूर्व विवेचन में हमने देखा कि समाज में विधवा-विवाह को उतनी सफलता नहीं मिली जितना सरकार उसकी सफलता के लिए प्रयत्नशील थी । माता-पिता ने नारी की स्थिति पर ध्यान नहीं दिया । बदलते समाज ने नारी को स्वयं आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहित किया ।

वृन्दावनलाल वर्मा ने 'कचनार' उपन्यास में कलावती और मानसिंह के विवाह का चित्रण किया है । कलावती का विवाह वैदिक मान्यताको लेकर किया गया ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सम्पन्न होने वाला, वर्तमान युग की चेतना का प्रतीक विधवा-विवाह है । कलावती का विवाह मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित है । कटार के साथ विवाह हो जाने से ही किसी लड़की का समर्पण-भाव अपने पति के प्रति जागृत होना आवश्यक नहीं है । विवाह के समय कलावती मानसिंह को सामने देखती है ।[२] कलावती का मानसिंह के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक है । दूसरा पक्ष भी जब प्रतिदान का इच्छुक है तो प्रेम-भाव अंकुरित हो जाना सहज है ।[३] पति-दिलीपसिंह की मृत्यु के पश्चात् कलावती समाज द्वारा आरोपित बन्धनों को उतार फेंकती है तथा मानसिंह से विवाह कर लेती है ।[४] कलावती का साहस संस्कारों में बंधी नारी को चेतना प्रदान करता है । जिस व्यक्ति के साथ आत्मा का सम्बन्ध और प्रेम न हो उसके साथ जीवन व्यतीत करने का तात्पर्य बन्धन और दासता है ।

जैनेन्द्र विधवा-विवाह के क्षेत्र में याज्ञिक (अपार्थिव) विवाह तक ही सीमित रहे । ऐसा विधवा-विवाह जिसका आधार वासना रहित प्रेम हो, जहां पति

---

१. नरेश मेहता - डूबते मस्तूल, पृ० २०६
१. ,, ,, पृ० १४६, १७६
२. वृन्दावनलाल वर्मा -कचनार, पृ० ६
३. ,, ,, पृ० १४८
४. ,, ,, पृ० १४६, १६७

पत्नी आकाश-गंगा और पृथ्वी की गंगा की भांति एक दूसरे को देखते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन जनकल्याण के लिए समर्पित कर दे, शारीरिक तुष्टि का वहां कोई मूल्य नहीं है ।[१]

यशपाल ने 'देशद्रोही' में राजनैतिक क्रान्ति की लपेट में सम्पन्न होने वाले विधवा-विवाह का वर्णन किया है । वुदी कैम्प से डा० खन्ना का अपहरण हो जाता है । कालान्तर में डा० खन्ना को मृत समझ लिया जाता है । वैधव्य के दु:ख से दुखित राज आत्महत्या करने का प्रयत्न करती है । बद्रीबाबू राज को आत्महत्या करने से बचाते हैं । बद्रीबाबू राज के जीवन में परिवर्तन लाने के लिए उसको समाज-कल्याण में रुचि लेने के लिए प्रेरित करते हैं ।[२] धीरे-धीरे राज अपने पति डा० खन्ना को भूल जाती है और बद्रीबाबू के साथ राजनैतिक विवाह द्वारा बंध जाती है ।[३]

'अमृत और विष' में अमृतलाल नागर ने रमेश तथा रानी के माध्यम से आधुनिक युवकवर्ग का आदर्शपरकरूप प्रस्तुत किया है । रमेश आदर्शवादी है, उसके अपने आदर्श हैं और उन आदर्शों के लिए वह कष्ट सहने और संघर्ष करने में विश्वास रखता है अपनी बहन की शादी के अवसर पर वह अपने पड़ोस की विधवायुवती रानी की ओर आकर्षित होता है और अन्त में उससे विवाह करने में सफल होता है ।[४] इसके लिए वह स्वयं तो अपने परिवार से टक्कर लेता ही है रानी को भी संघर्ष की प्रेरणा प्रदान करता है ।[५] रमेश और रानी का संघर्षमय जीवन आधुनिक समाज को सांगोपांग व्याख्यायित कर देता है । आज भी समाज विधवा-विवाह को स्वीकार करने में हिचकिचाता है और समाज के प्रतिकूल चलने में युवकवर्ग को अन्तहीन संघर्ष करना पड़ता है ।

---

१. जैनेन्द्र, परख, पृ० ७४,७५,१०५

२. यशपाल, देशद्रोही, पृ० ४१,७५

३. ,, पृ० १५२

४. अमृतलाल नागर, अमृत और विष, पृ० ४६२, २६४

५. प्रेमचन्द ,, ,, पृ० ४३६

मोहन राकेश ने 'न आने वाला कल' में मनुष्य के जीवन की ऊब को प्रकट किया है। विधवा-विवाह का चित्रण है, जिसका लक्ष्य अस्वस्थ प्रभाव दिखाना अधिक तथा स्वस्थ प्रभाव दिखाना कम है। विवाह के पश्चात् पति-पत्नी एक दूसरे को स्वस्थ मन:स्थिति से स्वीकार नहीं कर पाते। निरन्तर उनके जीवन में यह भाव घुमड़ता रहता है कि दूसरा पक्ष किसी अन्य की अमानत भी रह चुका है। पत्नी अपने वर्तमान पति को भी पूर्वपति के ढांचे में ढालना चाहती है। पति-पत्नी के जीवन में परायेपन का आभास प्राप्त होता है। पत्नी की नज़र में पति 'अब भी एक अकेला आदमी है जिसका घर उसे सम्हालना पड़ रहा था जब कि पति के लिए वह किसी दूसरे की पत्नी थी जिसके घर में 'मैं' एक बेतुके मेहमान की तरह टिका' होता है।[१]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि आज भी पति पत्नी से उसी पवित्रता की आशा ही करता है जिसका वह युगों से आदी है।

ख
ह०. स्त्री का पुनर्विवाह

तलाक-प्रथा का प्रचलन हो जाने से विधवा नारी की तरह तलाक प्राप्त नारी की समस्या ने जन्म लिया। प्रेमचन्द ने "तलाक" का चित्रण अवश्य किया है पर उसे भारतीय समाज में आने वाली कुप्रथा के रूप में ही ग्रहण किया है। उनकी दृष्टि में 'तलाक जिसमें बेचारी पत्नी के लिये कोई व्यवस्था नहीं है यह मांग केवल रुग्ण व्यक्तिवाद की ओर से आ सकती है।'[२]

तलाक और पुनर्विवाह का चेतन उपयोग यशपाल ने किया है। यशपाल के स्त्रीपात्र जैनेन्द्र तथा इलाचन्द्र के नारी पात्रों की भांति निराश और भग्नहृदय नहीं हैं, उनमें चेतना है। यशपाल के नारी पात्र अपने अधिकारों के प्रति सतर्क हैं तथा अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष रत हैं। कनक पुरुष के पाशविक लैंगिक अधिकार को अस्वीकार करती हुई तलाक दे देती है। साथ ही पुरी का अपमान करने लिए वह गिलं

---

१. मोहन राकेश- न आने वाला कल, पृ० १६-१७

२. प्रेमचन्द - चिट्ठीपत्री, पृ० २३८

से पुनर्विवाह भी करती है ।[१]

'झूठा-सच' की तारा कनक की भांति विद्रोही नहीं है फिर भी पति का अत्याचार सहन करना नहीं चाहती । देश-विभाजन की परिस्थितियां जब उसे पति से अलग कर देती हैं तो वह अपनी मुक्ति अनुभव करती है । कालान्तर में डा० नाथ के साथ पुनर्विवाह कर लेती है ।[२]

आचार्य चतुरसेन ने पत्नी के समानाधिकार को महत्त्व दिया है। माया के माध्यम से उन्होंने ऐसे नारी पात्र को चित्रित किया जो पति से भी सदाचार की अपेक्षा रखती है ।[३] पति की बेवफाई का प्रतिशोध माया तलाक द्वारा तथा वर्मा से पुनर्विवाह करके लेती है ।[४] इस स्थान पर माया और 'झूठा-सच' की कनक एक ही वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो पत्नी से सदाचार की इच्छा रखने वाले पति से भी सदाचार की मांग करता है । ये दोनों स्त्री-पात्र अपने स्त्रीत्त्व की अवहेलना तथा अपमान होते देखकर, प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर, पति की सामाजिक ख्याति पर आघात करती हैं, और मात्र इतना ही नहीं पुनर्विवाह करके सुखी जीवन व्यतीत करते हुए पति के अहंभाव पर एक और कठोर प्रहार करती हैं ।

'झूठासच' की कनक और 'पत्थर युग के दो बुत' माया का पुनर्विवाह पति के अनाचारों के प्रति प्रतिशोध की भावना का परिणाम है । 'झूठासच' की तारा संकोची है, वह पति के अत्याचारों से बचने के लिए एक सहारे को ढूंढ़ती है और सुखी जीवन व्यतीत करती है ।

## च. अवैध सम्बन्ध

उपर्युक्त पक्षों के अतिरिक्त समाज में प्रेम-विवाह की एक और प्रथा प्रचलित है जिसे अवैध सम्बन्धों का परिष्कृत परिणाम कह सकते हैं । निम्न वर्ग में अवैध सम्बन्धों से होने वाले विवाहों के पर्याप्त उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं । इन विवाहों

---

१. यशपाल झूठा सच, भाग २, पृ० ६५६

२. ,, ,, ,, पृ० ६६५

३. आचार्य चतुरसेन - पत्थरयुग के दो बुत, पृ० ६८

का आधार पति-पत्नी का अवैध सम्बन्ध (विवाह के बिना ही) होता है, कालान्तर में, संस्कारहीन होने पर भी, इन्हें विवाह की संज्ञा दे दी जाती है । अवैध मिलन ही इन तथाकथित विवाहों का संस्कार कहा जा सकता है ।

गोदान में झुनियां और गोबर का विवाह उपर्युक्त प्रकार का गांधर्व-विवाह है ।[१] झुनिया विधवा है और गोबर कुंवारा । यह बात समाज के मुंह पर आती है परन्तु इसका महत्त्व नहीं है । निम्नवर्ग में विधवा-विवाह निषेध नहीं है । समाज के लिए विरोध करने की वस्तु है तो झुनियां और गोबर का परस्पर विजातीय होना । समाज द्वारा निर्धारित दण्ड भर देने पर झुनियां और गोबर के विजातीय होने का दोष दूर हो जाता है तथा वे लोग समाज में वैधानिक रूप से पति-पत्नी का जीवन व्यतीत करने लगते हैं ।[२]

प्रेमचन्द प्रेम-सम्बन्धों को समाज में प्रचलित सम्बन्धों से अधिक महत्त्व देते हैं । धनी परिवारों में मालिकों के अपनी दासियों से अवैध सम्बन्ध होते हैं । कभी-कभी इस प्रकार के अवैध सम्बन्ध शारीरिक स्तर से उठकर आत्मिक स्तर पर पहुंच जाते हैं । 'कायाकल्प' में लौंगी और ठाकुर साहब का अवैध सम्बन्ध उठकर गृहस्थी की सीमा में प्रविष्ट हो जाता है । लौंगी विधुर ठाकुर साहब के जीवन की रिक्तता को अपनी सेवा और त्याग से भर देती है ।[३] अन्तिम समय में लौंगी दीवान साहब के सर पर हाथ रख कर पूछती है —"प्राणनाथ, क्या मुझे छोड़कर चले जाओगे ?"[४] दीवान साहब की आंखें खुल गईं । इन आंखों में कितनी अपार वेदना थी, किन्तु अपार प्रेम..... आज उसे मालूम हुआ कि जिसके चरणों पर मैंने अपने को समर्पित किया था वह अन्त तक मेरा रहा । यह शोकमय कल्पना भी कितनी मधुर तथा आनन्ददायिनी थी ।[५] इससे स्पष्ट होता है कि ठाकुर साहब और लौंगी का सम्बन्ध साधारण स्तर से उठकर दाम्पत्य-प्रेम

---

१. प्रेमचन्द-गोदान, पृ० १२०
२. ,, पृ० १२५
३. ,, कायाकल्प पृ० २६१
४. ,, ,, पृ० २६६
५. ,, ,, पृ० २६६

की पूर्णता को प्राप्त कर चुका था ।

'सन्यासी' में इलाचन्द्र जोशी ने अवैध सम्बन्ध को अधिक स्थूल और शहरोन्मुखी बनाया है । भावावेश में युवक और युवतियां जिस प्रकार के कच्चे आदर्शों के वशीभूत होकर कदम उठाते हैं 'सन्यासी' के नन्दकिशोर और शान्ति उन्हीं का प्रतिनिधित्व करते हैं । इन सम्बन्धों में दृढ़ता नहीं आ पाती, सम्बन्धों का कच्चापन रहता है । इसका मुख्य कारण है पुरुष का निठल्लापन । बेगारी की स्थिति में जहां वह अपने व्यय के लिए भाई पर आधारित है वहां परिवार से विद्रोह करके पत्नी का व्यय उठाना उसके लिए और भी दुष्कर हो जाता है ।[१] समाज के सम्मुख नन्दकिशोर और जयन्ती का सम्बन्ध पति-पत्नी के रूप में प्रकट हो जाता है ।[२] परन्तु नन्दकिशोर की परिवारभीरुता तथा मानसिक अस्थिरता उनके सम्बन्ध को स्थाई नहीं रख पाती ।[३]

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र के 'अपने-अपने दायरे' में सुमन्त और लारा का सम्बन्ध नितान्त शारीरिक स्तर पर प्रारम्भ होता है ।[४] परन्तु इस देहभोग के सिलसिले में लारा पराजित होकर विचित्र बन्धन में बंध जाती है ।[५] लारा सुमन्त से विवाह का प्रस्ताव रखती है परन्तु गुरु के भय से सुमन्त लारा का प्रस्ताव अस्वीकार कर देता है । लारा अपने देश लौट जाती है ।

भोगवादी लारा प्रेम के विचित्र बन्धन में खिंच कर पुन: भारत आती है और अन्तिम निर्णय लेते हुए कहती है -" मैं अब तुम्हें छोड़ कर कहीं नहीं जा सकती हूं । मैं उसी देश में रहना चाहती हूं जहां के लोग सम्बन्धों को जीते हैं । जहां आदर्श है, प्रेम की अथाह गहराई है, उसे लोग कभी भी भुलाते नहीं ।"[६]

---

१. इलाचन्द्र जोशी, सन्यासी , पृ० २५२-२४२
२. ,, ,, पृ० २२०
३ ,, ,, पृ० २६७
४. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, अपने अपने दायरे , पृ० १५
५. ,, ,, पृ० ३१
६. ,, ,, पृ० १०१

उपन्यास में तनावपूर्ण स्थिति में लारा और सुमन्त के अवैध सम्बन्ध का समाज के सम्मुख रहस्योद्घाटन होता है । लारा और सुमन्त का अवैध सम्बन्ध सामाजिक दायित्व को स्वीकार कर विवाह में परिणात हो जाता है ।[१]

स. बलपूर्वक किया गया विवाह

अभिभावकों द्वारा किया गया विवाह तथा प्रेम-विवाह के अतिरिक्त समाज में एक प्रथा और पाई जाती है जिसमें कन्या का अपहरण करके भयभीत करके, उसे विवाह के लिए बाध्य किया जाता है । अमृतलालनागर ने 'सात घूंघट वाला मुखड़ा' में स्पष्ट किया है कि भारतीय मध्यकाल में किस प्रकार कन्या का अपहरण करके उसे किसी भी पुरुष के हाथ बेच दिया जाता था । कन्या को भय दिखाकर विवाह के लिए विवश किया जाता था ।'सात घूंघट वाला मुखड़ा' उपन्यास की दिलाराम से प्रेम और विवाह का अभिनय करने वाला वशीर खाँ दिलाराम को टामस के हाथ विक्रय कर देता है ।[२] टामस नवाब समरू की नई बेगम का स्वागत करता है ।[३] दिलाराम क्रीतदासी बनकर दु:खी अवश्य होती है परन्तु चतुर्दिक वातावरण उसे स्त्री की वास्तविक स्थिति से भिन्न कराता है और वह अपनी सुन्दरता के बल पर सल्तनत की सम्राज्ञी बनने का स्वप्न देखने लगती है ।

कृष्णा सोबती ने 'डार से बिछुड़ी' हुई उपन्यास में नारी की असहाय स्थिति का चित्रण किया है । मालन पति के मरते ही घर में देवर बरकत, दीवान की बांदी और रखैल बन जाती है ।[४] रखैल बनने में आपत्ति उठाने पर बरकत दीवन मालन को बेच देता है ।[५] अपनी मासी और पुत्र से दूर अपहृता मालन 'द्रौपदी बनकर' लाला और उनके 'लड़ाके लड़ैत' लड़कों की खिदमत में लग जाती है ।[६] तीन भाइयों के मध्य

---

१. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - अपने अपने दायरे, पृ० १५०,१५१
२. अमृतलाल नागर- सात घूंघट वाला मुखड़ा, पृ० ७-८
३. ,, ,, पृ० १६
४. कृष्णासोबती- डार से बिछुड़ी , पृ० ८२,८३
५. ,, ,, पृ० ८६
६ ,, ,, पृ० ८६,६१

अकेली पत्नी खिंची-खिंची घूमती है ।' बारी-बारी से तीनों हुक्म चलाते और मैं सिर झुका बजाती । ... सबसे बड़े खिंचे खिंचे रहते, छोटे निर्दयता से छेड़-छाड़ करते, मझले डांटते-फटकारते और अकेले में अपने ही ढंग से पुचकारते ।[१] कन्या की इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक विवाह करने का एक पुष्ट उदाहरण 'डूबते मस्तूल' उपन्यास में प्राप्त होता है । अहमद पुराने वैर-भाव तथा रंजना के सौन्दर्य के वशीभूत हो विवाहिता रंजना का अपहरण करता है ।[२] अपहृता रंजना के साथ छुरे की नोक पर अहमद विवाह करता है । वैधानिक रूप से रंजना को बीबी बनाने के लिए तथा काज़ी के समक्ष रंजना से हां कहलवाने के लिए अहमद पशुबल का प्रयोग करता है । रंजना के इन्कार करने पर सबके सामने दो चांटे मारता है और तब कानूनन और मजहबी तौर पर वह रंजना का शौहर बन जाता है ।'[३]

निष्कर्ष --

समाज में प्रचलित विवाह के मुख्य दो प्रकार अभिभावकों द्वारा किये गये विवाह तथा प्रेम-विवाह का पर्याप्त चित्रण हिन्दी के उपन्यासों में हुआ है । अभिभावकों के सन्मुख विवाह के समय आने वाली समस्याओं को कथाकारों ने समाज के गलित अंग के रूप में लिया है । दहेजप्रथा, जाति और धर्म का बन्धन, अंधविश्वास तथा सामाजिक स्तरीय भेदभाव के प्रति कथाकारों का दृष्टिकोण सम्पूर्ण रूप से बहिष्कारात्मक है । समाज-कल्याण के प्रति उपन्यासकार सजग दिखाई पड़ते हैं ।

बाल-विवाह को समाज ने त्यागा साथ ही उपन्यासकारों ने भी विरोध किया । विधवा-विवाह तथा नारी के पुनर्विवाह के प्रति उपन्यासकारों के दृष्टिकोण उदार

---

१. कृष्णा सोबती, डार से बिछुड़ी, पृ० ६३
२. नरेश मेहता- डूबते मस्तूल, पृ० ७६
३. नरेश मेहता, डूबते मस्तूल, पृ० ८०

हैं । अन्तर्जातीय और अन्तर्धर्मी विवाह का जहां तक प्रश्न है, जाति-प्रथा तथा धर्म के बन्धनों को तोड़ने वाली नई पीढ़ी, यदि 'उद्दण्ड और निर्मम' नहीं है तो, कथाकार ने उसकी सराहना की है । रूढ़िबद्ध विवाह-प्रणालियों के स्थान पर बदलती सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप ही आज का कथाकार भी प्रेम-विवाह को उचित और मनोवैज्ञानिक स्वीकार कर रहा है ।

# द्वितीय अध्याय

## हिन्दी उपन्यासों में बहुपत्नीत्त्व और अनमेल विवाह

(क) बहुपत्नीत्त्व का चित्रण

१. बहुपत्नीत्त्व के कारण

अ. समाज में स्त्रियों की बहुलता

ब. वंशवृद्धि

स. पुरुषों की विलासी प्रवृत्ति

२. बहुपत्नीत्त्व और पत्नियों का दृष्टिकोण

अ. सहज स्वीकृति

ब. विवश स्वीकृति

३. जनानखाने का चित्रण

अ. सुमति पूर्ण

ब. कलह पूर्ण

४. बहुपत्नीक पति की स्थिति

निष्कर्ष

(ख) अनमेल विवाह

१. आयु के स्तर पर

२. शारीरिक स्तर पर

३. धन के स्तर पर

४. शिक्षा के स्तर पर

५. प्रकृति के स्तर पर

निष्कर्ष

(क) बहुपत्नीत्त्व का चित्रण

१६ वीं शताब्दी में प्रारम्भ होने वाले सामाजिक आन्दोलनों के परिणामस्वरूप अन्य कुप्रथाओं के साथ ही बहुपत्नीत्त्व-प्रथा भी समाप्तप्राय हो गई। प्रेमचन्द के समय में बहुपत्नीत्त्व प्रथा का प्रचलन अवश्य था, परन्तु बहुत कम। राज-घरानों तथा ज़मीन्दारों के यहां बहुपत्नियां रखने की परम्परा थी जिसका यत्र-तत्र हिन्दी उपन्यासों में चित्रण हुआ है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में बहुपत्नीत्त्व का चित्रण पर्याप्त रूप में प्राप्त होता है। ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने प्राचीन इतिहास की भव्यता एवं प्राचीन वैवाहिक मनोवृत्तियों का तटस्थ भाव से चित्रण किया है। बहु विवाह और सुखद दाम्पत्य-जीवन तथा दु:खद दाम्पत्य-जीवन का चित्रण प्राप्त होता है। परन्तु कथाकार का उद्देश्य बहुपत्नीत्त्व की आलोचना करना न होकर इतिहास प्रस्तुत करना है। प्रेमचन्द तथा उनके समय के सामाजिक उपन्यासकार तत्कालीन परिस्थितियों से जूझे हैं। उनके उपन्यासों में बहुपत्नीत्त्व-प्रथा को दोष-पूर्ण प्रमाणित कर समाज से निकालने का प्रयत्न परिलक्षित होता है।

१. बहुपत्नीत्त्व के कारण

बहुपत्नीत्त्व के प्रचलन के कारणों पर भी उपन्यासकारों ने प्रकाश डाला है। कभी ये कारण स्त्रियों की समस्या को लेकर चलते हैं, कभी वंशवृद्धि की समस्या को और कभी पुरुष की वासनात्मक अतृप्ति को अभिव्यक्त करते हैं।

अ. समाज में स्त्रियों की बहुलता

बहुपत्नीत्त्व प्रथा के प्रचलन में सबसे महत्त्वपूर्ण कारण समाज में स्त्रियों की बहुलता माना गया है। गुरुदत्त के 'बहती रेता' उपन्यास में मल्लिका एक विचारक की भांति बहुपत्नीत्त्व-प्रथा पर विचार करती है और उसको अमनोवैज्ञानिक तथा दोषपूर्ण मानते हुए भी स्वीकार करती है कि एक से अधिक विवाह करने की प्रथा संसार में प्रचलित है। इसमें एक बात उसे और पता चलती है कि संसार में लड़कियों की संख्या लड़कों से अधिक है। ऐसी स्थिति में दो प्रथाओं का चल जाना स्वाभाविक

है । एक बहुपत्नी रखने की प्रथा, दूसरी गणिकाओं का बाहुल्य ।[१] ऐसी स्थिति में निश्चित ही समाज लोक-कल्याण की दृष्टि से बहुपत्नी-प्रथा को उचित कहेगा ।

(ब) वंशवृद्धि

स्त्रियों का बाहुल्य होने पर यदि स्त्रियां क्वांरी रह जाती हैं तो वे सन्तान का प्रजनन नहीं कर सकतीं, 'तब तो राष्ट्र को भारी हानि पहुँचेगी और समाज में दुराचार बढ़ जाने की सम्भावना है ।'[२] पुत्रोत्पत्ति के लिए बहु विवाह को उचित करार देते हुए 'बहती रेता' की मृदुला कहती है — विवाह के मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति में तो स्त्री एक समय में एक ही पति रख सकती है और पुरुष एक से अधिक स्त्रियां ।[३] जनसंख्या की वृद्धि के लिए यह आवश्यक भी है । सन्तानों से भरा-पूरा परिवार भी समृद्धि का प्रतीक माना जाता है । इससे स्पष्ट होता है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है । यदि एक पत्नी से सन्तान नहीं होती तो पुरुष को अधिकार है कि वह दूसरा विवाह कर ले ।

'बहती रेता' के राजा श्री मुरहारिविक्रम का पहला विवाह मल्लिका से होता है । मल्लिका से मुरहारि विक्रम को स्नेह भी है । परन्तु विवाह के दो वर्ष उपरान्त भी जब मल्लिका सन्तान न दे सकी तो मुरहारि विक्रम ने दूसरा विवाह करने का विचार किया । प्रथा के अनुसार राजा को पत्नी मल्लिका और राज्य-मंत्रियों से अनुमति लेनी पड़ती है । मल्लिका मुरहारिविक्रम के लिए दूसरी पत्नी की तलाश करती है जो उनके बच्चे की माता होगी ।[४] मुरहारि विक्रम को दूसरे विवाह की अनुमति मल्लिका विवशतावश देती है । वह स्वयं बहुपत्नीत्व को उचित नहीं मानती है ।

---

१. गुरुदत्त - 'बहती रेता', पृ० २५३, २५४
२. ,, ,, पृ० १३५
३. ,, ,, पृ० १५६
४. ,, ,, पृ० २५५, २५७

'कायाकल्प' में राजा विशाल सिंह पहली पत्नी की मृत्यु हो जाने पर तथा एक मात्र कन्या के मेले में खो जाने पर सन्तान-प्राप्ति के लोभ में तीन विवाह करते हैं। सपत्नियों की कलह से ऊब कर खीझ में कहे गए वाक्य, 'विवाह क्या किया था भोग विलास करने के लिये ?'[१] में बहु विवाह का मूल उद्देश्य स्पष्ट होता है। सन्तान के लिए राजा साहब की तीव्र आसक्ति तब अभिव्यक्त होती है जब खोई हुई पुत्री सुखदा और 'निवाला' शंखधर उन्हें मिल जाते हैं। सुखदा और शंखधर को प्राप्त कर विशाल सिंह भाव-विह्वल हो जाते हैं क्योंकि 'अब उनकी अभिलाषा पूरी हो गयी थी। जिस बात की आशा तक मिट गयी थी, वह आज पूरी हो गयी।'[२]

नरेश मेहता के 'प्रथम फाल्गुन' उपन्यास में सन्तान के कारण होने वाले दूसरे विवाह का चित्रण हुआ है। 'पहली पत्नी से लग्नोपरान्त जब अनेक वर्षों तक कोई सन्तान न हुई तब नाथ बाबू को दूसरे विवाह के लिए बाध्य होना पड़ा। लेकिन संयोग की बात कि दूसरे विवाह के पांच वर्ष बाद गोपा का जन्म हुआ। दम्पती को इससे प्रसन्नता अवश्य हुई, लेकिन पति-पत्नी का सम्बन्ध तब तक बिवाई हो चुका था।[३]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि वंशवृद्धि के लिए पुरुष दूसरा विवाह अथवा बहु विवाह करता है। दूसरे विवाह के पश्चात् यदि पहली पत्नी से भी सन्तान उत्पन्न होने लगती है तो सन्तान-प्रेम का नहीं, कलह का कारण बन जाती है।

## स. पुरुषों की विलासी प्रवृत्ति

स्त्रियों की बहुलता और वंशवृद्धि बहुपत्नीत्व के सामाजिक कारण हैं। बहुपत्नीत्व का नितांत वैयक्तिक और मनोवैज्ञानिक कारण है पुरुषों की विलासी प्रवृत्ति।

---

१. प्रेमचन्द- कायाकल्प, पृ० ६६

२. प्रेमचन्द- कायाकल्प, पृ० २२६

'बहती-रेता' की मृदुला पुरुषों की असीमित वासना को लक्षित कर के कहती है, 'पुरुष स्वभाव से और प्रकृति से बहुपत्नीक होता है।'[१] 'वन्दिता' उपन्यास की पार्वती कहती है --'राजाओं का मन कभी एक नारी से सन्तुष्ट नहीं हुआ।'[२] 'पक्षी और आकाश' की सुभद्रा कहती है, 'पुरुष का मन, कहते हैं विभिन्नता चाहता है।'[३] 'इससे स्पष्ट होता है कि बहु विवाह के प्रचलन में पुरुष की विलासी प्रवृत्ति एक मुख्य तथा महत्वपूर्ण कारण है।

'बहती रेता' का नायक भानुमित्र प्रेमपक्ष को अमहत्वपूर्ण करार करते हुए वैभव के बल पर प्राप्त की गई वासना को ही महत्व देता है। 'मेरा तो यह विचार है कि किसी औरत से प्रेम करना अपने आपको धोखा देना है। अपने में धन, बुद्धि और बल की वृद्धि करनी चाहिए फिर स्त्रियाँ तो स्वयं आगे पीछे चक्कर काटने लगती हैं।'[४] विकृत विचारों के साथ भानुमित्र स्त्रियों के प्रति आकर्षित होता है। बहु-पत्नीत्व में भानुमित्र की वासनात्मक वृत्ति उभरी है। वह वैशाली की नगरवधू मृदुला के उत्तेजक सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है। राका के लज्जा-युक्त सौन्दर्य को देखकर 'गृहलक्ष्मी' बनाने की इच्छा उत्पन्न होती है। प्रचला के शृंगार-विहीन सौन्दर्य को देख कर वह वैशाली के कीचड़ में उत्पन्न पंकज को उखाड़ कर ले जाने का निश्चय कर लेता है।[५] सौन्दर्य के प्रति इतनी तीव्र आसक्ति और सुन्दरियों को पत्नी बना कर अपने रनवास में रखने की प्रबल इच्छा के पीछे भानुमित्र का एकमात्र प्रयोजन वासना की तृप्ति और समाज के सम्मुख अपने बौद्धिक तथा आर्थिक वैभव का प्रदर्शन है। भिन्न-भिन्न स्त्रियों के भिन्न-भिन्न स्वादों को प्राप्त करने का उचित और सम्मानित साधन बहुपत्नीत्व है। 'राका के सौन्दर्य' में कौतूहल, मृदुला के सौन्दर्य में उन्माद तथा प्रचला के सौन्दर्य में तृप्ति प्राप्त कर भानुमित्र 'त्रिगुणात्मक प्रकृति का आनन्द उठाता है।'[६]

---

१. गुरुदत्त -'बहती रेता', पृ० १५५.

२. प्र०ना० श्रीवास्तव, 'वन्दिता', पृ० ७६

३. रांगेयराघव, 'पक्षी और आकाश, पृ० २२४

४. गुरुदत्त- बहती रेता, पृ० 134

५. गुरुदत्त- बहती रेता, पृ० १७७

६. गुरुदत्त- बहती रेता, पृ० १६६

'पक्षी और आकाश' का धनदत्त अपने बहु विवाह को लोक-परम्परा की आड़ लेकर कहता है 'पुरुष हूं, मेरा क्या लोक यही करता है ।'[१] धनदत्त का पहला विवाह कुसुम श्री से होता है । वह सोचता है -'क्यों मैं इतने वेग से गया था उस ओर । उस विषाद की अति ने मुझे वासना के प्रासाद में दे मारा था ।... और तब मैं प्रासाद में गया । विवाह हुआ,.... तब ? तब कुसुम श्री के नयनों में भूल गया और भूल गयी कुसुम श्री अपने आपको मेरे संगीत में ।'[२]

धनदत्त की वासना कुसुम श्री से तृप्त नहीं होती । वह विवशता-वश सोमश्री से विवाह करता है परन्तु,'नारी नारी ही थी ।'[३] फिर पत्नियों और गुरुजनों के आग्रह पर करता है सुभद्रा से विवाह,'मैंने देखा और सोचा अब ? किन्तु नारी का रूप मेरे ऊपर छा गया । तब वासना समुद्र थी/ मैं डूब गया । कुसुम श्री और सोमश्री से भी अधिक मोहक थी सुभद्रा ।'[४] सुभद्रा के सौन्दर्य के पश्चात् सौभाग्य मंजरी के सामीप्य में धनदत्त को प्राप्त होता है, नारी का समर्पण बिना किसी 'शर्त' के ।[५]

कुमारी नारी के समर्पण और नवीन तन के आकर्षण के प्रति पुरुष की असीम वासना को धनकुमार स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है । छः विवाहों के पश्चात् भी वह अनुभव करता है कि 'तृष्णा अभी और थी ।'[६] विवाह में धनदत्त को मिलते हैं 'दो नये तन ।..... जिनमें प्राण हैं ।[७] विवाह के द्वारा प्राप्त नारी को मात्र शारीरिक स्तर पर भोगने की स्वीकारोक्ति प्राप्त होती है, धनदत्त के उपर्युक्त वाक्य में ।

---

१. रांगेय राघव, पक्षी और आकाश, पृ० २१६,२१७
२. रांगेय राघव- पक्षी और आकाश, पृ० १४१
३. ,, ,, ,, पृ० १४७
४. ,, ,, पृ० १५७
५. ,, ,, पृ० १७७
६. ,, ,, पृ० २१७
७. ,, ,, पृ० २१७

परम्परा पर व्यंग्य करते हुए धनद कहता है —'विवाह क्या है मात्र धनी के लिए खेल।'[१] पत्नियों के प्रति कहे गए वाक्य —'ये पत्नियाँ जो मेरे वैभव ने खरीदी हैं' में धनद के अहं की अभिव्यक्ति होती है।[२] बहुपत्नियों से भरे दाम्पत्य जीवन की व्यर्थता उसके एक वाक्य 'तूने किसे प्यार किया है? ..... प्यार कैसे बंट सकता है?' द्वारा स्पष्ट हो जाती है।[३]

'मृगनयनी' के राजा मानसिंह नौ विवाह करते हैं। पहली रानी से उनके एक पुत्र भी है। उसके पश्चात् आठ विवाह और करना राजा साहब की विलासी प्रवृत्ति का द्योतक है। रानी सुमन मोहिनी के कथन, 'न सुनाऊँ तो राजा किसी गाँव से एकाध सुन्दरी का संग्रह और कर लायें। क्या ठीक है इनका,' में राजाओं की नारी सौन्दर्य प्रियता तथा असंयमित वासना की अभिव्यक्ति होती है[४]।

'कायाकल्प' में बहुविवाह के पीछे मुख्यकारण सन्तान है परन्तु विशाल-सिंह का मनोरमा से विवाह करना उनकी अतृप्त वासना को व्यक्त करता है। 'राजा विशाल सिंह की जवानी कबकी गुजर चुकी थी किन्तु प्रेम से उनका हृदय अभी तक वंचित था। ..... प्रेम वह प्याला नहीं है जिससे आदमी छक जाये उसकी तृष्णा सदैव बनी रहती है।'[५] वस्तुतः विशालसिंह की अतृप्ति प्रेम की नहीं है, वासना की है और ऐसे में मनोरमा उनके सामने 'मीठे ताजे जल की गागर लिए हुए सामने आ निकली और वे उसकी ओर लपके तो आश्चर्य की कोई बात नहीं।'[६] विशाल सिंह की शारीरिक सौन्दर्य के प्रति आसक्ति तब और स्पष्ट हो जाती है जब वे मनोरमा को देखते हैं। 'मनोरमा के सौन्दर्य ने उनके ऊपर जादू-सा असर डाला था।'[७] मनोरमा के

---

१. रांगेय राघव, पक्षी और आकाश, पृ० २२४
२. ,, ,, पृ० २३१
३. ,, ,, पृ० २४५
४. वृन्दावनलाल वर्मा, मृगनयनी पृ० ३०८
५. प्रेमचन्द, कायाकल्प ,, पृ० १२३
६. ,, ,, पृ० १२४
७. ,, ,, पृ० ११६

लिये राजा साहब की वासना भड़क उठती है और उनके हृदय में एक विचित्र-सी आकांक्षा अंकुरित होने लगती है।[१]

प्रतापनारायण के 'विजय' उपन्यास में बहुविवाह के पीछे पुरुष की वासनात्मक प्रवृत्ति और अधिक उभरी है। हिन्दू-धर्म और नियम की आड़ लेकर राजा प्रकाशेन्द्र कहते हैं - 'हिन्दू ला में एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री से प्रेम करना कुछ अपराध नहीं है।.... मैं पुरुष हूँ और राजा हूँ इसलिये यह मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है कि जितनी स्त्रियों से चाहूँ सम्बन्ध स्थापित करूँ।'[२]

रानी मायावती के होते हुए भी प्रकाशेन्द्र मिस ट्रैविलियन से विवाह करने जा रहे हैं मात्र इस आधार पर-कि 'तुम रुपयों का शिकार खेलती हो और मैं सुन्दरियों का। रूपगढ़ की रानी हो जाने से तुम्हारे रुपयों का सवाल मिट जायेगा और फिर तुम मेरे लिये शिकार करना।'[3] दूसरे विवाह का इतना निकृष्ट उद्देश्य, जो यथार्थ से अलग नहीं है, अन्य किसी उपन्यास में नहीं प्राप्त होता।

२. बहुपत्नीत्व और पत्नियों का दृष्टि-कोण

हिन्दू-समाज में पुरुष को 'यूप' कहा जाता है, जिससे 'अनेक स्त्रियाँ बंध सकती हैं।' नारी को मात्र सम्पत्ति समझने वाले समाज में नारी के व्यक्तित्व पर कभी विचार नहीं किया गया। संस्कारों में जकड़ी नारी पति के अतिरिक्त अन्य कहीं अपनी गति नहीं देखती है। परिणामतः वह अपने अस्तित्व को मात्र भोग की वस्तु स्वीकार कर लेती है। बहुपत्नीत्व एक सामाजिक परम्परा है जिसे स्त्री को स्वीकार करना पड़ता है। स्त्री की स्वीकृति कभी सहज होती है और कभी विवश।

अ. सहज स्वीकृति

'बहती रेता' में योग्य पति को प्राप्त करने के लिये पत्नियों की प्रबल इच्छा का चित्रण हुआ है। महामात्य भानुमित्र का पद-गौरव स्त्रियों के लिये आकर्षण का

---

१. प्रेमचन्द, कायाकल्प, पृ० ११७

२. प्रतापनारायण श्रीवास्तव 'विजय', पृ० ३२६

3 'विजय', पृ० ५७१

केन्द्र बन जाता है । गणिका का जीवन व्यतीत करने के स्थान पर पुरुष की पत्नी बनना अधिक सम्मानित पद है । परिणामत: नगरवधू मृदुला भानुमित्र का वरण करती है । नियमानुसार मृदुला पाँच वर्ष तक नगरवधू के पद को त्याग नहीं सकती । स्थिति और परम्परा को देखते हुए वह विचार करती है -" जब तक मैं आपसे (भानुमित्र) विवाह करने के लिये तैयार हो सकूँगी विवाह हो जाना स्वाभाविक ही है । भला इतने ऊँचे पद पर रहते हुए आपके पथ में प्रलोभन आवेंगे नहीं, यह मैं नहीं मान सकती ।"[१] मृदुला विवाहिता का "अधिकार" लेने के लिए भानुमित्र की दूसरी पत्नी बनना स्वीकार कर लेती है ।

सुरक्षित और प्रतिष्ठित जीवन व्यतीत करने की इच्छा "प्रचला में भी प्राप्त होती है । भानुमित्र प्रचला से विवाह के लिए निवेदन करता है । उसे विश्वास नहीं होता कि एक पत्नी होते हुए भी भानुमित्र उससे विवाह करेगा । वह पूछती है, "सच क्या तुम मुझसे विवाह कर लोगे ?"

"हाँ"

"मेरी मान प्रतिष्ठा करोगे ?"

"हाँ ! हाँ !"

" उतनी ही जितनी अपनी पहली पत्नी की करते हो ?"[२]

राका भी योग्य पति की पत्नी बन कर प्रतिष्ठा का लाभ उठाना चाहती है । उसके समक्ष पति का प्रतिष्ठित पद और गौरव अधिक महत्त्व रखता है, शारीरिक सम्बन्ध कम । राका सोचती है - "एक अच्छे पति का आंशिक भोग अच्छा है अथवा एक निकृष्ट पति का पूर्ण भोग ?"[३] यह प्रश्न राका के मानस को मथ देता है और राका "महामात्य" भानुमित्र जैसे पति को चार उपपत्नियों के साथ भी उपमा" देने के लिए तैयार हो जाती है ।[४] किसी साधारण पति की एकमात्र

---

१. गुरुदत्त- बहती रेता, पृ० १५५
२. ,, ,, पृ० १७०
३. ,, ,, पृ० २५४
४. ,, ,, पृ० २५५

पत्नी बनना उसे स्वीकार नहीं है ।

'पक्षी और आकाश' में भी इस प्रकार के चित्रण प्राप्त होते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि पत्नी बहुपत्नीत्व-प्रथा के लिए पूर्णतः तैयार रहती है । पति की योग्यता और सम्पन्नता ही उसका एक मात्र लक्ष्य होता है । धनदत्त का दूसरा विवाह सौमश्री से होता है, कुसुमश्री सहर्ष स्वीकृति देती है ।"यह अवसर कैसे चूकूंगी। सम्राट मेरे पिता के समकक्ष होंगे । राजकुमारी मेरी स्वामिनी होगी ।'[1] पति और पिता का गौरव बढ़ाने के लिये पत्नी पति का दूसरा विवाह स्वीकार कर लेती है । सुभद्रा के साथ विवाह के समय कुसुमश्री कहती है, 'पुरुष के हजार' विवाह हो सकते हैं ।[2] सौभाग्य मंजरी यह जानते हुए कि धनदत्त के तीन विवाह हो चुके हैं उसका वरण करती है ।'राजकुल की स्त्रियों को तो धैर्य की शिक्षा दी जाती है ।'[3] विवाह के पश्चात् वह इतना ही पूछती है, मेरी तीन बड़ी बहनें हैं । सुना है मैंने । कैसी हैं ?'[4] सौभाग्य मंजरी के प्रश्न में अपनी सौतों के विषय में जानने की उत्सुकता मात्र है ईर्ष्या नहीं ।

सुभद्रा बहुपत्नीत्व और पत्नियों की स्थिति पर विचार करते हुए कहती है, " पुरुष का यश भी बुरा । लोक ऐसा है कि जिसके अधिक पत्नियां नहीं, उसका गौरव कम माना जाता है । ऐसे में हम करें भी क्या ? यही अच्छा है कि मिल-जुल कर रहें ।'[5]

पत्नियां बहुपत्नीत्व को सहज रूप में स्वीकार कर लेती हैं क्योंकि यह लोक परम्परा है ।'पुरुष का मन कहते हैं विभिन्नता चाहता है । यही पिता में देखा, यही भाई में देखा । लोक के सारे समर्थ यही करते हैं ।'[6] अपने आस-पास जिस

---

१. रांगेय राघव- पक्षी और आकाश, पृ० १४६
२. रांगेय राघव, पक्षी और आकाश, पृ० १५७
३. रांगेय राघव, पक्षी और आकाश, पृ० १८४
४. रांगेय राघव, पक्षी और आकाश, पृ० १७७
५. रांगेय राघव, पक्षी और आकाश, पृ० २०६
६. रांगेय राघव, पक्षी और आकाश, पृ० २२४

वातावरण को स्त्रियाँ देखती हैं, उसी के अनुसार उनके विचार ढल जाते हैं ।

'कायाकल्प' की मनोरमा विवेकशील होते हुए भी बहुपत्नीवाले धनवान व्यक्ति को क्वाँरे परन्तु साधारण व्यक्ति से अधिक महत्त्व देती है । उसकी दृष्टि में तो धन ही सुख और कल्याण का मूल है । संसार में जितना परोपकार होता है, धनियों ही के हाथों होता है ।[१]

राजाविशाल सिंह की पांचवी पत्नी बनना वह मात्र इसलिए स्वीकार करती है कि उसका स्वप्न था, कभी वह भी रानी देवप्रिया की भाँति रानी बन सके । उसके विचार हैं कि जीवन का सुख धन के, भोग में है । 'जो दिन खाने-पहनने के हैं यदि वे किसी गरीब आदमी के साथ चक्की चलाने और चौका-बर्तन करने में निकल-गये तो जीवन का सुख ही क्या ?[२] सम्पत्ति-प्रधान दृष्टिकोण को लेकर मनोरमा पचास वर्षीय राजा विशालसिंह का वरण करती है ।

ब. विवश स्वीकृति

विवशता-वश भी नारी को बहुपत्नी वाले पुरुष की पत्नी बनना पड़ता है । पति के प्रेम को पाते हुए भी उन्हें अपना भविष्य अन्धकारमय लगता है ।

'मृगनयनी' में मानसिंह के 'आठ रानियां थीं, नवीं मृगनयनी । ग्वालियर आकर मृगनयनी को पता चलता है । परन्तु परिपाटी थी । उसको बात असाधारण नहीं लगी और न अखरी ही ।'[३] तो भी उसके मन में प्रश्न उठा, 'जब इन्होंने पहली रानी से ब्याह किया होगा तब उससे भी इसी तरह का प्रेमालाप करते होंगे , फिर दूसरा, तीसरा और आठवां ब्याह किया, हर एक रानी के साथ आरम्भ में इसी प्रकार की चिकनी और मीठी बातें करते होंगे, क्या मेरे साथ सदा ऐसा ही बर्ताव करें या किसी दसवीं के साथ विवाह करेंगे और मुझसे वैसे ही बरतेंगे जैसे इन आठ के साथ आजकल बरत रहे हैं ?[४] जीवन के प्रेम-भरे क्षणों की अनिश्चितता ही मृगनयनी के

---

१. प्रेमचन्द , कायाकल्प, पृ० १२६

२. प्रेमचन्द, कायाकल्प, पृ० १३०

३. वृन्दावनलाल वर्मा, मृगनयनी, पृ० २४७

मन में यह भाव उत्पन्न करती है । वह निश्चित रूप से स्वीकार करती है -" यदि मैं यह जानती कि राजा के आठ रानियां पहले से हैं तो क्या मैं प्रेम की बात मान लेती ? .... निश्चय ही नहीं कर देती ।'[१] मृगनयनी के कथन से स्पष्ट होता है कि वह विवाह में बहुपत्नियों की साझेदारी को उचित नहीं मानती । परम्परा को देख कर बहुपत्नीत्व स्वीकार करती है परन्तु उसकी स्वीकृति भी विवशता मात्र है ।

'धर्मपुत्र' में बेगम हुस्नबानो अपने होने वाले विवाह और पति के विषय में बात करते हुए कहती है -" बड़े अब्बा नवाब वज़ीर अलीखां बहादुर से मेरी शादी कर रहे हैं । जिनकी तीन बीबियां पहले से मौजूद हैं और जिनकी सूरत ठीक गैंडे जैसी है । उम्र भी माशाअल्लाह पचास के ऊपर होगी ।'[२] हुस्नबानो के कथन में बहुपत्नीत्व की परम्परा के प्रति घृणा और परिस्थितियों के प्रति विवशता प्रकट होती है ।

३. जनानखाने का चित्रण

बहुपत्नियों से भरे हुए घर का अन्य साधारण घरों से अलग वातावरण होता है । जनान खाना अपने आप में एक पूर्ण राज्य होता है जिसमें प्रेम, सहानुभूति सुख-दु:ख , भोग-विलास, ईर्ष्या, त्याग आदि के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं साथ ही राजनीतिक दांव-पेंच, घात- प्रतिघात तथा षड्यन्त्र आदि भी सम्पन्न होते हैं । जनानखाने की अपनी मर्यादाएं होती हैं । पर्दों का बड़ा-छोटा-पन , मान-मर्यादाओं के ढंग, पति-पत्नी का व्यवहार आदि मर्यादाओं से बंधा होता है । इन स्थितियों को देखते हुए कभी तो बहुपत्नीक घर में सन्तोष का और सुख का वातावरण प्राप्त होता है ,कभी कलह और व्यथाओं का चित्रण होता है । प्रत्येक स्थिति पत्नियों के मानसिक तथा शारीरिक प्रश्न को लेकर चलती है । उपन्यासों में भी जनानखाने के चित्रण हुए हैं , कहीं वे सुमति पूर्ण हैं और कहीं कलह पूर्ण ।

अ. सुमति पूर्ण चित्रण --

'पक्षी और आकाश' में एक पति की आठ रानियों का चित्रण है जो

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा मृगनयनी, पृ० ४३०

२. आचार्य चतुरसेन-धर्मपुत्र, पृ० ६

परस्पर प्रेम और सहानुभूति के साथ रहती हैं। इसका कारण स्पष्ट होता है सुभद्रा के कथन में, 'यदि कोई समर्पण करना चाहे तो उसे रोकने का अधिकार हमारा नहीं है। फिर मैं भी तो तीसरी थी।'[1] अपने समान ही जब पत्नी दूसरी स्त्री की भावनाओं को समझ लेती है तो विरोध नहीं उत्पन्न करती वरन् बहुपत्नीत्व को अपने हृदय की कसौटी मानती है। सौभाग्य मंजरी स्वीकार करती है कि, 'स्त्री का हृदय बहुत संकुचित होता है न? इसीलिए उसे देव इतना विशाल बनने का उपदेश देता है'[2]।

पत्नियों के मध्य भी छोटी-बड़ी का प्रश्न उठता है। सुमनश्री धनदत्त की पहली पत्नी है। नियमानुसार वह महल की पटरानी है। परन्तु वह सुभद्रा को पटरानी घोषित करती है क्योंकि सुभद्रा ने पूर्णतः पत्नी की मर्यादा का निर्वाह किया है।[3]

धनदत्त के सुमतिपूर्ण रनवास का चित्रण धनदत्त स्वयं करता है - 'राजहंसनियों सी यह स्त्रियां उस प्रासाद में ऐसी किलकारियां मारतीं कि एकान्त में मैं विभोर हो उठता। सुभद्रा को उन्होंने पटरानी बना कर ही छोड़ा। अब सुभद्रा बहुत विनम्र रहती।'[4] उपर्युक्त चित्रण बहुपत्नीक घर की सुखद भव्यता को अभिव्यक्ति देता है।

'बहती रेता' में बहुपत्नियों भरे घर का सुमतिपूर्ण चित्रण प्राप्त होता है। भानुमित्र की तीनों पत्नियां प्रचला, राका और मृदुला सखियों की भांति रहती हैं। मृदुला का पत्नीत्व के प्रति दृष्टिकोण शुद्ध शारीरिक है। वह स्वीकार करती है कि 'स्त्री हमेशा पुरुष के काम की नहीं रहती[5]।' यही कारण है कि वह अपने पति पर एकाधिकार का भाव नहीं रखती। राकापति की योग्यता पर मुग्ध

---

१. रांगेय राघव, पक्षी और आकाश, पृ० २१६

२. ,, ,, पृ० २१६

३. ,, ,, पृ० २२५

४ ,, ,, पृ० २२५

५. गुरुदत्त, बहती रेता, पृ० १५५

होकर सपत्नियों के साथ सन्तुष्ट रहती है । प्रचला सपत्नी प्रथा को न तो बुरा मानती है और न ही भोग को जीवन का एकमात्र लक्ष्य मानती है । वासना को जीवन में नगण्यता देते हुए वह कहती है 'पूर्ण जीवन का एक सहस्रवां भाग भी यह नहीं है । जीवन का शेष समय तो अन्य अनेकों समस्याओं के सुझाव, अनेकों सुख-दुःख के अनुभवों और परस्पर संगत से लाभ उठाने में व्यय हो जाता है । इन सब बातों में यदि दो साथियों के स्थान पर तीन हो जावें तो हानि के स्थान पर लाभ ही होगा, जीवन अधिक सुखमय हो जायेगा ।'[1]

अपने सन्तुष्ट दाम्पत्य-जीवन को वर्णित करते हुए प्रचला कहती है - 'हम इकट्ठे भोजन करती हैं । इकट्ठे पूजापाठ और स्वाध्याय करती हैं । इकट्ठे संगीत का अभ्यास करती हैं । इकट्ठी सोती हैं और जागती हैं । आपके (पति के) मन में कभी यह विचार नहीं आया कि मैं या राका बहन छोटी या बड़ी हैं अथवा अच्छी बुरी हैं ।'[2] प्रचला के कथन में सन्तुष्ट बहुपत्नीक दाम्पत्य-जीवन की झलक मिलती है ।

ब. कलहपूर्ण चित्रण

बहु पत्नी वाले पति पर पत्नी को स्वाभाविक रूप से पूर्ण अधिकार नहीं मिल पाता । अधिकार सपत्नियों से छीन कर लेना पड़ता है । पति की कृपा-पात्री बनने के लिये पत्नियों को भिन्न-भिन्न मार्ग अपनाने पड़ते हैं । ऐसी स्थिति में पति एक बहुमूल्य वस्तु बन जाता है जिस पर उसकी प्रत्येक पत्नी पूर्ण अधिकार रखना चाहती है ।

'मृगनयनी' की सुमनमोहिनी सबसे बड़ी पत्नी है । वह सोचती है महाराजा -'मेरे सिवाय किसी के नहीं ।'[3] साथ ही उसका वैर है तो नई रानी मृगनयनी से । सुमनमोहिनी निश्चय करती है -'अब तो इस तगड़ी गांव वाली को छकाना है ।'[4] मृगनयनी.

---

१. गुरुदत्त, बहती रेता, पृ० २५३
२. ,, पृ० २६५
३. वृन्दावनलाल वर्मा, मृगनयनी, पृ० ३०८
४. ,, ,, पृ० ३०८

मानसिंह की सबसे छोटी और प्रिय रानी होने के नाते सोचती है, "महाराज मेरे और अकेले मेरी सम्पदा हैं। मैं उनकी वह मेरे।"[१] अन्य सपत्नियों के प्रति उसके मन के भाव -- "इतना हँसूगी इन शठों पर कि हां! नाहरों और अरबों की परवाह न की तो ये किस खेत की मूली हैं", शब्दों में प्रगट होते हैं।[२] पति के प्रति सम्पत्ति-मूलक भावना पत्नियों में द्वेष उत्पन्न कर देती है।

प्रतिद्वन्द्वी को हराने का सुमनमोहिनी प्रत्येक प्रयत्न करती है। "सौतिया डाह" के वशीभूत हो वह मृगनयनी की तुलना बन्दरों से करती है।[३] महाराजा को मृगनयनी के प्रति आसक्त देखकर सुमनमोहिनी अन्दर ही अन्दर जाल बुनती है और मृगनयनी को मरवाने के लिए षड्यन्त्र रचती है। पान में तथा भोजन में विष देने का प्रयत्न करती है और मृगनयनी की शिक्षिका कला को धन का लोभ देकर विष खिलवाने का प्रयत्न करती है।[४] सपत्नी के प्रति सुमन मोहिनी की ईर्ष्या का यथार्थ और मनोवैज्ञानिक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।

"बहती रेता" में राज्य के लिए सपत्नियों में चलने वाली प्रतिद्वन्द्विता का चित्रण हुआ है। पद्मावती को असह्य है कि पटरानी मल्लिका उसके और राजा मुरहारि विक्रम के बीच में आए। परिणामत: पद्मावती युक्ति से मल्लिका को बन्दी बना देती है।[५] मल्लिका भानुमित्र महामात्य की सहायता लेकर पद्मावती को राज-विद्रोही के अपराध में बन्दी बनवा देती है।[६] राज्य और पति पर अधिकार के लिए सपत्नियों में पनपने वाले द्वेष और उसके भीषण परिणाम का तीखा चित्रण "बहती रेता" में प्राप्त होता है।

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा, मृगनयनी, पृ० ३२६
२. ,, ,, पृ० ३२६
३. ,, ,, पृ० २५२
४. ,, ,, पृ० ३५४, ३८४
५. गुरुदत्त, बहती रेता, पृ० ३४५
६. ,, ,, पृ० ३५०

'कायाकल्प' में बहुपत्नियों से भरे महल का चित्रण सत्य की सम्पूर्ण कटुता को लेकर उभरा है । वसुमती बड़ी रानी है अपनी सपत्नियों पर उसी भांति शासन करना चाहती थी जैसे कोई सास अपनी बहुओं पर करती है । वह यह भूल जाती थी कि ये उसकी बहुएं नहीं सपत्नियां हैं ।'[१]

रोहिणी सबसे छोटी रानी है । 'रोहिणी पर ठाकुर साहब का विशेष प्रेम था । उन्हें यह असह्य था कि ठाकुर साहब उनकी सौतों से बातचीत भी करें ।'[२] परिणामतः सपत्नी-संघर्ष की मुख्य प्रतिद्वन्द्वी बड़ी और छोटी रानियां होती हैं । वसुमती अवसर पाते ही विशाल सिंह के समक्ष छोटी रानी के अवगुणों को तथा पति के प्रति अपने अटूट प्रेम को व्याख्यायित करके रोहिणी और राजा साहब में विरोध उत्पन्न करना चाहती है ।[३] गृह-अधिकार, पति-अधिकार और सम्पत्ति-अधिकार के लिए सपत्नियों के सम्बन्धों में विषमता उत्पन्न हो जाती है, जो गृह-कलह का कारण बनती है ।

पति की इच्छा पर पत्नी का जीवन आधारित रहता है । राजा साहब मनोरमा से विवाह करते हैं और रोहिणी उपेक्षिता का जीवन व्यतीत करने लगती है । रोहिणी अपने अधिकार को छीनने वाली मनोरमा को अपना प्रतिद्वन्द्वी मानती है । प्रतिद्वन्द्वी को परास्त करने के लिए सबसे विकट अस्त्र का प्रयोग करती है, मनोरमा के चरित्र पर लांछन लगाती है और वह भी इस तरह की मनोरमा के अतिरिक्त अन्य किसी को पता नहीं चलता है ।[४] फिर भी उपेक्षिता रोहिणी अपना परित्यक्ता का जीवन सहन नहीं कर पाती और घुट-घुट कर प्राणान्त कर देती है । दासी के शब्द -'बेचारी अभागिन मर्यादा ढोती रह गयी । उसके ऊपर का

---

१. प्रेमचन्द्र ,कायाकल्प, पृ० ३६

२. ,, पृ० ३६

३. ,, पृ० ६७

४. ,, पृ० २१०

क्या बीती, तुम क्या जानोगे ? तुम तो बुढ़ापे में विवाह करके, बुद्धि और लज्जा दोनों ही खो बैठे । उसके ऊपर जो बीती वह मैं जानती हूं"...., बहुपत्नीत्व की दारुण व्यवस्था को व्यक्त करते हैं, जिसमें पड़ कर पत्नियों को अपने आप को घुट-घुटकर मिटाना पड़ता था ।[१]

'बढ़ती रेता' में राज्य के लोभ के कारण सपत्नियों के मध्य षड्यन्त्र पनपते हैं । 'मृगनयनी' में पति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिए दबा संघर्ष चलता है । 'कायाकल्प' में स्वामित्व के लिए प्रयुक्त कूटनीति तथा पति-प्रेम से वंचिता पत्नियों की व्यथा को अभिव्यक्ति देने वाला चित्रण हुआ है ।

४. बहुपत्नीक पति की स्थिति

बहुपत्नीक पति के लिए प्रत्येक पत्नी को सन्तुष्ट रखना दुष्कर हो जाता है । पत्नियों की प्रसन्नता के लिए पत्नियों के मध्य पति का जो व्यक्तित्व उभरता है वह पति का कम, चाटुकार का अधिक होता है ।

'मृगनयनी' का मानसिंह पत्नियों में उत्पन्न हो रहे ईर्ष्या-भाव को देखकर सोचता है -- 'इतने बड़े राज्य की व्यवस्था करने वाला क्या आठ स्त्रियों का भी शासन नहीं कर सकेगा ? उसके विवेक ने बताया एक ही स्त्री का शासन पुरुष के लिए कठिन काम है, आठ तो आठ ग्वालियर राज्यों की समस्या के समान हैं ।'[२] फिर पत्नियों के समक्ष पति के लिए एक ही उपाय रह जाता है कि वह 'विनयशील-मृदुलता से काम ले । व्यंग्य, गाली, कटूक्तियां सब हंसी के साथ सहे इसी में कल्याण है ।'[३]

मानसिंह के लिए सुमनमोहिनी की प्रसन्नता आवश्यक है क्योंकि वह पटरानी है । मृगनयनी उसकी नई रानी है, उसका मनुहार करना ही है । सुमनमोहिनी द्वारा

---

१. प्रेमचन्द्र, कायाकल्प, पृ० २७६
२. वृन्दावनलाल वर्मा- मृगनयनी, पृ० २५३
३. ,, ,, पृ० २५३

मृगनयनी को अपमानित किया जान कर भी मानसिंह सुमनमोहिनी से कुछ कहते डरता है क्योंकि 'विवाद' का भय है। मृगनयनी के प्रति अपने को अपराधी मानता है। मृगनयनी के कक्ष में घुसते समय का जो चित्रण है, उसमें बहुपत्नीक पति की दयनीयता प्रकट होती है। ' दूसरे दिन मानसिंह को मालूम हो गया। सुमनमोहिनी के साथ उसने वाद-विवाद करना व्यर्थ समझा। डरता-डरता-सा मृगनयनी के कक्ष में गया। सोचता था होम करते हाथ जला।'

मृगनयनी ने अपनी मानसिक पीड़ा पर अधिकार कर लिया था। मानसिंह को डरता, सकुचता-सा आता देख कर मृगनयनी विनोद-मग्न हो गई। बोली –

'महाराज तो कुछ ऐसे दिखलाई पड़ रहे हैं, जैसे सिंह का शिकार चुका कर आ रहे हों।'

मानसिंह आश्वस्त हुआ।'[१]

नई पत्नी के प्रेम और विश्वास को प्राप्त करने के लिए तथा अन्य पत्नियों के प्रति किए गए अन्याय के प्रति स्वयं को निरपराध प्रमाणित करने के लिए पति पहली पत्नियों की निन्दा और नई पत्नी के गुणों का बखान करता है।

'धर्मपुत्र' के नवाब साहब, नई बेगम हुस्नबानो की सुन्दरता की तारीफ करते हुए बड़ी बेगम जीनत महल की निन्दा करते हैं – ' वह बेतमीज है, मगरूर है और कूढ़मग्ज़ है।'[२]

'कायाकल्प' में राजा विशालसिंह रोहिणी की मृत्यु से विक्षुब्ध हो जाते हैं। 'नोरा' के प्रति उनके प्रेम-व्यवहार में अन्तर आ जाता है। पुन: जब मनोरमा पर प्रसन्न होते हैं तो अपने दोषों पर और व्यवहार पर आवरण डालने के लिए मनोरमा के गुणों की प्रशंसा करने लगते हैं। मनोरमा में अपने प्रति सद्भाव जगाने के लिए अन्य पत्नियों की निन्दा करना भी नहीं भूलते।[३] यही उनके बहुपत्नीक पतीत्व की विशेषता है।

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा, मृगनयनी, पृ० ३८५

२. आचार्य चतुरसेन - धर्मपुत्र, पृ० ४५

३. प्रेमचन्द - कायाकल्प, पृ० ३३७

राजा विशाल सिंह के लिए तो उनकी पत्नियां उनके जीवन की दारुण व्यथा थीं ।[१] रोहिणी के रूठ जाने पर बड़ी पत्नी वसुमती की चापलूसी करने लगते हैं । गृह-कलह पुन: प्रारम्भ न हो जाये इसलिए पत्नियों की व्यंग्य,कटूक्तियां आदि भी सहन करते हैं । बड़ी पत्नी उन्हें "मेहरबस"तक कहती है परन्तु विशाल सिंह वसुमती को प्रसन्न करने पर तुले हैं - "बस तुम्हारी इन्हीं बातों पर तो मेरी जान जाती है । कुलवन्ती स्त्रियों का यही धर्म है । आज तुम्हारी धानी साड़ी गज़ब ढा रही है । कवियों ने सच कहा है, यौवन प्रौढ़ होकर और भी अजेय हो जाता है ।"[२] पत्नी को अनुकूल बनाने के लिये उसके सौन्दर्य को व्याख्यायित करने के अतिरिक्त और कौन-सा अस्त्र अजेय हो सकता है ?

पत्नियों के मध्य होने वाले झगड़ों का न्याय भी पति के ऊपर आधारित होता है । निर्णायक की स्थिति ग्रहण करते हुए कभी पति 'बहती रेता' के मुरहारि विक्रम की तरह पत्नियों से पूर्ण अनुशासित ढंग से प्रश्न-प्रप्रश्न करता है,[३] कभी कायाकल्प के विशाल सिंह की भांति एकाएक निर्णय दे देता है और रानियों के व्यंग्यशरों का लक्ष्य बनता है ।[४]

## निष्कर्ष

हिन्दी के ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यासों में बहुपत्नीत्व का चित्रण लोक-परम्परा के रूप में प्राप्त होता है । ऐतिहासिक उपन्यासों में प्राचीन परिप्रेक्ष्य में तथा सामाजिक उपन्यासों में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुपत्नीत्व के प्रमुख कारणों - स्त्रियों की बहुलता, वंशवृद्धि तथा पुरुष की विलासी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए बहुपत्नीक दाम्पत्य-जीवन के सुमति-पूर्ण तथा कलहपूर्ण चित्रण किए गए हैं ।उपन्यासों में बहुपत्नीत्व का चित्रण सोद्देश्य है । स्त्रियों के दृष्टिकोण, बहुपत्नीक परिवार तथा बहुपत्नीक पति की स्थिति के चित्रणों द्वारा हिन्दी के उपन्यासकारों ने यही दृष्टिकोण सामने रखा है कि बहुपत्नीक प्रथा दोषपूर्ण तथा अमनोवैज्ञानिक है ।

---

१. प्रेमचन्द, कायाकल्प, पृ० ३६

२. ,, ,, पृ० ७६

३. गुरुदत्त, बहती रेता , पृ० २७५

## ख. अनमेल विवाह
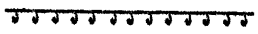
स्त्री और पुरुष का विवाह माता-पिता के द्वारा हो, परस्पर प्रेम-सम्बन्धों के विकास का परिणाम हो अथवा परिस्थितिवश हो, दोनों के विचार, संस्कार तथा प्रकृति का एक-सा होना असम्भव नहीं; तो कठिन अवश्य है। 'दाम्पत्य-जीवन में पूर्ण समानता होनी चाहिए, सम्बन्धों में सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक प्रगाढ़ता होनी चाहिए, और जीवन-मूल्यों के मानकों में कुछ सादृश्य होना चाहिए[1]।' इन शर्तों के पूर्ण करने के पश्चात् ही पति-पत्नी आदर्श जीवन व्यतीत कर सकते हैं। सैद्धान्तिक व्याख्या देना जितना सरल है, जीवन का व्यावहारिक पक्ष उतना ही दुरूह है। पति-पत्नी भिन्न-भिन्न परिस्थिति, परिवेश और प्रकृति के मध्य पलते हैं। संस्कार भिन्न, आचार भिन्न तथा विचार भिन्न होते हैं। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण स्तरों पर पति-पत्नी में सामंजस्य होना कठिन होता है। जहां स्तरों में भेद है, वहीं अनमेल विवाह की सृष्टि होती है।

अनमेल विवाह का हिन्दी-उपन्यासों में चित्रण हुआ है। अनमेल विवाह एक सामाजिक समस्या है, जिसको प्रत्येक काल के उपन्यासकार ने उठाया है।

### १. आयु के स्तर पर
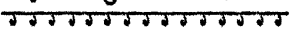
अनमेल विवाह का प्रथम स्तर है 'आयु'। प्रेमचन्द ने सबसे पहले आयु के स्तर पर होने वाले अनमेल विवाह की समस्या को उठाया है। 'निर्मला' उपन्यास की मार्मिक कहानी और उसका अन्त पाठक को विक्षुब्ध कर जाता है। निर्धनता तथा दहेज-प्रथा से पीड़ित निर्मला तोताराम जैसे अधेड़ और दुहाजू पुरुष के साथ व्याह दी जाती है। तोताराम के पहले विवाह से तीन पुत्र हैं। सबसे बड़े पुत्र मन्साराम की आयु सोलह वर्ष है। भाग्य की विडम्बना और समाज की क्रूर परम्पराओं में घिर कर निर्मला अपने समवयस्क बेटे की मां बनती है।

---

१. बर्ट्रेन्ड रसेल 'विवाह और नैतिकता', हिन्दी अनुवाद; पृ० ६६

प्रौढ़-पति की युवा-पत्नी के मानसिक द्वन्द्व का चित्रण करते हुए लेखक कहता है —'अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुका कर, देह चुराकर निकलती थी, अब उसी अवस्था का एक आदमी उसका पति था। वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं सम्मान की वस्तु समझती थी।[१]' जहां पति के प्रति पत्नी में आकर्षण न हो, मन में मधुर भावना न हो, वहां दाम्पत्यजीवन में सारसता का अभाव होता है।

तोताराम अपने अपराध से अनभिज्ञ नहीं है। प्रेमचन्द ने प्रत्येक पग पर तोताराम की स्वरचित सम्भावनाओं द्वारा तोताराम के मन पर घात-प्रतिघात करवाए हैं। शारीरिक रूप से अयोग्य तोताराम दाम्पत्य-प्रेम के सम्पूर्ण व्यावहारिक उपकरणों का प्रयोग करते हैं। निर्मला को सोने में मढ़ देते हैं।[२] निर्मला फिर भी अतृप्त रह जाती है। तोताराम के प्रति निर्मला में नारी-भाव अपनी उद्दाम लालसा से जागृत नहीं हो पाता। तोताराम अन्त में हताश हो जाते हैं। पत्नी की चौकीदारी और व्यंग्य-बाणों में अपनी शान्ति खोजना चाहते हैं।

तोताराम और निर्मला के असन्तुष्ट जीवन का चित्रण ही कथाकार का उद्देश्य है। आयु के विस्तृत अन्तर से मन में पड़ने वाली ग्रन्थियों का कथाकार ने चित्रण किया है। निर्मला की मानसिक और शारीरिक स्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लेखक कहता है —'वह अपना रूप और यौवन उन्हें न दिखाना चाहती थी, क्योंकि वहां देखने वाली आंखें न थीं। वह इन्हें इस रस का आस्वादन करने के योग्य न समझती थी। कली प्रभात-समीर ही के स्पर्श से खिलती है। दोनों में समान सारस्य है। निर्मला के लिये प्रभात-समीर कहां ?[३]'

'गोदान' में आयु के स्तर पर होने वाले अनमेल विवाह की कसक उभरी है। होरी से दो ही चार बरस छोटे रामसेवक से रूपा का ब्याह कराकर प्रेमचन्द ने समाज की कुप्रथा को पुनः उभारा है। परन्तु रूपा के दाम्पत्य-जीवन में आयु का अन्तराल

---

१. प्रेमचन्द, निर्मला, पृ० ५६

२. ,, ,, पृ० ५६-६०

३. ,, ,, पृ० ६०

महत्वहीन हो जाता है । रूपा ऐश्वर्य के बीच में अपने को सुखों से घिरा हुआ अनुभव करती है।[1] यह निश्चित है कि यदि उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य रूपा के दाम्पत्य-जीवन को चित्रित करना होता तो उसका अन्त भी 'निर्मला' से बहुत भिन्न न होता ।

भगवतीचरण वर्मा ने आयु की समस्या को प्रेमचन्द से भिन्न परिस्थिति एवं परिवेश में उठाया है । 'रेखा' उपन्यास में रेखा और प्रभाशंकर के विवाह के मूल में परिस्थितिजन्य विवशताओं के स्थान पर मनुष्य की भावनात्मक प्रवृत्तियाँ हैं । पचास-वर्ष के प्रभाशंकर और इक्कीसवर्ष की रेखा भावनाओं में डूबे हुए प्रारम्भ में सन्तुष्ट दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करते हैं । प्रभाशंकर की इच्छाएँ समाप्ति पर हैं और रेखा में जीवन के प्रति आकर्षण लहरें ले रहा है । सोमेश्वर का यौवन भरा स्पर्श रेखा में सोई शारीरिक भूख को जगा देता है । रेखा सोचती है- 'आत्मा से पृथक शरीर का भी कोई अस्तित्व है ?[2] यही प्रश्न रेखा के सामने एक पीड़ा बन कर खड़ा हो जाता है । 'सोमेश्वर के उस स्पर्श से रेखा के शरीर में कंपकंपी-सी उठ खड़ी होती है । सहारा-सहारा, रेखा ने अनुभव किया कि सहारा किसे कहते हैं । वह सोमेश्वर के हाथों पर जैसे झूल-सी गई । कितनी बलिष्ठ बाहें हैं उसकी ।'[3] अन्त में रेखा सोचती है - 'क्या प्रभाशंकर में बासी यौवन की सड़ांध नहीं है ?[4]'

प्रभाशंकर अपने शरीर से निराश होकर रेखा के चरित्र पर सन्देह करने लगते हैं । प्रभाशंकर का प्रेमी रूप निम्नस्तर की गालियों में बदल जाता है । प्रभाशंकर को विवाह एक भूल, एक पछतावा लगने लगता है । अन्तिम समय में कहे गये प्रभाशंकर के वाक्य - 'रेखा, तुम्हारे कारण मैंने बहुत सहा । लेकिन मैं तुम्हे दोष नहीं देता। मेरे कारण शायद तुमने इससे भी अधिक सहा है । तुमसे विवाह कर मैंने तुम्हारे प्रति बड़ा अन्याय किया है । शायद एक तरह से मैंने तुम्हारे जीवन को नष्ट कर दिया" - अभिव्यक्त करते हैं कि आयु का विषम अन्तर पति-पत्नी के जीवन को अभिशप्त

---

१. प्रेमचन्द- गोदान, पृ० ३३६
२. भगवतीचरण वर्मा - रेखा , पृ० ८५
३. ,, ,, पृ० १११
४. ,, ,, पृ० ८४

वना देता है ।[१]

'देहगाथा' में राजकमल चौधरी ने आयु के स्तर पर होने वाले अनमेल विवाह को नितान्त नए ढंग से उभारा है । प्रेमचन्द अपने काल में आयु के स्तर पर होने वाले अनमेल विवाहों से परिचित थे ।'निर्मला' में पति पिता की उम्र का है । जिससे पति के प्रति पत्नी सम्मान का भाव अनुभव कर पाती है, माधुर्य का नहीं । रेखा आधुनिकता के परिवेश में घिर कर निर्मला की समस्या को लेकर चलती है । 'देहगाथा' में समस्या नितान्त भिन्न है । पत्नी आयु में पति से बड़ी है ।

देवकान्त का विवाह पार्वती के साथ होता है । पार्वती देवकान्त से "चार-पाँच साल बड़ी" है ।[२] देवकान्त मातृ-पितृ-विहीन "इन्डियन गार्जियन" में मासिक डेढ़ सौ रुपये की नौकरी करने वाला साधारण व्यक्ति है, पार्वती का घराना कान्टिनेन्ट का प्रख्यात धनी परिवार है । देवकान्त की हीन-भावना को दृढ़ करने वाली है, उसकी तीसरी स्थिति, देवकान्त का घरजमाई होना ।

पार्वती के लिए देवकान्त में प्रारम्भ से ही यह भावना बैठ जाती है कि पार्वती प्रौढ़ा है । देवकान्त स्वयं स्वीकार करता है -"इस प्रौढ़ा अभिसारिका के लिए मेरे मन में कोई सहानुभूति नहीं है ।"[३] आयु में पत्नी का बड़ा होना पुरुष के पुरुषत्व के लिए एक चुनौती होता है । पुरुष अपने से बड़ी आयु की स्त्री में प्रेम की वह पुलक नहीं खोज पाता जिसमें विजय का भाव हो । देवकान्त के मन में पार्वती के लिए अरुचि उत्पन्न होती है । वह प्रौढ़ा-पत्नी का नहीं नवोढ़ा का समर्पण चाहता है ।" इस शेर से सतीश गुजराल के चित्रों की सी कई राक्षसी आकृतियाँ उभरती हैं...... और लगता है कि पार्वती का चेहरा भी इन्हीं चेहरों का एक नमूना है । क्योंकि मेरी आँखों में मीनल की तस्वीर है, मोम-सा पिघलता आर्द्र उष्ण तन, सम्पुट ओंठ, बाहों में शिरीष की गन्ध और अंग-अंग में लज्जा ।[४]

---

१. भगवतीचरण वर्मा- रेखा , पृ० ३४८

२. राजकमल चौधरी, देहगाथा, पृ० 22

३. ,, ,, पृ० ११

४. ,, ,, पृ० 26

आयु का अन्तराल पतिपत्नी के जीवन में अन्तराल उत्पन्न कर देता है । प्रौढ़ा-पत्नी पति की अपने प्रति उपेक्षा को लक्षित करती है और आध्यात्मिक वृत्तियों का सहारा लेकर आत्मोन्मुखी बन जाती हैं ।

२. शारीरिक स्तर पर

आयु के साथ ही शारीरिक स्तर का प्रश्न भी उठता है । प्राचीनआचार्यों ने आयु ही नहीं, शरीर से योग्य होना भी विवाह के लिए आवश्यक माना है ।[१] शारीरिक रूप से असमान होने पर दुर्बल शरीर के व्यक्ति के मस्तिष्क में हीन-ग्रन्थियां विकसित होती जाती हैं । हीन-ग्रन्थियों से जकड़ा हुआ व्यक्तित्व मानसिक विकृतियों का शिकार होता है । शारीरिक स्तर पर होने वाले अनमेल विवाहों में दाम्पत्य-तुष्टि नहीं हो पाती, वरन् शारीरिक भोग की मौन अस्वीकृति अथवा असन्तुष्टि होती है ।

'रेखा' उपन्यास में वर्मा जी ने रेखा और प्रभाशंकर के माध्यम से पति-पत्नी में आयु के दीर्घ अन्तर को दृष्टिकोण में रख कर असन्तुष्ट दाम्पत्य-जीवन का चित्रण किया है तो देवकी और दाताराम के असन्तुष्ट जीवन के परोक्ष में शारीरिक असमानता को कारण माना है । देवकी का पति दाताराम एक मरियल सा व्यक्तित्वहीन आदमी है ।[२] देवकी यौवन से भरपूर और अल्हड़ युवती हैं ।[३] पति से असन्तुष्ट पत्नी शारीरिक तृष्टि के लिए प्रभाशंकर के प्रति आकृष्ट होती है । प्रभाशंकर का विधुर-जीवन देवकी के समर्पण को सहज ही स्वीकार कर लेता है । देवकी स्वयं स्वीकार करती है --'मेरा पति निकम्मा और गिरा हुआ आदमी है.. मैं प्रोफेसर से अपने लिये कुछ मांगने नहीं गई थी..... मैं प्रोफेसर को पाने गई थी.... देने के लिये मेरे पास मेरा रूप था, मेरी जवानी थी ।'[४]

---

१. मनुस्मृति- श्लोक १०, अध्याय ३
२. भगवतीचरण वर्मा- रेखा , पृ० २२
३. ,, ,, पृ० २२
४. ,, ,, पृ० ७८

आचार्य चतुरसेन ने 'बगुला के पंख' उपन्यास में पत्नी के निर्बल स्थल का स्पर्श किया है । संस्कारों में बंधी पत्नी पद्मा पति को परमेश्वर मानती है । प्रत्येक अपूर्णता के साथ शोभाराम को स्वीकार करती है । पद्मा शोभाराम से कहती है -- "तुम्हारी मंगल-कामना ही अब मेरे जीवन का एक व्रत है । तुम्हारा अनुराग ही मेरे जीवन का सहारा है ।...... प्रिय तम मैं तुम्हारी हूं, केवल तुम्हारी ।"[१] परन्तु पद्मा की अतृप्त नारी कराह उठती है, जुगनू के पौरुष के प्रति आकर्षित हो वह समर्पित हो जाती है । अतृप्त शारीरिक भूख से व्याकुल पद्मा स्वीकार करती है," ओह ! मेरे लिये वह (पति) मुर्दा आदमी है । वर्षों हो गए मैंने उनके शरीर का स्पर्श नहीं किया । वे चिर रोगी हैं । मैं एक पत्थर के देवता की पूजा करती हुई जी रही हूं । लेकिन...... " इस लेकिन के आगे ही नारी की विवश शारीरिक भूख है, जो समाज और धर्म द्वारा प्रतिबन्धित कर दी गई है ।[२] शोभाराम नारी की शारीरिक भूख को स्वीकार करता है । अपना विवाह शोभाराम के लिए एक भूल लगने लगता है । अपने विवाह और अपने जीवन के भविष्य पर वह सोच रहा था - "यदि रोग वर्षों तक चलता चला जाये तो एक स्वस्थ युवती और चिररोगी का अटूट बंधन मर्यादा और नैतिकता के तर्कसम्मत बल पर कब तक निभेगा ?[३]

'विकास' उपन्यास में माता-पिता की विवशता को व्यक्त करते हुए प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने अनमेल विवाह की शारीरिक स्तर पर रचना की है । कन्या को विवाहित देखने के लिए ही माता-पिता कन्या का विवाह कर देते हैं । मालती का विवाह राजकुमार कामेश्वर से होता है, जो नपुंसक है ।[४] राजकुमार अपनी अक्षमता से परिचित है तत्पश्चात् वह एक स्त्री का जीवन व्यर्थ करने का अपराध करता है । मालती के जीवन की सुखशान्ति सभी सभी विनष्ट हो जाती है । मालती अपने

---

१. आचार्य चतुरसेन, बगुला के पंख, पृ० ३५,३४
२. ,, ,, पृ० १०६
३. ,, ,, पृ० ३३
४. प्रतापनारायण श्रीवास्तव, विकास, पृ० ४३६

आपको सदैव अविवाहित मानती है । पुरुष की अहंमन्यता को वह क्षमा नहीं कर पाती । मालती का वैवाहिक जीवन एक दु:खद घटना बन कर रह जाता है ।

आचार्य चतुरसेन ने 'धर्मपुत्र' में शारीरिक स्तर के असामंजस्य की समस्या को चित्रित किया है । हुस्नबानू नवाब साहब की चौथी पत्नी बनकर महलों में प्रवेश करती है । नवाब साहब अपनी दुर्बलताओं को गुप्त रखने के लिये 'खब्ती' और 'वहशियों' जैसी बातें करते हैं । प्रथम परिचय में हुस्नबानू सोचती है कि 'तमाम जिन्दगी इसी जाहिल खब्ती आदमी के साथ बितानी है ।'[1] जब नवाब साहब खाना खा कर बारह बजे 'अपनी पुरानी जेल' में तालाबन्द करके सोने के लिए चले जाते हैं तो हुस्नबानू सोहाग-रात की इस अनोखी रीति के रहस्य को न समझ कर हैरान होकर पत्थर हो जाती है ।[2]

हुस्नबानू को जब जीनत से पता चलता है कि नवाब साहब नामर्द हैं, तो नई नई दुल्हन हुस्नबानू के समक्ष उसका सम्पूर्ण जीवन प्रश्नवत् खड़ा हो जाता है और उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह बेहोश हो जायेगी । 'मुंह सूख गया और आंखें पथरा गईं' ।[3]

यशपाल ने 'झूठा सच' में शारीरिक असमानता को विपरीत दृष्टिकोण से लिया है । 'रेखा' की देवकी दाताराम के दुर्बलकाय तथा व्यक्तित्वहीन होने के कारण सबल तथा मेधावी पुरुषत्व से पूर्ण डा० प्रभाशंकर को समर्पण कर देती है । 'बगुला के पंख' की पद्मा पति की लम्बी बीमारी से घबरा कर जुगनू के आगे नत हो जाती है । 'विकास' की मालती तथा 'धर्मपुत्र' की हुस्नबानू पति की नपुंसकता को दुर्भाग्य समझ कर स्वीकार कर लेती हैं और पति के जीवित रहते हुए भी विधवा जैसा जीवन व्यतीत करती हैं, परन्तु 'झूठा सच' में पुरुष की अतृप्ति और तृप्ति का प्रश्न उठता है । यदि शरीर में नारी-पुरुष से हृष्ट-पुष्ट और बराबरी की हो तो नारी की भांति पुरुष भी अतृप्त रह जाता है जिसकी पुष्टि जयदेव पुरी के दाम्पत्य-जीवन से होती है ।

---

१. आचार्य चतुरसेन शास्त्री - धर्मपुत्र, पृ० ४७
२. ,, ,, पृ० ४७
३. ,, ,, पृ० ५१

कनक पुरी की प्रेमिका और पत्नी है । कनक के समर्पण में पुरी को पुलक मिलती है परन्तु सन्तुष्टि नहीं । 'अपने ही बराबर ऊंची पुष्ट कनक को आलिंगन में लेने की अपेक्षा, दुबली-छोटी सी उर्मिला को आलिंगन में ले लेना सहज था ; और अधिक सन्तोष होता था ।'[१] कन्धे-से-कन्धा मिला कर चलने वाली कनक पुरी की मार्ग-प्रदर्शिका बन सकती है, पुरी को सहारा दे सकती है परन्तु उर्मिला पुरी पर अवलम्बित है ।[२] फलत: पुरी के पौरुष की सन्तुष्टि जो उर्मिला को सहारा देने में होती थी, वह कनक के सहवास में प्राप्त नहीं हो पाती । सहवास के समय पुरी की कनक के प्रति उत्पन्न होने वाली खीझ उसके असन्तुष्ट 'पुरुष' को व्यक्त करती है । शारीरिक रूप से कनक से सन्तुष्ट होते हुए भी वह कल्पना में उर्मिला के कोंपल नारीत्व के प्रति आकृष्ट रहता है । पुरी का शारीरिक असन्तोष उसके सम्पूर्ण दाम्पत्य-जीवन में परिलक्षित होता है ।

### ३. धन के स्तर पर

धन के स्तर पर होने वाले अनमेल विवाह को दो स्थितियों में रखकर देखा जा सकता है । कन्या का विपन्न-वर्ग से उठकर सम्पन्न-वर्ग में जाना तथा दूसरा सम्पन्न-वर्ग की कन्या का विपन्न-वर्ग में आना ।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'मृगनयनी' उपन्यास में मृगनयनी और मानसिंह का विवाह धन के स्तर पर होने वाला अनमेल विवाह है । मृगनयनी दरिद्र किसान की बेटी और मानसिंह ग्वालियर का राजा है । मृगनयनी के लक्ष्यभेद से प्रभावित मानसिंह मृगनयनी के समक्ष 'जन्म-संगिनी' बनाने का प्रस्ताव रखता है परन्तु मृगनयनी को अपना स्तर-भेद ज्ञात है और वह कहती है 'गरीबों का और बड़ों का जन्म-संग कैसा ?'[३]

धन का स्तर-भेद, मृगनयनी को, मानसिंह की कृपापात्री होते हुए भी ग्वालियर के किले में झेलना पड़ता है । मृगनयनी की चांदी की हंसुली से लेकर लाखी के विवाह

---

१. यशपाल- झूठा सच, भाग २, पृ० ४४

२. ,, ,, पृ० ४७

३. वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी , पृ० १६६

की रीतियों तक मृगनयनी को सुमनमोहिनी के व्यंग्यबाणों का लक्ष्य बनना ही पड़ता है ।[१]

'गोदान' में रूपा तथा 'बूंद और समुद्र' में वनकन्या का भी धन के स्तर-भेद को स्पष्ट करने वाला विवाह वर्णित किया गया है । रूपा धन में तृप्ति पाती है और वनकन्या अपनी योग्यता और क्षमता के बल पर सज्जन के राजसी वातावरण पर सहज ही अधिकार प्राप्त कर लेती है । कन्या यदि अभावों से उठकर सम्पन्नता के मध्य जाती है तो अनमेल विवाह की समस्या उतनी नहीं उभरती, जितनी सम्पन्न वर्ग की कन्या के अभावग्रस्त घर में आ जाने से ।

'एक और मुख्य मंत्री' में धन के स्तर पर होने वाले अनमेल विवाह का यथार्थ चित्रण प्राप्त होता है । सोना सम्पन्न परिवार से ब्याह करके ऐसे घर में आती है जो सम्पूर्णत: अभावग्रस्त है । 'टूटा-टूटा सा घर । कब और किस भाग्यशाली पूर्वज ने इसका निर्माण कराया था, इससे भी सभी अनजान ।' चांद साधारण क्लर्क और अरविन्द बेकार ग्रेजुएट ।' सोना अच्छे खाते-पीते घर की लड़की । यहां तंगी देखकर वह अपने को मधुर नहीं रख सकी । चिड़चिड़ापन उसकी हर बात में आ गया । यहां तक कि उसके प्रेम-प्रदर्शन में भी कृत्रिमता नज़र आने लगी ।'[२]

अहर्निश अभाव से लड़ते हुए, फिर पति को पत्नी के स्थान पर भाई से अधिक प्रेम रखते देख कर, सोना का कुचला स्त्रीत्व फुंफकार उठता है । पति चांद के कटु शब्दों का वह उत्तर देते हुए कहती है -'जो श्मशान होना होगा, वह किसी दिन रोके नहीं रुकेगा । पर श्मशान होने के बाद आपका कलेजा तो ठंडा हो जाएगा...... मैं अपने पीहर से कितने वर्ष और पैसे मंगाऊंगी ?'[३]

सोना के शब्दों से चांद का पुरुषत्व आहत हो जाता है -'सोना सीमाहीन होती जा रही थी । वह उत्तप्त स्वर में लाल आंखों से बोली -' मैंने अपने

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा, मृगनयनी, पृ० २५१,३१६,३०६

२. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - एक और मुख्य मंत्री , पृ० ४

३. ,, ,, पृ० ५

पीहर से आपको तीन हज़ार रुपये आज तक लाकर दिये, आपको सूट बनवाकर दिया ।[१] चांद आगे नहीं सुनपाता और वह गरज उठता है -'खामोश ! मैंने तुम लोगों के लिए क्या नहीं किया ? रात-दिन का भेद न समझ कर केवल पैसा कमाता रहा हूँ । कठोर श्रम के बाद पाव भर दूध भी नसीब न हुआ, इससे बढ़ कर एक व्यक्ति के लिए क्या बदनसीबी हो सकती है ?'[२] चांद का प्रश्न एक ऐसे पति का प्रश्न है जो स्वयं घर के लिए दिनरात खटता है, सुख नाम की चीज़ नहीं जानता फिर भी मायके से सम्पन्न अपनी पत्नी को सन्तुष्ट नहीं कर पाता । यही चांद के पुरुषत्व की सबसे बड़ी असफलता है ।

## ४. शिक्षा के स्तर पर

'बाहर-भीतर' उपन्यास में देवराज ने शिक्षा के स्तर पर होने वाले अनमेल विवाह का चित्रण किया है । शिक्षा में पति के समकक्ष होना भी भारतीय पत्नी के लिए अभिशाप बन जाता है ।'हरीकृष्ण ने दो वर्ष पहले कामर्स लेकर इण्टरमीडियट पास किया था ।..... यों भैया (हरीकृष्ण) पढ़ने में तेज भी न थे । मैट्रिक और इण्टर दोनों ही में उन्हें तीसरा डिवीज़न मिला था । सुना गया कि बहू (सुमित्रा) ने मैट्रिक प्रथम श्रेणी में किया था। एफ०ए० की परीक्षा वह अभी-अभी दे चुकी थी और दूसरी श्रेणी की आशा रखती थी ।[३]

सुमित्रा से विवाह करने के लिए'मौसा जी' बात पक्की कर गए थे इसलिए मौसी' ने विवश होकर विवाह किया अन्यथा मौसी जी की बिलकुल राय नहीं थी कि पढ़ी लिखी लड़की ली जाये ।[४]

---

१. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - एक और मुख्य मन्त्री, पृ० ५

२. ,, ,, पृ० ५

३. देवराज-बाहर भीतर, पृ० ६,७

४. ,, ,, पृ० १४,१५

सुमित्रा का एफ०ए० की परीक्षा द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण करना, सुमित्रा के लिए अभिशाप बन जाता है। पति हरीकृष्ण कभी तो-'वैसे इन्हें भी पढ़ने का शौक बहुत है। हमें तो भाई दूकानदारी और ज़मींदारी के काम से फुर्सत नहीं मिलती'-कह कर पत्नी के साथ सामंजस्य स्थापित करना चाहता है और कभी सुमित्रा के जोर से हंस देने मात्र से उसके चरित्र पर लांछन लगाने से नहीं चूकता।[१]

हरीकृष्ण और सुमित्रा की शिक्षा का प्रभाव उनके अलग-अलग विकसित होते हुए व्यक्तित्व में परिलक्षित होता है। 'किशन भैया.... कालेज में पढ़कर भी वे पढ़े-लिखों जैसा व्यवहार करने के अभ्यस्त नहीं बने थे।..... उनकी बात-चीत भी पढ़े-लिखों जैसी नहीं जान पड़ती थी। यहां तक कि वे नित्य अखबार भी नहीं पढ़ते थे।'[२]

'भाभी (सुमित्रा) इन सब बातों में भिन्न थीं। उनके समूचे रहन-सहन पहनने-ओढ़ने, बातचीत एवं खान-पान आदि व्यवहार में कुछ विशेषता थी, जो वहां किसी दूसरे में न थी।'[३]

भारतीय नारी का पति से अलग कोई लक्ष्य नहीं होता है। परिणामत: सुमित्रा अपनी इच्छा के प्रतिकूल पति के अनुकूल बनने का प्रयत्न करती है।[४] अनुकूल वातावरण प्राप्त न कर शिक्षित पत्नी का व्यक्तित्व कुण्ठित होने लगता है और वह दूसरा चारा न देखकर अपनी अर्थहीन जिन्दगी को खत्म कर देने में ही मुक्ति ढूंढती है।

लड़की का शिक्षित और स्वतंत्र विचारों का होना उसके दाम्पत्य-जीवन के लिए कष्टदायक बन जाता है। उग्र के 'जीजी जी' उपन्यास में प्रभा को मंगलाप्रसाद मैट्रिक तक पढ़ाते हैं।[५] सौतेली माता के कुचक्र में प्रभा का विवाह दीनानाथ जैसे

---

१. देवराज - बाहर-भीतर, पृ० १७,४२
२. ,, पृ० ८
३. ,, पृ० ८
४. ,, पृ० ३२,१०६
५. उग्र- जीजी जी, पृ० २६

लम्पट/से हो जाता है । दीनानाथ सोचता है"पढ़ी-लिखी लुगाई आने वाली है — कुछ पढ़ लेना चाहिए इन पढ़ी-लिखियों के बारे में, नहीं तो रागिनी छिड़ने पर कहीं बेताला न पड़ना पड़े ।"[१] दीनानाथ अपनी योग्यता बढ़ाने के लिये ऐसी पुस्तकें पढ़ता है जिनमें स्त्रियों के बारे में रसीला या नंगा चित्रण हो ।"[२]

कुशिक्षा का प्रभाव दीनानाथ को ग्रसित किए रहता है । प्रभा के ऊपर वह चौबीस घण्टे पहरेदारी करता है । पत्नी के चरित्र पर जो कि "अमीर की लड़की है, लाडली है, मास्टरों से पढ़ी" है । दीनानाथ विश्वास कर ही नहीं सकता है ।[३] उसके सिद्धान्त में "औरतें गंडेरी की तरह ये दुष्ट दांतों में दबकर रस लेने के लिये हैं और नीरस होते ही बाहर थूक फेंकने के लिए ।"[४]

सुशिक्षित स्त्रियों के विषय में छिछले ढंग से सोचने वाले दीनानाथ के साथ प्रभा जैसी विदुषी और गम्भीर स्त्री अपनी सम्पूर्ण उम्र तपस्या की तरह व्यतीत करती है । प्रभा की तपस्या भी निरर्थक तपस्या बनकर रह जाती है ।

### प्रकृति के स्तर पर

आयु, शरीर, शिक्षा तथा धन के साथ ही दाम्पत्य-जीवन की सम्पन्नता में प्रकृति का महत्वपूर्ण योग रहता है । आयु तथा शरीर से अनमेल होते हुए भी यदि प्रकृति में साम्यता हो, विचारों तथा भावनाओं में सादृश्यता हो, तो पति-पत्नी का जीवन सुखद बन जाता है । शरीर, आयु, धन तथा शिक्षा की एकरूपता प्रकृति के द्वैध में फंसकर अर्थहीन हो जाती है ।

हिन्दी के अधिकतर उपन्यास प्रकृति के स्तर पर होने वाले अनमेल विवाह की समस्या को लेकर चले हैं । प्रेमचन्द के उपन्यासों में पति-पत्नी के प्रकृतिगत अन्तर का

---

१. उग्र, जीजीजी, पृ० ५७
२. ,, पृ० ५७
३. ,, पृ० ७६
४. ,, पृ० ७८

पर्याप्त चित्रण हुआ है । 'कर्मभूमि', 'प्रेमाश्रम', तथा 'रंगभूमि' में अनमेल विवाह की समस्या प्रकृति के स्तर पर उठती है ।

'कर्मभूमि' में पति अमरकान्त शरीर से दुर्बल, बुद्धि से अविकसित हैं, तो सुखदा धनी माता की लाड़ली, पुष्ट तथा तीव्र बुद्धि की लड़की है । सुखदा ने शासन करना सीखा है, शासित रहना नहीं । 'सिकुड़ने और सिमटने का उसे कोई अभ्यास न था । वह युवक-प्रकृति की युवती ब्याही गई युवती-प्रकृति के युवक से जिसमें पुरुषार्थ का कोई गुण न था ।'[१]

सुखदा निरन्तर अमरकान्त को जीवन-संग्राम में कर्मरत रहने के लिए प्रेरित करती है । अमरकान्त सुखदा के तेजस्वी व्यक्तित्व से भयभीत होकर सकीना के समर्पित व्यक्तित्व में सन्तोष प्राप्त करना चाहता है । जितनी सुखदा में जीवन से संघर्ष करने की शक्ति है, उतना ही अमरकान्त पलायनवादी है । सुखदा और अमर का प्रकृतिगत अन्तर उनके जीवन में अन्तराल उत्पन्न कर देता है । अमरकान्त कर्त्तव्यों से विमुख हो पलायन करता है और अपनी कायरता को देश-सेवा के खोल से ढक लेना चाहता है । इसके विपरीत सुखदा सामाजिक स्थितियों को देख कर स्वयं संघर्ष करती है और समाज के दलित-वर्ग को अपने अधिकार के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देती है । यद्यपि सुखदा और अमरकान्त दो भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाने के पश्चात् पुन: एक ही लक्ष्य के पथिक बन जाते हैं, परन्तु उनका प्रकृतिगत अन्तराल समाप्त हो जाता है अथवा नहीं, यह सन्दिग्ध है ।

'प्रेमाश्रम' के ज्ञानशंकर और विद्यावती के अनमेल विवाह का कारण भी उनका प्रकृतिगत अन्तर है । ज्ञानशंकर महत्वाकांक्षी युवक है । अपने खानदान की खोई हुई ऋद्धि को पुन: समृद्धि के शिखर पर देखना चाहता है ।[२] धन के लोभ में वह नैतिक, अनैतिक सभी कार्य कर सकता है । इसके विपरीत ज्ञानशंकर को पत्नी विद्यावती मिली, जो त्याग और सहनशीलता की मूर्ति थी । धनी-वर्ग की होते हुए भी सैर, सवारी, शृंगार, व्यसन आदि में उसकी रुचि न होकर गृहस्थी के कार्यों में रुचि थी[३]।

---

१. प्रेमचन्द- कर्मभूमि, पृ० ११

२. प्रेमचन्द- प्रेमाश्रम, पृ० १०

पति-पत्नी का प्रकृति-वैषम्य उनके दाम्पत्यजीवन को नष्ट कर देता है। ज्ञानशंकर धन के लिए श्वसुर को ज़हर देते हैं। साली गायत्री को पथभ्रष्ट करते हैं। विद्यावती की उदासीनता ज्ञानशंकर के लिए असहयोगी का कार्य करती है। विद्यावती को अपने पति की स्वार्थपरता एक आंख न भाती थी। कभी-कभी यह मतभेद विवाद और कलह का रूप भी धारण कर लेता था।'[1]

'रंगभूमि' में इन्दु तथा राजा महेन्द्र के माध्यम से पति-पत्नी का प्रकृति-भेद अधिक मुखरित होता है। महेन्द्र और इन्दु के सिद्धान्त न तो किसी विशेष विचार धारा से बंधे हैं, न ही उनका कोई विशेष दृष्टिकोण है। दोनों की स्वभावगत विषमता परिस्थिति जन्य है। न चाहते हुए भी इन्दु और महेन्द्र में विरोध उत्पन्न हो जाता है। राजा महेन्द्र इन्दु को सम्मान देते हैं। किसी भी प्रस्ताव पर इन्दु से विचार विमर्श करते हैं। महेन्द्र चाहते हैं कि इन्दु सही अर्थों में अपनी राय दे, परन्तु उनकी शासकीय प्रवृत्ति यही चाहती है कि इन्दु इस भांति अपने तर्कों को रखे कि महेन्द्र के विचारों का खण्डन न होने पाये और तर्क की परिपाटी का निर्वाह भी हो जाए।

इन्दु चाहती है कि वह पति का विरोध न करे। स्वयं अपने अपराध को स्वीकार करते हुए कहती है है -- "मैं अपने पति की पूजा करना चाहती हूं, पर दिल पर मेरा काबू नहीं। भगवान्! तुम मुझे कठिन परीक्षा में क्यों डाल रहे हो?"[2] साथ ही इन्दु पति के सम्मुख अपने अस्तित्व को समाप्त नहीं करना चाहती। "स्त्री का कर्तव्य है कि अपने पुरुष की सहभागिनी बने, पर प्रश्न यह है कि क्या स्त्री का अपने पुरुष से पृथक कोई अस्तित्व ही नहीं है। इसे तो बुद्धि स्वीकार नहीं करती।"[3]

राजा महेन्द्र पत्नी के बुद्धिवाद को और स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं कर पाते। महेन्द्र सोचते हैं कि पत्नी पति की हितचिन्तक होती है, यह नहीं कि उसके कामों का मजाक उड़ाए, उसकी निन्दा करे -'मेरे जीवन की सारी अभिलाषाएं और कामनाएं इसके सामने तुच्छ हैं, शायद मुझे नीच, स्वार्थी और आत्मसेवी समझती

---

१. प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, पृ० १०

२. प्रेमचन्द-रंगभूमि, पृ० १७८

३ ,, ,, पृ० १७७

हो।'[1] अन्त में अपने दाम्पत्य-जीवन की विषमता पर दु:खी होते हुए महेन्द्र भाग्यवादी बन जाते हैं, 'मालूम होता है हमारे और तुम्हारे ग्रहों में कोई मौलिक विरोध है, जो पग-पग पर अपना फल दिखाता है।'[2] प्रकृति के इस वैषम्य को प्रेमचन्द ने पुन: इन्दु के मुख से कहलवाया है — 'क्या वस्तुत: हमारे ग्रहों में कोई मौलिक विभेद है, जो पग-पग पर अपनी आकांक्षाओं को दलित करता रहता है। मैं कितना चाहती हूं कि उनकी इच्छाओं के विरुद्ध एक कदम भी न चलूं, किन्तु यह प्रकृति-विरोध हमेशा नीचा दिखलाती है।'[3]

जैनेन्द्र के उपन्यास 'सुखदा' और 'कल्याणी' में प्रकृति के स्तर पर अनमेल विवाह की समस्या वर्णित हुई है। सुखदा एक मनस्विनी स्त्री है। उसका अहंकार तीखा है और आकांक्षाएं प्रबल हैं। उसका विवाह होता है, मध्यमवर्ग के कान्त नामक व्यक्ति से, जो स्वभाव में उसके सर्वथा विपरीत है। पति की निरीहता और समर्पण-भाव उसके अहंकार को और भी उत्तेजित कर देते हैं और 'साधारण गृहस्थ-जीवन की संकीर्ण सीमा में उसका मन घुटने लगता है।'[4] सुखदा के अतृप्त मन में अशांति उत्पन्न होती है। पग-पग पर सुखदा कान्त का विरोध करती है। घर की आर्थिक स्थिति से असन्तुष्ट सुखदा राजनैतिक क्रांति में भाग लेती है। सुखदा के दर्पयुक्त व्यक्तित्व का उपचार दर्पयुक्त पुरुषत्व है, जिसका कान्त के समर्पित व्यक्तित्व में नितान्त अभाव है। लाल क्रान्तिकारी है। लाल का पुरुषत्व सुखदा के दर्प को दबा देता है। सुखदा की मानसिक गुत्थी सुलझ जाती है।

'कल्याणी' में 'सुखदा' के विपरीत प्रकृति-वैषम्य है। शिक्षित होते हुए भी कल्याणी में नारीत्व की भावना का प्रभुत्व है। धन के प्रति कल्याणी में विशेष लगाव नहीं है। इसके विपरीत डा० असरानी व्यापारी-बुद्धि के हैं। धन उनके लिए सर्वस्व है। कल्याणी को कटुता से हो या मृदुता से, प्रत्येक भाव से धनोपार्जन के लिए प्रेरित करते हैं। जीवन की आपाधापी और वैभव से ऊब कर कल्याणी शान्ति का स्थान ढूंढ़ती है। तपोवन उसके जीवन का स्वप्न है, परन्तु डा० असरानी तपोवन के निर्माण में भी अपना आर्थिक लाभ निहित कर देते हैं। कल्याणी को

---

१. प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ० १७६
२. ,, पृ० १६८
३. ,, पृ० १६८

डा० असरानी की इस लोलुप प्रवृत्ति से घृणा है, परन्तु वह विवश है । पति के अतिरिक्त उसकी गति नहीं है । फलत: विरोधी प्रकृति के पुरुष के साथ प्यार और मार सबकी भागीदार बन कर कल्याणी उदासीन जीवन व्यतीत करती है ।

यशपाल ने 'झूठासच' और 'मनुष्य के रूप' में प्रकृति के स्तर पर होने वाले अनमेल विवाह का चित्रण किया है । यशपाल में न तो आधुनिकता के प्रति अत्यधिक आकर्षण है, न ही प्राचीन परम्पराओं के प्रति अंधा मोह । प्राचीन परम्पराओं के खण्डन के लिये तारा और सोमराज का असफल विवाह चित्रित किया है, तो आधुनिकता को श्रेयस्कारी समझने वालों के समक्ष कनक और पुरी के प्रेम-विवाह की असफलता उत्तर रूप में रख दी है ।

यशपाल ने व्यावहारिक क्षेत्र में मनुष्य की निर्बल प्रवृत्तियों को पहचाना । प्रकृति के स्तर पर अनमेल विवाह में पति-पत्नी का सन्तुष्ट रहना अत्यधिक कठिन है । कनक और जयदेव पुरी के विचार प्रारम्भ में एक साथ बहती हुई दो धाराओं की तरह प्रतीत होते हैं । परन्तु उनके बाद के जीवन से स्पष्ट होता है कि वे दोनों समानान्तर चलने वाली धाराएं हैं, जो कभी मिल नहीं सकतीं । पुरी स्वार्थी प्रकृति का है । उसके सिद्धान्त और आदर्श खोखले हैं । कनक स्वच्छन्द , निरंकुश स्वभाव की युवती है । तारा ही क्या समाज की प्रत्येक लड़की की परतंत्र अवस्था से उसे विशेष सहानुभूति है । पुरी कनक के विपरीत, स्वयं के लिये सुविधाएं चाहता है, परन्तु अन्य व्यक्ति जब उसकी तरह ही स्वतंत्रता चाहते हैं तो उसे पुरी उच्छृंखलता मानता है । तारा शीलो का विवाह उसके प्रेमी के साथ करा देती है । रतन और शीलो सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करते हैं । जयदेवपुत्री तारा के कर्म की आलोचना करते हुए कहता है— रतन और गोविन्दराम को हम लोगों की इज्जत का इतना भी ख्याल न हुआ ।" "क्या मतलब ? मैं नहीं समझी," कनक ने आपत्ति के स्वर में कहा । "क्या नहीं समझीं ?" पुरी को लगा कि कनक व्यर्थ तर्क पर उतारू है । "इसका मतलब है, तुम्हें मेरे पिता जी का कोई आदर-लिहाज नहीं था ? [१]

---

१. यशपाल "झूठा सच" भाग २, पृ० - ५०६

तारा और शीलो के प्रति कहे गए अनादर सूचक शब्द कनक को अपने ऊपर किए गए कटाक्ष लगते हैं। कनक की उदार प्रकृति पुरी की संकीर्ण प्रवृत्ति का विरोध करती है। तारा की प्रशंसा में कहा गया कनक का वाक्य -"बहन तो तुम्हारी है पर मैं कहूँगी उसका दिल तुमसे बहुत बड़ा है[1]" पुरी के क्रोध को प्रचण्ड बना देता है। सम्पूर्ण मानवीयता को और संस्कारों को एक तरफ करके वह पत्नी के ऊपर भी व्यंग्य करने से नहीं चूकता - "देखता हूँ, तुम्हारा दिल भी बहुत बड़ा हो रहा है। बड़े दिलवाली से मिल आयी हो इतने बड़े दिल से निबाह सकने की विशालता मुझमें नहीं है। अपने लिए भी बड़ी जगह ढूंढ़ लो[2]।" पुरी और कनक का प्रकृति-भेद उनके जीवन में प्रत्येक पग पर आकर अड़ जाता है और अन्त, उनके अनमेल विवाह के विच्छेद से होता है।

'मनुष्य के रूप' उपन्यास में मनोरमा और सुतलीवाला के अनमेल विवाह की समस्या शारीरिक स्तर के साथ ही प्रकृति के स्तर की भी है। सुतली वाला के अस्वस्थ शरीर और मनोरमा के स्वस्थ शरीर का अन्तर तथा मनोरमा की अतृप्ति का कथाकार ने चित्रण किया है। मनोरमा शारीरिक रूप से सन्तुष्ट न होते हुए भी सुतलीवाला के साथ जीवन-निर्वाह करने का प्रयत्न करती है। मनोरमा के दाम्पत्य-जीवन में बिवाई पड़ने का मुख्य कारण दोनों की प्रकृति का अन्तर है। मनोरमा शुद्ध, सात्विक जीवन की पक्षपाती है, जब कि सुतली वाला जीवन के भड़कीले पक्ष को स्वीकार करनेवाला और चारित्रिक पवित्रता को अस्वीकार करने वाला है। सुतलीवाला मनोरमा से कहता है - 'तुम्हारा स्वभाव और प्रवृत्ति दूसरी है।' मनोरमा स्वीकार करती है - "हम लोगों में कोई मेल नहीं है। उसघर में रहना मेरे लिए असह्य है। यदि दिन भर के लिए कोई सन्तोष के लायक काम पा जाऊं तो समझ लूंगी, रात होटल में काट रही हूँ[3]।" मनोरमा के शब्दों में अनमेल विवाह के कारण उत्पन्न होने वाली असन्तुष्टि परिलक्षित होती है।

भगवतीप्रसाद बाजपेयी ने 'उनसे न कहना' में पति-पत्नी की विरोधी प्रकृति का बड़ा ही तीखा चित्रण किया है। प्रेमचन्द के 'रंगभूमि' के पश्चात् पति-पत्नी के विरोधी स्वभाव को ~~ऐसी ही~~ सशक्त अभिव्यक्ति 'उनसे न कहना' में प्राप्त होती है। विरोधी प्रकृति के कारण दाम्पत्य-जीवन में 'त्वरित परिवर्तन' आता है। तर्क, विवशता, घुटन, कुण्ठा आदि का स्थान वहां नहीं है, यदि पति-पत्नी

---

१. यशपाल, झूठा सच, भाग २, पृष्ठ ५०६

२. ,, ,, पृ० ५०६

३ यशपाल, मनुष्य के रूप, पृ० २१५, २१६

में कुछ है तो अपने स्वत्व की रक्षा के लिए एक दूसरे पर प्रहार करने की प्रवृत्ति। कीर्तिदेव और कल्याणी स्वाभिमानी प्रवृति के हैं। 'समानतेज और ओज, अहार और दम्भ परस्पर टकराते हैं। चार और चार का मिलन दोनों को पृथक्-पृथक् बनाए रखता है।'[१] कीर्तिदेव की अभी नई उमर थी। यौवन की आंधियों में पड़कर मानसिक सन्तुलन प्राय: खो जा बैठते थे। अभिमान इस सीमातक था कि अपने बराबर किसी को समझते न थे।'[२] दूसरी ओर 'कल्याणी बड़े घर की बेटी थी और बड़े ही लाड़-प्यार में पली थी। उसकी अपनी रुचियां थीं, अपने विचार थे।'[३] इस प्रकार के स्वतंत्र व्यक्तित्व वाले पति-पत्नी कभी-भी झुकना नहीं जानते हैं। 'कल्याणी को उच्चकोटि के सूती कपड़े पसन्द थे, किन्तु कीर्तिबाबू रेशमी छोड़ बात ही न करते थे। दोनों अगर साथ-साथ जलपान करने बैठते, तो गरमी के दिनों में कीर्ति बाबू के लिए चाय बनती और कल्याणी के लिए लस्सी। अध्ययन के सम्बन्ध में भी यही बात थी। कीर्तिदेव को कहानी और उपन्यासों में विशेष प्रीति थी, पर कल्याणी को कविता से। वर्षा के दिनों में कल्याणी खुले आकाश के नीचे सोना पसन्द करती, किन्तु कीर्ति बाबू कमरे के अन्दर सोते। कल्याणी प्रात:काल जल्दी उठती थी, तो जल्दी सो भी जाती थी। कीर्तिबाबू का हाल यह था कि वे देर से सोते तो देर से उठते।[४] नितान्त विरोधी जीवन को व्यतीत करने वाले दम्पति के जीवन में यदि साथ बैठने का अवसर भी आजाता है, तो वार्तालाप में भी विरोध प्रकट हो जाता है। बहस का अन्त प्राय: दुखान्त होता है। कीर्तिबाबू और कल्याणी की हठपूर्ण बहस का अन्त सम्बन्धों के अन्त में होता है। बहस की बहक में कीर्ति बाबू ने कह दिया -- 'मेरे साथ अब इसकी एक घड़ी नहीं पट सकती, पर जहां जा रही है, अब इसको वहीं रहना होगा।'[५] पति की बात

---

१. भगवतीप्रसाद बाजपेयी - 'उनसे न कहना', पृ० ५
२. ,, ,, पृ० ५
३. ,, ,, पृ० ६
४. ,, ,, पृ० ६,७
५. ,, ,, पृ० ८

कल्याणी के स्वाभिमान के लिए फेंकी गई चुनौती होती है और वह चुनौती को स्वीकार करती हुई-सी कहती है -'अब मैं आज ही जाऊंगी । भले ही मुझे सगड़ पर जाना पड़े ।'[१] विरोधी प्रकृति के दाम्पत्यजीवन का अन्त बड़े ही साधारण ढंग से हो जाता है ।'इस प्रकार कल्याणी अपने भाई के साथ चली गई । फिर न कभी कीर्तिदेव उसको लेने के लिए ससुराल गए, न वही लौटकर स्वामी के घर आई ।'[२]

रमेश बक्षी के'चलता हुआ लावा' में प्रकृति के स्तर पर होने वाले अनमेल विवाह का बड़ा ही संक्षिप्त और चुटीला वर्णन हुआ है । संक्षिप्त वार्तालाप दम्पती के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को सजीव कर देता है । पति-पत्नी शान्ति चाहते हैं, पर अपनी प्रकृति से मजबूर हैं । अन्त में पति खीफ कर कहता है -'तो देखो इस बार कोशिश की है मैंने कि यह घर चल सके,लेकिन यह चलता नहीं क्या करें अब ?'

'करना क्या है । जो कुछ करना है वह तो किया जा चुका है । अब कानूनी बात पर आइए । मैंने भाई को तार किया है । मैं वहां चली जाऊंगी और हमेशा वहीं रहूंगी ।'[३]

प्रकृति की असमानता में एक ऐसी त्वरा विद्यमान है,जो दाम्पत्य-जीवन के सम्बन्धों की स्थिरता पर प्रहार करती है । प्रकृति की असमानता दाम्पत्य-जीवन को नरक्खाई बना देती है ।

## निष्कर्ष

दाम्पत्य-जीवन में उत्पन्न होने वाली विकृतियों का मुख्य कारण पति-पत्नी की असमानता है । पति-पत्नी की असमानता को उपन्यासकारों ने आयु, शरीर, धन, शिक्षा तथा प्रकृति के स्तर पर होने वाले अनमेल विवाहों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है । अनमेल विवाह के कारण दाम्पत्य-जीवन में उत्पन्न होने वाली विकृतियों को चित्रित करने में हिन्दी का उपन्यास-साहित्य सक्षम है ।

---

१. भगवतीप्रसाद बाजपेयी, उनसे न कहना, पृ० ८

२. ,, ,, पृ० ६

३. रमेश बक्षी, चलता हुआ लावा, पृ० ४३,४४

## तृतीय अध्याय

## हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में दाम्पत्य-जीवन

१. संयुक्त परिवार

क. आदर्श संयुक्त परिवार तथा परस्परता की भावना
ख. संयुक्त परिवार में आर्थिक क्षमता पर टिकीदम्पती की स्थिति
ग. पारिवारिक सम्बन्धों के मध्य दम्पति -

सास-ससुर
जेठ-जिठानी
ननद

घ. संयुक्त परिवार तथा प्रौढ़ दम्पति के दाम्पत्य-सम्बन्ध
ङ. शहरोन्मुखी सभ्यता तथा अर्थमूलक व्यवस्था का संयुक्त परिवार पर पड़ने वाला प्रभाव
च. टूटते परिवार;प्रौढ़-दम्पति की भावनात्मक स्थिति, निष्कर्ष

२. सन्तान

क. प्रथम भावी सन्तान के प्रति आकर्षण
ख. अवैध सम्बन्धों से उत्पन्न सन्तान
ग. अवैध सन्तान
घ. रोमांस और सन्तान
ङ. सन्तानहीन दम्पती
च. सौतेली सन्तान
छ. माता-पिता के अनैतिक तथा असंयमित सम्बन्धों का सन्तान के व्यक्तित्व पर प्रभाव
ज. माता-पिता का किसी विशेष सन्तान के प्रति आकर्षण
झ. प्रौढ़ दम्पति और सन्तान के कल्याण की भावना
ञ. अयोग्य सन्तान
ट. प्रौढ़ दम्पति के कलह-क्षणों में वयस्क सन्तान की भूमिका

निष्कर्ष

---

## १. संयुक्त परिवार

परिवार की भावना निश्चित रूप से कृषि-प्रधान समाज में विकसित हुई है ।[१] परिवार का मुखिया उसका वृद्ध पुरुष होता है, जिसके अंश से उत्पन्न प्रजा उसके परिवार का अंग होती है ।

ऋग्वेद में आये श्लोक –

साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रवांभव ।
ननान्दरिसाम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधिदेवृषु ।।[२]

में परिवार में आनेवाली नववधू के पदगौरव की प्रतिष्ठा हुई है । ~~साथ ही हमें परिवार में आनेवाली नववधू के पदगौरव की प्रतिष्ठा हुई है~~ । साथ ही हमें परिवार के सदस्यों के सम्बन्ध ज्ञात होते हैं, जिनके साथ नववधू को जीवन व्यतीत करना रहता था ।

'पैप्पलादि-संहिता' में परिवार में शान्ति स्थापित रखने का उपदेश देते हुए स्पष्ट कर दिया गया है कि परिवार में दम्पती ही तो नहीं रहते, बच्चे, भाई, माता, पिता, बहन सभी होते हैं । सबको मिलाकर परिवार बनता है ।[३]

प्राचीन भारतीय परिवारों में परस्परता की भावना प्राप्त होती है । व्यक्ति, व्यक्तिगत दृष्टि से जीवित न रह कर परिवार के लिये कार्य करता है । कृषि प्रधानता में व्यक्ति को व्यक्ति की अपेक्षा होती है । अपेक्षा सौहार्द्र को जन्म देती है । आधुनिक जीवन में भी ग्रामीण क्षेत्रों में परस्परता और सौहार्द्र की भावना प्राप्त हो जाती है । वैदिक कालीन परिवारों का तत्सम तो नहीं पर तद्भव रूप आज भी ग्रामों में प्राप्त होता है ।

### क. आदर्श संयुक्त परिवार तथा 'परस्परता' की भावना

उपन्यासकारों ने जहां ग्रामीण-जीवन का चित्रण किया है, वहां सम्मिलित परिवार की भावना स्वतः निहित हो गई है । नरेश मेहता के 'धूम्रकेतु: एक श्रुति' तथा

---

१. जैनेन्द्र – समय और हम, पृ० १६४

२. ऋग्वेद, १०।८५

३. पैप्पलादि संहिता, ३।२६

'यह पथ बन्धु था ' उपन्यासों में सम्मिलित परिवार का ढांचा प्राप्त होता है। ढांचा इस अर्थ में कि शहरोन्मुखी सभ्यता ने संयुक्त परिवार का निर्धारित सन्तुलित रूप व्यवस्थित नहीं रहने दिया। संयुक्त परिवारों की गरिमा का तद्भव रूप उपर्युक्त उपन्यासों में प्राप्त होता है।

'धूम्रकेतु: एक श्रुति' उपन्यास में शालीन तथा सुव्यवस्थित परिवार का चित्रण हुआ है। प्रौढ़ पति-पत्नी अपने अथक परिश्रम द्वारा सम्पन्न परिवार की नींव डालते हैं। इस उपन्यास में दम्पति के हृदय में अपने परिवार को चरम-सुख देने की आकांक्षा व्यक्त होती है। दरिद्रता के पाश से निकल कर सम्पन्नता को छूने वाले दम्पति, मात्र अपने सुख को नहीं, वरन् परिवार के सुख को अनुभव कर सुखी होते हैं। सास गंगा आदर्श नारी है। जीवन में प्रथमबार कान में पड़ी बालियों को भी पूरी ममता के साथ बहू के लिये रख लेती है। 'पत्नी ने देखा कि पति केवल स्वत: सुखी नहीं हुए हैं, परिवार के लिये भी सुखी हुए हैं।'[१] लज्जाशंकर की प्रसन्नता पारिवारिक ममत्व की गरिमा को व्यक्त करती है।

'यहपथ बन्धु था' उपन्यास में परिवार के जीवन को बनाए रखने के लिए अपने जीवन को उत्सर्ग करने वाले पात्रों की रचना हुई है। परिवार का सदस्य पारिवारिकता के निर्वाह के लिए स्वार्थों की बलि चढ़ा देता है। अपनी आत्मा को परिवार की विशाल आत्मा में तिरोहित कर देता है। तत्पश्चात् उसे आवश्यकता नहीं रहती यह समझने की कि परिवार में उसकी स्थिति क्या है। यदि परिवार को एक 'दासी' की आवश्यकता है तो वह दासी-रूप में तत्पर है।[२] सदस्य अपने आपको तोड़ सकते हैं, परन्तु परिवार की शृंखला नहीं टूटनी चाहिए।

ख. संयुक्त परिवार में आर्थिक क्षमता पर टिकी दम्पती की स्थिति

संयुक्त-परिवार बाहर से शान्त तथा गम्भीर लगते हुए भी भीतर की ऊहापोह से संत्रस्त रहते हैं। संयुक्त परिवारों की अशान्ति का हिन्दी-उपन्यासों

---

१. नरेश मेहता 'धूम्रकेतु: एक श्रुति', पृ० २३४

२. ,, 'यह पथ बन्धु था' पृ० १५२

में पर्याप्त चित्रण हुआ है । अशांति का कारण पारिवारिक लोगों का स्तर-भेद है । स्तर-भेद आयु तथा आर्थिक क्षमता पर आधारित होता है । प्राय: दम्पती की पारिवारिक स्थिति उनकी आर्थिक क्षमता पर निर्धारित की जाती है । पति यदि परिवार के पालन-पोषण की धुरी है,तो पत्नी उस परिवार की स्वामिनी बन जाती है, यदि अयोग्य है अथवा आर्थिक दृष्टि से निर्बल है,तो पत्नी गृहदासी बन जाती है । अमरकान्त के 'काले उजले दिन' उपन्यास में अर्थ सामर्थ्य पर खड़े सम्बन्धों और दम्पती की पारिवारिक स्थिति का वर्णन तथा व्याख्या हुई है ।[1] 'यह पथ बन्धु था' में आर्थिक क्षमता के कारण किया गया स्तर-भेद अपने करुण रूप को लेकर मुखरित हुआ है । श्रीधर की 'असफल सांसारिकता' सरो को गृहदासी बनने के लिये बाध्य कर देती है । सरो परिवार की कलह को अविरोध सहन करती है । सास, जेठानी यहां तक कि देवरानी की आधीनता को भी वह कर्तव्य समझ कर स्वीकार करती है । श्रीनाथ ठाकुर तथा श्रीधर सरो की विवशता को जानते हैं । 'श्रीधर बाबू सारी बात समझ रहे थे । माता-पिता की चिन्ता भी वे सहज समझते थे । क्षण भर में सारी वास्तविकता आंखों के आगे कौंध गई । इतना बड़ा परिवार, जिसके वे सदस्य हैं, इस टूटे घर की तरह ही भीगा-भीगा टपक रहा है । रात्री-घर में इतनी रात बरतन मलती सरो की विवशता भी वे बूझ रहे थे तथा यह भी कि भाभी क्यों अपने कमरे में छप्पर पलंग पर बैठी दाल चावल का हिसाब लिखती रहती हैं और वे परेशानी का नाटक आये दिन करती रहती हैं । फिर भी न पति, न सास, न ससुर किसी की हिम्मत क्यों नहीं पड़ती यह कहने की, कि सरस्वती सबेरे से रात तक खटती रहती है और तुम भी बहू हो लेकिन तालियों का गुच्छा हिलाने के अलावा और क्या करती हो ? क्यों श्रीधर के बच्चे फटे कपड़े पहने घूमते रहते हैं और क्यों दादा भाभी के बच्चे..... '[2]

उपर्युक्त विश्लेषण में सरो की विवशता और सावित्री की प्रभुता का कारण स्पष्ट है । सरो और श्रीधर का संघर्ष स्वत्वों के लिए न होकर आदर्शों के लिए है । पति-पत्नी परिवार की कलह को तटस्थ भाव से ग्रहण करते हैं इसलिए

---

१. अमरकान्त - 'काले उजले दिन', पृ० ३६

२. नरेश मेहता - 'यह पथ बन्धु था', पृ० ३६

पारिवारिक कलह एक पक्षीय रह जाती है ।

'सारा आकाश' उपन्यास में राजेन्द्र यादव ने निम्नमध्यमवर्ग के परिवार में आर्थिक विषमता तथा स्वत्वों के आग्रह से उत्पन्न संघर्ष का चित्रण किया है । समर और प्रभा महत्वाकांक्षी युवक-वर्ग के प्रतिनिधि हैं, जिनकी आकांक्षाएं परिवार की चरमराती हुई आर्थिक स्थिति के कारण दमित रह जाती हैं । परिवार में बड़ी बहू का राज्य इसलिये है कि उनका पति कमाता जो है ।[1] माता-पिता तथा परिवार के अन्य प्राणी भी बड़ी बहू की प्रत्येक आवश्यकता का ध्यान रखते हैं, जबकि प्रभा की कोई आवश्यकता हो सकती है, इस पर सोचा भी नहीं जाता है । प्रभा बेचारी निकम्मे पति की पत्नी जो ठहरी, इसलिये घर भर को एक नौकरानी मिल जाती है, जिससे जानवरों की तरह काम लिये जाओ । न उसके खाने की बात सोची जाये, न पीने की ।'[2]

विवाह के पश्चात् जब तक समर प्रभा से खिंचा रहता है तब तक अकेली प्रभा ही परिवार का कोप-भाजन बनती रहती है । प्रभा की एक-एक त्रुटि के लिए बात उसके मां-बाप तक पहुंच जाती है ।[3] समर और प्रभा जब गलतफहमियों को दूर कर मिल जाते हैं, अपने सुख स्वप्नों की रचना करने लगते हैं, तो प्रभा के साथ ही समर भी परिवार के व्यंग्यों का लक्ष्य बन जाता है । आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की गई मांग पर उन्हें घर से हिकारत और घृणा प्राप्त होती है । पिता की हिकारत भरी झिड़की समर के निकम्मेपन पर आघात करती है -'कमाने-धमाने को कौड़ी नहीं और बहू की तरफ़दारी को शेर । शरम नहीं आती ? थू है इस बेहयायी पर ।[4] अर्थोपार्जन की क्षमता पर आधारित व्यवहार-भेद और उस समय स्पष्ट हो जाता है जब समर की नौकरी लग जाती है । समर के साथ-साथ प्रभा के प्रति भी परिवार के प्रत्येक प्राणी का व्यवहार मृदु हो जाता है ।[5]

---

१. राजेन्द्र यादव 'सारा आकाश', पृ० १५०
२. ,, ,, पृ० १५०
३. ,, ,, पृ० ७६
४. ,, ,, पृ० १४८

समर यह पथबन्धु था के श्रीधर की भाँति आदर्शवादी नहीं है । परिवार का आधार लेकर वह अपनी महत्त्वाकांक्षाओं का जाल बुनता है । समर अपनी सुख-सुविधाओं का निर्माण करना चाहता है । माता-पिता के अधिकारों की माँग की अवहेलना कर उनका उग्र विरोध करता है । प्रभा पारिवारिकजनों की अवहेलना सहन करती है । प्रभा का सहना परिवार के कल्याण के लिए नहीं निज के निर्माण के लिये है । पति का आश्रय पा वह अपना सुख-संसार परिवार से अलग बसाने की कल्पना करती है ।[१]

## ग. पारिवारिक सम्बन्धों के मध्य दम्पती की स्थिति

संयुक्त परिवार में दम्पती को परिवार के अन्य प्राणियों के साथ निर्वाह करना पड़ता है । निर्वाह कभी कलहपूर्ण, कभी सुमति-पूर्ण होता है । निर्वाह के रूप को रूपायित करने में परिवार के अन्य प्राणियों के विचार, व्यवहार तथा आवश्यकताओं का महत्त्वपूर्ण योग रहता है ।

### (अ) सास-ससुर

पति पत्नी को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले पात्र सास-ससुर होते हैं । परिवार के प्राणियों का व्यवहार परायेघर से आने वाली बहू को प्रभावित करता है । वह अपने स्वत्वों पर आग्रह नहीं कर सकती, बल्कि उससे अपेक्षा ही नहीं की जाती। पति और पत्नी के मध्य व्यवहार का सामान्य प्रतिमान यही होता है कि पति का पत्नी पर प्रभुत्व रहे । सास और बहू के व्यवहार में प्राय: संघर्ष ही रहता है । सास अधिकतर बहू के साथ कलह और विवाद ढूंढ़ती है और यदि बहू अधिक चतुर अथवा सास की अनुगामिनी न हो, तो उनमें एक दूसरी के बीच साम्य होने की सम्भावना नहीं रहती और संघर्ष के इस वातावरण में सास की भूमिका सामाजिक मान्यता की दृष्टि से प्रबल रहती है ।[२] सास का प्रत्येक प्रयत्न ऐसा होता है जिससे बहू और बेटे का मेल न हो । बहू से सास को एक प्रकार का सवतिया डाह होता है, इसे अस्वी-

---

१. राजेन्द्र यादव 'सारा आकाश' , पृ० १६६

कारा नहीं जा सकता । हिन्दी-उपन्यासों में पति-पत्नी में बिलगाव लाने के लिए कारण रूप में सास के चरित्र का प्रभूत चित्रण हुआ है ।

'चौथी मुट्ठी' में शैलेश मटियानी ने पहाड़ी अंचल में पलने वाले निम्नस्तरीय परिवार की सृष्टि की है । पहाड़ों की सभ्यता में नैतिकता का यद्यपि विशेष अर्थ नहीं होता फिर भी अनैतिकता ईर्ष्या का कारण बन जाती है । रतन सिंह डोंगरी स्वयं कौशिला तथा उसकी मां को असहाय देख कर अपने यहां शरण देते हैं । कौशिला को पुत्रवधू रूप में स्वीकार कर कौशिला की मां से रतनसिंह अपना अवैध सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं । अन्याय रतनसिंह का है, परन्तु उनकी पत्नी' मिरदुला' अन्याय का बदला कौशिला से लेती है ।

'आज से चौदह पन्द्रह साल पहले की बात है । पहले तो हम दोनों मां - बेटियों को हजार तरह के चरके देकर, फंसा कर अपने सत्यानाशी घर में रखा । बाद में मेरी बैरन क्या कहती है कि जो मेरी छाती में सौत की तरह आकर बैठी है मैं भी उसे भुगतूंगी ।..... तो वे नन्दुली, मेरी माता के ऊपर का कोप दुश्मनों ने मेरे सिर पर निकाला । एक साल का सुरेन्दर था तब से मेरी छाती पर सौत खड़ी करके रखी । बाल गोपालों वाली माता थी, कुतिया की तरह मुझको सताया ।'[१]

कौशिला के उपर्युक्त आर्तनाद में परिवार में व्याप्त कटुता का आभास मिलता है । परिवार में सास की प्रभुता तथा वधू की नगण्यता का परिचयमिलता है । मिरदुला ने जिसके कारण सौतिया डाह सहा, उसका प्रतिशोध वह जीवन भर अपनी बहू कौशिला से लेती है । कौशिला की स्थिति परिवार में बधू होते हुए भी 'कुतिया' के समान ही है । मिरदुला के कहने में आकर रतनसिंह भी कौशिला को गालियां देता है । पुत्र-वधू के लिये अश्लील शब्दों का प्रयोग वृद्ध दम्पती की क्षुद्रता का परिचायक है ।

सास-ससुर का अत्याचार चरम सीमा पर परिलक्षित होता है जब कि, बागेश्वरी के आने के तीन साल बाद रतन सिंह डोंगरी ने जूते मार-मार कर कौशिला

---

१. शैलेश मटियानी 'चौथी मुट्ठी', पृ० २६

को अपने घर से निकाल दिया । 'चल ससुरी कुतिया, मुझ जैसे रईसों के घर में रहने की तेरी औकात भी है ?'[१] पति द्वारा कौशिला की अवहेलना ससुर द्वारा दी जाने वाली प्रताड़ना, परिवार में सास की प्रभुता तथा निम्नवर्गीय जीवन की अनैतिकता का बोध कराती है ।

रमेश बक्षी के 'चलता हुआ लावा' में सास-बहू की ईर्ष्या का कारण भिन्न है । माता-पिता अपने एकमात्र पुत्र को विवाह के लिये बाध्य करते हैं । माता-पिता के अन्दर पुराने परिवार के टूट जाने का दु:ख है । परिवार को पुन: नए रूप में संयोजित करने के लिये, ताकि वे 'बंट न जायें' अपनी इच्छा से बहू लाते हैं ।' होना यह चाहिए था कि जब उन्होंने शादी करवाई थी तो वे बहू को चाहते ही, लेकिन माता-पिता बहू से घृणा करते हैं ।'पिता खाने पर से उठ पड़ते हैं और वह रोने लगती है । वह नहाने जाये तो, ~~खाने~~ खाने जाये तो, सोये तो कुछ न कुछ ऐसा हो जाता है कि वह बैठ कर सुबकने लगती है ।'[२]

नियमित कलह को शांत करने के लिये पिता-माता को लेकर इन्दौर चले जाते हैं । पिता पुत्र से अलग होने को लोक-परम्परा की भांति स्वीकार लेते हैं, परन्तु माता के अधिकार-भाव को ठेस लगती है । पुत्र तथा पुत्रवधू में कलह उत्पन्न होने के लिए एक पत्र में, "बेटे को सम्हाल कर रखना, उसकी भटकने की आदत है । कालेज के दिनों ~~च~~ के किस्से तो सुने ही होंगे ," लिख कर बहू के मन में पुत्र के प्रति शंका का बीज-वपन कर देती है ।[३] परिणाम पति-पत्नी की भीषण कलह में दृष्टिगोचर होता है । पत्नी पत्र को प्रमाण मान पति का उठना बैठना 'हराम' कर देती है ।[४]

मां की दबी हुई आधिपत्य की प्रवृत्ति का चित्रण प्रेमचन्द के 'रंगभूमि' उपन्यास में भैरों, सुभागी तथा भैरों की मां के निम्नवर्गीय परिवार में प्राप्त होता है । भैरों की मां बुढ़िया सुभागी को क्रीतदासी से अधिक महत्त्व नहीं देती है । बुढ़िया स्वयं

---

१. शैलेश मटियानी 'चौथी मुट्ठी' पृ० १५

२. रमेश बक्षी 'चलता हुआ लावा' पृ० ३५, ३६

३. ,, ,, पृ० ३६

४. ,, ,, पृ० ३६

वे सारे सुख बेटे के राज्य में भोग लेना चाहती थी, ~~जिनका पति के राज्य में भोग लेना चाहती थी,~~ जिनका पति के राज्य में उसे अभाव रहा । बेटे द्वारा दिये गये आराम से बुढ़िया का मन और बढ़ गया । सुभागी से सारा काम होने के पश्चात् भी बुढ़िया ने उसका नाम अभागी रख छोड़ा । भैरो के प्रेम का लाभ उठाकर बुढ़िया पति-पत्नी में बराबर खटपट रखने का प्रयत्न करती है । सुभागी के काम में नगण्य त्रुटि होने पर भी वह भैरो से 'एक की सौ-सौ' लगाती । भैरो अपनी मां का सपूत बेटा था । बुढ़िया का कष्ट देख कर वह सुभागी को, कभी जली-कटी बातों से, कभी डंडे से खबर लेता[१] । सुभागी भैरो और बुढ़िया निम्न वर्गों के उन परिवारों के प्रतिरूप हैं, जिनमें सम्बन्ध टूटते नहीं हैं पर सम्बन्ध कलहपूर्ण होते हैं तथा भय और दण्ड द्वारा नियन्त्रित होते हैं । ऐसे परिवारों में परिष्कृत सम्बन्धों का अभाव होता है ।

उपेन्द्रनाथ अश्क के 'गिरती दीवारें' उपन्यास में पीढ़ी के विचारों का संघर्ष चित्रित हुआ है परन्तु उस संघर्ष में त्वरा नहीं है, शांत रूप से होने वाले परिवर्तनों का चित्रण है । सास और बहू के विचारों में विषमता है, परन्तु कटुता नहीं है । लज्जावती बड़ी बहू के कर्कश स्वभाव से ऊब कर चेतन की बहू चंदा से आशाएं बांधती है । चंदा सीधी, सरल और शान्त है । लज्जावती अरमानों के साथ चंदा को चेतन के साथ शहर न भेजकर अपने पास हुनर सिखाने के लिये रख लेती है । दो महीने बाद ही लज्जावती ने फतवा दे दिया कि नई बहू बड़ी बहू से भी गई गुजरी है । यहां पर कथाकार ने पारिवारिक स्थिति का संजीव चित्रण किया है । बहू के ढीले-पन पर पंजाबी चर्चित लोकोक्ति का प्रयोग सास के सासपन को अभिव्यक्ति देती है ।[२]

लज्जावती ने परदादी गंगादेई के कठोरशासन में अपना जीवन व्यतीत किया है । घर के बाहर औरतों से आवश्यकता पड़ने पर पानी मांग लेने पर जिसे पति और ददिया सास की मार खानी पड़ी थी ।[३] कठोर नियन्त्रण में रहने के पश्चात् भी लज्जावती के स्वभाव में कठोरता नहीं आ पाती है । लज्जावती चाहती है कि उसकी बहुएं भी उसके नियन्त्रण में रहें । नियन्त्रण की अवहेलना देख कर दुःखित होते

---

१. प्रेमचन्द 'रंगभूमि', पृ० १०६

२. उपेन्द्रनाथ अश्क 'गिरती दीवारें', पृ० २३७

हुए भी वह असंयमित नहीं होती है । लज्जावती घटनाओं को कटुता से नहीं सरलता से स्वीकार करती हैं जिससे परिवार अलग-अलग होते हुए भी बिखरता नहीं है ।

चेतन अपनी नवविवाहिता पत्नी चंदा को लेकर घूमने जाता है और रात देर में लौटता है । लज्जावती को नये जमाने की चाल अच्छी नहीं लगती है और वह चेतन से आग्रह करती है कि वापस जाने के लिये चेतन उसे ट्रेन पर बैठाल आये । चेतन अपना अपराध स्वीकार करता है । मां से स्वयं क्षमायाचना करता है तथा चंदा से भी क्षमायाचना करवाता है । अनुभवी मां सम्बन्धों में कटुता उत्पन्न होने से पहले ही वहां से हट जाना चाहती है । लज्जावती अपने पुत्र तथा पुत्रवधू से 'गुस्सा नहीं हुई, जाते समय हंसी भी, उसने आशीर्वाद भी दिया, किन्तु नये ज़माने के यह लच्छन देख सकने की शक्ति न रखने के कारण उसने वहां रहना उचित नहीं समझा ।'[१]

मुख्यत: सास पुत्र और पुत्रवधू के मध्य तनाव उत्पन्न करने का प्रयत्न करती हैं, परन्तु कभी-कभी स्थिति विपरीत हो जाती है । वधू स्वयं सास के जीवन पर हावी हो जाती है । सास के नाम से वधू को घृणा हो जाती है । परिवार में अपने को सर्वेसर्वा समझ कर सास का अपमान करती है । पति पत्नी के मोह और माता की ममता के द्वैध में खिंचता है । कभी पत्नी की विजय होती है कभी माता की ।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'विदा' उपन्यास में कुमुदनी एक ऐसी वधू है जो अपने घर में सास के अस्तित्व को सहन नहीं कर पाती । सास शान्ता के प्रेम में भी कुमुदनी को कपट की गन्ध लगती है -'बुढ़िया के मारे कुछ होने भी तो पावे । ऊपर से कैसी घुल-घुल कर बातें करती है, लेकिन भीतर ही भीतर छुरी चलाती है ।...... सिंहनी का प्यार स्वार्थ से विलग नहीं होता ।'[२]

कुमुदनी के विपरीत शान्ता निरन्तर यही प्रयत्न करती है कि बेटे और पुत्रबधू के सम्बन्ध खराब न हों । उसकी बस एक साध बाकी है कि वे दोनों को सुखी

---

१. उपेन्द्रनाथ अश्क 'गिरती दीवारें' , पृ० २७०

२. प्रतापनारायण श्रीवास्तव, 'विदा' पृ० ३१

देवे ।.... पुत्र राजा बनकर रहे और पुत्रबधू रानी बन कर रहे । उसे दासी ही बन कर जीवन के इने-गिने दिन काट लेने दिये जायें ।[१]

कुमुदनी शान्ता के साथ एक क्षण भी रहना सहन नहीं कर पाती है । निर्मलचन्द्र माता के निष्कपट प्रेम और पत्नी के ईर्ष्यालु स्वभाव से परिचित है । पत्नी द्वारा किया गया माता का अपमान वह सहन नहीं कर पाता और कुमुदनी को मायके भेज देता है ।[२]

कुमुदनी, निर्मलचन्द्र और शान्ता के सम्बन्धों में ऐसे पारिवारिक जीवन को रूपायित किया गया है जहाँ बहू की मिथ्या धारणाओं के कारण पारिवारिक सम्बन्धों की मधुरता समाप्त हो जाती है । दम्पती के जीवन में उत्पन्न होने वाली विषमता का कारण माता-पिता न होकर यहाँ स्वयं पत्नी है ।

(ब) जेठ-जिठानी

श्वसुर तथा श्वश्रू के पश्चात् दम्पती के लिए जेठ-जिठानी का सम्बन्ध आता है । जेठजिठानी का महत्व श्वसुर-श्वश्रू के समकक्ष होता है । परिवार में बड़े भाई तथा छोटे भाई की, स्त्री - जेठानी तथा देवरानी की स्पर्धा पारिवारिक कलह को जन्म देती है । जेठानी का प्रभाव देवर तथा देवरानी की स्थिति पर पड़ता है । जेठ प्राय: पारिवारिक झमेलों में तटस्थ रहते हैं परन्तु जेठानी के लिए देवरानी एक चुनौती होती है । 'यह पथ बन्धु था' में जेठानी को देवरानी के साथ निष्ठुर व्यवहार चित्रित हुआ है । 'सारा आकाश' में दम्पती के मध्य में जेठानी का व्यक्तित्व महत्व-पूर्ण स्थान रखता है ।

विवाह के पश्चात् ही परिवार के सदस्यों ने कह दिया कि छोटी बहू बड़ी बहू से अधिक सुन्दर और अधिक योग्य है।[३]बड़ी बहू के लिए प्रभा प्रारम्भ से ही स्पर्धा का कारण बन जाती है । ईर्ष्या से भर कर बड़ी बहू प्रत्यक्ष प्रभा से सहानुभूति दिखाती है और परोक्ष में उससे डाह करती है ।[४] बड़ी बहू प्रभा को परिवार

---

१. प्रतापनारायण श्रीवास्तव, 'विदा', पृ० १४,१५

२. ,, ,, पृ० ६०

३. राजेन्द्र यादव -'सारा आकाश', पृ० ३३, १३७

वालों की तथा समर की दृष्टि में गिराने के लिए प्रत्येक प्रयत्न करती है । प्रभा और समर की मनोवैज्ञानिक स्थिति से लाभ उठा कर बड़ी बहू प्रभा को परिवार में नगण्य बनाने में सफल भी होती है ।[१] प्रभा का दासी-रूप देख कर बड़ी बहू के अहं को सन्तोष प्राप्त होता है ।

हिन्दी-उपन्यासों में जेठानी-देवरानी के परस्पर सौहार्द्र तथा सहिष्णुता-पूर्ण व्यवहार के भी चित्रण प्राप्त होते हैं । आयु तथा पद के अनुसार छोटे , यदि बड़ों के अनुशासन को सहज रूप से स्वीकार कर लेते हैं तो कलह के अवसर नहीं आते । 'महाकाल' की मंगला तथा बड़ी बहू में पद की मर्यादा तथा ममत्व को उद्भासित करता हुआ प्रेम-सम्बन्ध है । मंगला तथा बड़ी बहू, के सम्बन्धों का प्रारम्भ ही सख्य-भाव पर आधारित है ।'मंगला जिस दिन से इस घर में आई थी उसी दिन से बहनापा जुड़ गया था । एक दिन भी जेठानी-देवरानी बन कर नहीं रहीं ।'[२]

'गिरती दीवारें' की चंदा सरल स्वभाव की है । परिवार में मनमुटाव की स्थिति उत्पन्न होने पर चंदा उन पर ध्यान नहीं देती है । चेतन और चंदा परिवार के व्यक्तियों की भावनाओं का ध्यान रखते हुए अपना कार्य करते हैं । पारिवारिक जनों की क्षण-क्षण में बदलने वाली प्रवृत्ति से पति-पत्नी की स्थिति डांवाडोल अवश्य होती है पर वे परिस्थिति के साथ तुरन्त समझौता कर लेते हैं । बड़े भाई रामानन्द के कहने पर चेतन चंदा को पर्दा न करने के लिये बाध्य करता है । चंदा आर्य-समाजी परिवार की लड़की है । पर्दे में विश्वास न रखते हुए भी वह सास की इच्छाओं का विचार कर पर्दा करती है । चेतन उसे समझाता है 'उनका और पर-दादी गंगा देई का ज़माना अब लद गया ।'[३] चेतन आधुनिकता के साथ चलना चाहता है ।

चेतन की भाभी चम्पावती चंदा का पर्दा छोड़ना सहन नहीं कर पातीं हैं । जेठ से बहू का मुंह खोल कर बात करना खुलकर हंसना भी चम्पावती को असंगत लगता

---

१. राजेन्द्र यादव 'सारा आकाश' , पृ० ८०, ८५, १०६

२. अमृतलाल नागर 'महाकाल' , पृ० ५६

है ।[१] चम्पावती चन्दा पर नियन्त्रण करना चाहती है । चम्पावती के नियन्त्रण में ईर्ष्या के स्थान पर परम्पराबद्ध पारिवारिक मर्यादा को सुरक्षित रखने का प्रयत्न है । चंदा को समझाना , परिवार की मर्यादा के प्रति सचेत करना आदि जिठानी के पिछड़े हुए परन्तु मृदुल स्वभाव के परिचायक हैं । जेठानी के व्यवहार में कटुता नहीं है ।

चेतन, जब अपने बड़े भाई को-चंदा को-गाने, हंसने तथा खुले मुंह घूमने के लिए रोकते हुए देखता है, तो उसे बुरा लगता है । रामानन्द द्वारा कहे गए शब्द, सास की तरह अपनी जेठानी का आदर करना चाहिए, परिवार की पद मर्यादा को पुन: बांधने का प्रयत्न है ।[२] चेतन को बात लग गयी पर तुरन्त ही वह स्थिति की गम्भीरता को पकड़ लेता है । चेतन ने स्वयं पत्नी को पुरानी प्रथाएं तोड़ने के लिए बाध्य किया था और अब परिवार के बड़ों की इच्छा के लिये वह चंदा को समझाता है -- "भाभी पुराने और संकुचित वातावरण में पली हैं । उनके विचारों और भ्रमों का कुछ - न - कुछ ख्याल रखना ही चाहिए ।"[३] चंदा पति तथा परिवार की इच्छानुसार अविरोध पुन: अपने को बदलती है ।

(स) ननद—

दम्पती की पारिवारिक स्थिति में विषमता तथा समता उत्पन्न करने में अन्य प्राणियों की भांति ननद की भूमिका भी महत्त्व पूर्ण होती है । 'बूंद और समुद्र' में नन्दो का व्यक्तित्व अलगमहत्त्व रखता है । नन्दो पति को छोड़ कर जीवन पर्यन्त माता-पिता के यहां रहने के लिये आ गई है । उसका अधिकतर समय धार्मिक बाह्याडम्बरों में व्यतीत होता है । घर में अपने स्थान को स्थायी रखने के लिए नन्दो प्रत्येक प्रकार का कुकृत्य करती है । पिता के पश्चात् बड़ा भाई मनिया घर का कमाऊ प्राणी है । सबसे पहले नन्दो "मनिया" को अपने बस में रखने के लिए सतो की बहू से फंसवा देती है । मनिया से झूठी चुगली खा-खा कर बड़ी भाभी, मोहिनी को

---

१. उपेन्द्रनाथ अश्क 'गिरती दीवारें', पृ० २७७
२. ,, ,, पृ० २८०
३. ,, ,, पृ० २८१

मार भी पड़वाया करती है ।'[1] परनिन्दा में रुचि रखने वाली नन्दो के लिए भाभियाँ, भाइयों तथा माता-पिता के मन में स्नेह नहीं है । भाभियां परिवार की मर्यादा के अनुसार साससुर के रहते नन्दों का विरोध तो नहीं कर सकतीं परन्तु नन्दों की भाई द्वारा की गई प्रताड़ना से उन्हें हार्दिक सुख प्राप्त होता है । [2]

करधनी-चोरी के अपराध में भाई मनियां द्वारा पीटी जाकर नन्दो ने घर से बाहर कदम नहीं रखा था । बाह्य रूप से नन्दो पूर्णतया सुशील एवं सात्विक हो जाती है, पर अन्दर-अन्दर अपने खोए हुए विश्वास को प्राप्त करने के लिये षड्यंत्रों का जाल बुनती है ।[3] मनिया का उसकी पत्नी के प्रति बढ़ता हुआ आकर्षण नन्दो सहन नहीं कर पाती है । भोली-भाली मोहिनी की ~~विरहेश प्रेम की~~ एक-एक सांस को अपनी मुट्ठी में कर 'नन्दों ने मोहिनी के 'विरहेश-प्रेम' की 'थाह' ले ली । [4] नन्दों को पति-पत्नी के मध्य कलह उत्पन्न करने का सुअवसर प्राप्त होता है । मनिया के विश्वास को प्राप्त करने के लिये नन्दो मोहिनी-विरहेश-प्रेम के रहस्य को खोल देती है । विश्वस्त प्रमाण 'प्रेमपत्र' प्राप्त कर 'मनियां बड़ी को घसीट कर ले चला, आंगन दालान चौखट की ऊंचाई-नींचाई से ठोकरें खाती, रगड़ खाती हुई बड़ी की सजीव लाश घर के बाहर ' वह डाल देता है ।[5] शंकर और स्वरूप की मौन सहानुभूति मनियां के दुर्दमनीय क्रोध के सामने मोहिनी का कल्याण नहीं कर पाती । मोहिनी भावुकता में की गई एक भूल के लिए नन्द के षड्यन्त्र में फंस कर पति, परिवार तथा समाज द्वारा तिरस्कृत कर दी जाती है ।

'सारा आकाश' में मुन्नी के चित्रण से स्पष्ट होता है कि ननद भाई तथा भाभी के मध्य उत्पन्न होने वाले तनाव को दूर करने का प्रयत्न भी करती है । मुन्नी प्रभा और समीर के तनावों को दूर करने में विशेष क्रियाशील नहीं मालूम होती , परन्तु विदा के समय उसके दु:खी हृदय से निकले उद्गार —'भैया, भाभी से बोलना

---

१. अमृतलालनागर, 'बूंद और समुद्र' , पृ० ३५
२. ,, ,, पृ० १६
३. ,, ,, पृ० ६७, ६६
४. पृ० ६६

उन्होंने कुछ नहीं किया'-स्पष्ट करते हैं कि प्रभा के दु:खी और परित्यक्त जीवन के लिए मुन्नी के हृदय में असीम करुणा भरी है।[१] मुन्नी भाभी और भइया के बिखरे सम्बन्ध को पुन: एकत्रित करने का प्रयत्न करती हैं ।

(घ) संयुक्त-परिवार तथा प्रौढ़ दम्पती के दाम्पत्य-सम्बन्ध

अपने शरीर से उत्पन्न कुटुम्ब में प्रौढ़-दम्पती का व्यवहार संयम की अपेक्षा रखता है । प्रौढ़-दम्पति की शारीरिक आवश्यकताओं को अस्वीकारा नहीं जा सकता है । दम्पती माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धों के साथ ही पति-पत्नी भी होते हैं । हिन्दी-उपन्यासों में वर्णित प्रौढ़-दम्पती प्राय: परिवार-कल्याण की चिन्ता में निमग्न रहते हैं । वे अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को सन्तुलित कर रख पारिवारिक जीवन में व्यक्तिगत आकांक्षाओं को तिरोहित कर देते हैं ।

'महाकाल' उपन्यास में अमृतलाल नागर ने प्रौढ़-दम्पती की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को नितान्त शारीरिक स्तर पर उठाया है । लेखक ने पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में रखकर प्रौढ़-दम्पती के शारीरिक सम्बन्धों के औचित्य पर प्रकाश डाला है ।

जीवन भर पति के असंयमित सम्भोग का भार ढोने वाली पार्वती पति के दुराग्रह पर खीझ जाती है । अंधा पति दिन और रात का विचार भी नहीं करता है । केशव बाबू की पुकार' अरे, सुनती हो, एक गिलास पानी दे जाना' के गूढ़ अर्थ को उनकी पुत्री तथा पुत्रबधुएं जानती हैं ।[२] तुलसी का 'उत्साह' के साथ मां से कहना कि बाबा पानी मांग रहे हैं पार्वती मां की आत्मा को दंश दे जाता है । वह तिलमिला उठती है ।'जवान-जवान बहुएं बेटियां, तीन-तीन पोती-पोतों की दादी के पद की प्रतिष्ठा को आघात लगता है ।'[३] बड़ी बहू तथा मंगला की दबी-दबी हंसी

---

१. राजेन्द्र यादव, सारा आकाश, पृ० १०१

२. अमृतलाल नागर, 'महाकाल', पृ० ४७

३. ,, ,, पृ० ४८

का भाव ~~का भाव~~ सास से छिपा नहीं रहता है ।' पद गौरव और वृद्धावस्था की झुंझलाहट बेबसी में झेंप बन कर रह जाती है ।' बहुओं पर शासन करने वाली पार्वती अपने स्त्रीत्व से परिचित हो अपने आपको बहुओं की श्रेणी में ही देखती है । पार्वती को अपना पत्नी होना खल जाता है ।[१]

इच्छा न होने पर भी अन्धे पति के क्रोध को याद कर पार्वती मां धीरे-धीरे समर्पण के लिए प्रस्तुत हो जाती हैं ।' अठारह-बीस-साल की जवान बहुओं की कक्षा में बैठते हुए सुहागिन सास की उम्र का अड़तालीसवां बरस बूढ़ी लाज के घूंघट से जवान बन कर झांकने लगा -- फिर किया क्या जाये नहीं मानते तो --' पत्नी पार्वती यहीं बाध्य हो जाती हैं ।[२] अंधे पति के क्रोध का भय, पातिव्रत धर्म का खण्डन तथा पारिवारिक मर्यादा प्रौढ़ा-पत्नी के हृदय में द्वन्द्व का कारण बनते हैं ।

## ड०. शहरोन्मुखी सभ्यता तथा अर्थ-मूलक व्यवस्था का संयुक्त परिवार पर पड़ने वाला प्रभाव --

विज्ञान ने जीवन का यंत्रीकरण किया । यंत्रीकरण ने व्यक्ति को निजता में संकुचित कर दिया है । व्यक्ति विज्ञान की सहायता से पूर्ण हो जाता है । व्यक्ति की पूर्णता में परस्परता का उद्देश्य समाप्त हो जाता है । शहरों में वैज्ञानिक हलचल तथा व्यक्तिमूलक अर्थ-व्यवस्था ने पारिवारिक रूपों को छिन्न-भिन्न कर दिया है । शहरोन्मुखी सभ्यता ने ग्रामीण जीवन में भी विघटन उत्पन्न किया है । शहरोन्मुखी सभ्यता का पारिवारिक ढांचे पर पड़ने वाला आघात प्रथमत: 'गोदान' में परिलक्षित होता है । युवक-वर्ग का प्रतिनिधि गोबर शहर की मुद्राचालित व्यवस्था का स्वाद प्राप्त कर चुका है । ग्रामों की जीतोड़ परिश्रम की निरर्थकता से भी वह परिचित है । अर्थ की प्रधानता ने गोबर के हृदय में जन्मभूमि के प्रति उठने वाले स्वाभाविक प्रेम को भी शुष्क कर दिया है । गोबर स्थान के महत्त्व को अर्थ की दृष्टि से तौलने लगता है । अर्थ का महत्त्व सर्वोपरि हो जाता है । गोबर प्रत्येक सम्बन्ध को स्वार्थवृत्ति से आंकने लगता है । सम्बन्धों को रुपयों के बल पर खरीदने का दम्भ रखता

है । माता-पिता के स्वाभाविक प्रेम और अधिकार को भी गोबर स्वार्थ और पैसे के सम्बन्ध घोषित कर देता है ।[१] माता-पिता के प्रति धर्म तथा समाज द्वारा निर्धारित कर्तव्यों को एक ही झटके से उतार फेंकता है - 'पालने में तुम्हारा क्या लगा ? ......... अब तुम चाहती हो और दादा भी चाहते हैं कि मैं सारा कर्जा चुकाऊं, लगान दूं, लड़कियों का व्याह् करूं । जैसे मेरी जिन्दगी तुम्हारा देना भरने के लिए ही है । मेरे भी तो बाल बच्चे हैं ।[२]

होरी जाते हुए गोबर से कहता है -'जाकर अपनी अभागिनी माता के पांव छू लोगे तो कुछ बुरा होगा ? जिस माता की कोख से जनम लिया जिसका रक्त पीकर पले हो उसके साथ इतना भी नहीं कर सकते ? ' गोबर के उत्तर - मैं उसे अपनी माता नहीं समझता,' में समीपतम सम्बन्धों को नकार देने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है ।[३] व्यक्ति इकाई में अपने लघु परिवार में बंट कर निज के लिए जीवित रहना चाहता है जो गोबर के संयुक्त पारिवारिक जीवन से टूटते-सम्बन्ध के माध्यम से व्यक्त होता है ।

परिवार के भीतर जब तक आर्थिक विषमता का विचार नहीं आता तब तक ऐक्य रहता है । 'आज भी ऐसे घर हिन्दुस्तान में हैं जिनकी सदस्य-संख्या सौ तक होगी । लेकिन धन उनके पारस्परिक सम्बन्धों के बीच फिर भी कहीं देखने में आता ही नहीं । सब व्यवस्था केन्द्र से होती है और धन वहीं एकत्र होता है ।...... यह हालत यहां भी कम होती जा रही है और संयुक्त-परिवार टूट रहा है ।[४]

मुद्रा का जीवन के विभागों में अधिकाधिक प्रवेश व्यक्ति को भी नीति-निष्ठ से अधिक स्वनिष्ठ बनाता जा रहा है । अर्थमूलक भावनाओं का संयुक्त परिवार पर पड़नेवाला प्रभाव 'धूमकेतु:एक श्रुति' में प्रच्छन्न रूपसे तथा 'यह पथ बन्धु था' में

---

१. प्रेमचन्द 'गोदान' , पृ० २१४
२. ,, पृ० २१४,२१५
३. ,, पृ० २१७
४ जैनेन्द्र 'समय और हम' , पृ० १६६

स्पष्ट रूप से वर्णित हुआ है । सम्पूर्ण परिवार के व्यय के लिये पण्डित श्रीनाथ ठाकुर तथा उनकी पत्नी उत्तरदायी हैं । अर्थ-विषमता परिवार की जड़ों में घुस जाती है और भाई-भाई का सम्बन्ध आर्थिक भित्ति पर खड़ा हो जाता है । श्रीधर की आय श्रीमोहन की आय से कम है । श्रीधर के घर छोड़ कर चले जाने का प्रभाव घर की पारिवारिकता पर पड़ता है । सावित्री देवी के प्रतिदिन के ताने -'भगोड़े भाई के निठल्ले परिवार को वे कब तक खिला-पिला सकते हैं ?' शेष होती हुई कौटुम्बिक भावना की अभिव्यक्ति है ।[1] मुद्रा की जीवन में प्रधानता होने से भाई आपत्तिकाल में भाई की सहायता नहीं करता है ।

श्रीमोहन परिवार में रहते हुए अर्जित आय से व्यक्तिगत सम्पत्ति का निर्माण करते हैं । अपनी सम्पत्ति बना कर कुटुम्ब से अलग होने का क्रमिक प्रयत्न श्रीमोहन तथा सावित्री के जीवन में परिलक्षित होता है ।[2] पारिवारिक विघटन आवेशजन्य या परिस्थिति जन्य न होकर प्रयत्नज है । 'गोदान' में गोबर का परिवार से अलग होना आवेशजन्य स्थिति में सम्पन्न होता है । 'धूमकेतु: एक श्रुति' में सूर्यशंकर का बंटवारे के लिए दुराग्रह करना परिस्थितिजन्य है परन्तु 'यह पथ बन्धु था' में सावित्री और श्रीमोहन का माता-पिता तथा परिवार से सम्बन्ध तोड़ना षड्यन्त्र के रूप में है ।

(च) टूटते परिवार: प्रौढ़-दम्पती की भावनात्मक स्थिति

टूटते हुए परिवार का सबसे बड़ा आघात प्रौढ़-दम्पती की भावनाओं पर होता है, जो पिता के लिए सामाजिक अपमान और माता के लिए मातृत्व की अव-हेलना सिद्ध होता है । पुरुष गम्भीर और परिवर्तन को समझने वाला होता है, वह पुत्र और पुत्रवधू के कटु व्यवहारों को झेलता है । 'जो आदमी नहीं रहना चाहता क्या उसे बाँध कर रखोगी ? ..... माँ बाप का धरम है, लड़के को पाल-पोस कर बड़ा कर देना ।.... जो जाता है उसे आसीस देकर विदा कर ।'[3] होरी के हृदय

---

१. नरेश मेहता, 'यह पथ बन्धु था', पृ० १५४

२. ,, ,, पृ० १५४, १६८

३. प्रेमचन्द, गोदान, पृष्ठ २१७

की विशालता धनिया के हृदय में नहीं व्याप्त होती है । अपने शरीर से उत्पन्न सन्तान को वह 'स्वार्थी' सोच नहीं सकती । सासवृत्ति शंकाओं से धनिया को घेर लेती है । धनिया की सम्पूर्ण प्रतिहिंसा झुनिया पर केन्द्रित हो जाती है । सारा दोष वह झुनिया पर मढ़ देती है । 'हो न हो यह आग झुनिया ने लगाई है । '[१] धनिया का मानसिक संघर्ष पुत्र के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए व्यंग्यात्मक रूप से प्रकट होता है । धनिया के मनोभावों का प्रगटीकरण निर्दोष झुनिया को क्रोधित कर देता है । धनिया और झुनिया की कलह परिवार के विघटन का आधार बन जाती है ।[२] गोबर के झुनिया को लेकर चले जाने में धनिया को मातृत्व की अवहेलना प्रतीत होती है । 'उसका मातृत्व उस घर के समान हो रहा था जिसमें आग लग गई हो और सब कुछ भस्म हो गया हो । '[३]

'यह पथ बन्धु था' में श्रीनाथ टाकुर और उनकी पत्नी ने जिस उत्साह के साथ परिवार की नींव डाली थी उसको छिन्न-भिन्न होते देख कर उनका शान्त गम्भीर चित्त विचलित हो जाता है । बड़ी बहू सावित्री देवी का अपने मायके से कान्ता का विवाह करना वृद्ध दम्पती के लिये सामाजिक अपमान का कारण बन जाता है । श्रीनाथ ठाकुर ने मुख पर कोई भाव तक न आने दिया कि वे कितने आहत और अपमानित हुए हैं ।[४] 'श्रीमोहन और उसकी बहू ने इस घर की प्रतिष्ठा को जो धूल में मिलाया था उससे वे आहत हुए थे लेकिन मुंह से कहना नहीं चाहते थे ।'[५] श्रीनाथ ठाकुर समय और परिस्थिति के अनुसार पुत्र के रुख को समझ कर अपना व्यवहार बदल लेते हैं । 'ऐसी स्थिति में उससे कुछ कहा जाये और यदि वह उलट कर जवाब दे बैठे ऐसा कि आपको तुच्छ कर दे तो क्या होगा ?'[६] इसी भय से श्रीनाथ-

---

१. प्रेमचन्द, गोदान , पृ० २१५
२. ,, ,, पृ० २१६
३. ,, ,, पृ० २१६
४. नरेश मेहता 'यह पथ बन्धु था' , पृ० १५६
५. ,, ,, पृ० १५६
६. ,, ,, पृ० १५७

ठाकुर सब समझते हुए घर की प्रत्येक गतिविधि से भिज्ञ होते हुए भी, अनभिज्ञ बने रहते हैं ।

श्रीनाथ ठाकुर परिवार के भविष्य की संभावनाओं को अन्तर्मन में दु:खी होते हुए भी पुरुषोचित भाव से सहजरूप में ग्रहण करते हैं । 'ठीक है, श्रीमोहन अलग हो जाये तो रोज़-रोज़ का झंझट मिटे,'[1] परन्तु पत्नी परिवार का विघटन सहन नहीं कर पाती हैं । परिवार पर अपने अधिकार के विश्वास से वह कहती हैं, 'नहीं, यह नहीं होगा । जब तक मैं बैठी हूं घर का बंटवारा नहीं हो सकता ।'[2] पति जहां अधिकार को छोड़ कर, सम्भाव्य की प्रबलता को समझ कर स्थिति से समझौता कर लेता है और शान्त तथा तटस्थ बना रहता है, वहीं पत्नी सम्भाव्य की सत्यता को झुठलाने का प्रयत्न करती हुई मर्माहत हो उद्विग्न हो जाती है । कुटुम्ब से अलग होते हुए पुत्र और बहू से श्रीमती ठाकुर को 'वितृष्णा' हो जाती है ।[3] सावित्री-श्रीमोहन का घर छोड़ना उन्हें निराश कर देता है । 'बन्द खिड़की के पीछे से मां और देवरानी आंसू बहाती अज्ञात मौन विदा दे रही थीं । एक बार अवश्य श्रीमोहन ने बन्द पैतृक घर की ओर देखा तथा बढ़ती गाड़ियों के साथ बढ़ गये ।'[4]

'आखिर बहू बेटा छीन ही ले गई ।'[5] टूटा हुआ मातृत्व बिखर जाता है । प्रौढ़ा-गृहिणी का गम्भीर व्यक्तित्व जिसने परिवार की प्रत्येक कठिनता को झेला है --'तीन तीन बेटे पर घर में एक भी नहीं' के साथ फूट पड़ता है ।[6]

## निष्कर्ष

हिन्दी-उपन्यासों में संयुक्त परिवारों के पारम्परिक रूप के चित्रण यद्यपि

---

१. नरेश मेहता 'यह पथ बन्धु था', पृ० १५८
२. ,, ,, पृ० १५८
३. ,, ,, पृ० १५८
४. ,, ,, पृ० १८७
५. ,, ,, पृ० १८७
६. ,, ,, पृ० १८७

बहुत कम प्राप्त होते हैं, परन्तु जो चित्रण हुए हैं वे संयुक्त परिवार को उसके सम्पूर्ण अंगों के साथ प्रतिबिम्बित करते हैं। दम्पती की संयुक्त परिवार में स्थिति का चित्रण करने के साथ ही समय के अनुसार बदलते हुए दम्पती के दृष्टिकोण का परिचय देने का प्रयत्न भी प्राप्त होता है। वृद्धदम्पती की पारिवारिकता के प्रति असीम ममता का चित्रण जितनी सफलता से हुआ है उतनी ही क्षमता के साथ युवक दम्पती की स्वनिष्ठा का चित्रण हुआ है। संयुक्त परिवार के विघटन का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण आधुनिक युग की अर्थमूलक व्यवस्था परिलक्षित होती है।

## २. सन्तान

विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पादन द्वारा परिवार और समाज की वृद्धि करना है। उन्मादित अवस्था के पश्चात पति-पत्नी का प्रेम जब शान्त धरातल पर उतरता है, प्रेम का आवेग शिथिल पड़ने लगता है, तब सन्तान का आविर्भाव पति-पत्नी के सम्बन्धों को नए तौर पर बांध देता है। पति-पत्नी अनुभव करते हैं कि उनके आवेश की अपेक्षा कुछ अधिक सुदृढ़ वस्तु उनके मध्य में आ चुकी है।

' पितृत्व प्राणिशास्त्रीय नींव के ऊपर जीवनव्यापी मनोवेगात्मक बन्धन और पेचीदे सांस्कृतिक गठ-बन्धन खड़े करने में सहायता देता है। जब तक प्राणिशास्त्रीय आवश्यकताओं के क्षीण होने का समय आता है तब तक सन्तान के प्रति अनुराग बढ़ चुका होता है और पितृ-वात्सल्य द्वारा हम संसार का ज्ञान और आन्तरिक अनुभव प्राप्त करते हैं। सन्तान माता-पिता के लिए आध्यात्मिक अवलम्ब का साधन होती है।'[१]

सन्तान की आवश्यकता का चरम रूप प्राचीन समाज में प्रचलित 'नियोग प्रथा' से सिद्ध होता है।[२] सन्तान मोक्ष का साधन मानी गई। सन्तान को सामाजिक दायित्वों की पूर्णता समझा गया। निस्सन्तान दम्पती के लिए सन्तान की पूर्ति

---

१. डा० राधाकृष्णन - धर्म और समाज, पृ० १७७ हिन्दी अनुवाद

२. मनुस्मृति - अध्याय ६, श्लोक सं० ५६

नियोग द्वारा सम्भव कर दी गई थी । समाज में 'नियोग' का सात्विक रूप स्थिर नहीं रह पाया, इसलिए नियोग-प्रथा वर्जित कर दी गई । पत्नी का अन्य पुरुष से सम्बन्ध स्थापित करना तथा उस सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तान अवैध सन्तान मानी गई । आधुनिक युग में अवैध सन्तान और विवादास्पद पितृत्व समाज की महत्व-पूर्ण समस्या है ।

हिन्दी-उपन्यासों में सन्तान और दम्पती को भिन्न-भिन्न स्थितियों में रख कर माता-पिता तथा सन्तान के सम्बन्धों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है ।

क. प्रथम भावी सन्तान के प्रति आकर्षण

प्रथम सन्तान के प्रति पति-पत्नी में माधुर्य, स्नेह और उत्कंठा से आप्लावित प्रतीक्षा होती है । दम्पती के प्रत्येक क्रियाकलाप तथा वार्तालाप में आगन्तुक सन्तान के लिए अपनत्व की भावना उमड़ती रहती है । कर्मभूमि उपन्यास का अमर पिता, पत्नी तथा परिवार की अवहेलना करके राष्ट्रहित में अपना जीवन देना चाहता है । सुखदा गर्भवती होती है । सुखदा चाहती है कि अमर गृहस्थी का भार सम्हाले । यद्यपि अमर और सुखदा के विचारों में मेल नहीं है, परन्तु सन्तान का आकर्षण दोनों को नितान्त सहज बना देता है । सन्तान की सुखद कल्पना में खोकर सुखदा और अमर मंत्रमुग्ध से समीप खिंच आते हैं ।

'सुखदा ने उसे पान का एक बीड़ा देते हुए कहा -'अम्मा कहती थीं बच्चे को लेकर मैं लखनऊ चली जाऊंगी ।' मैंने कहा -'अम्मा; तुम्हे बुरा लगे या भला मैं अपना बालक तुम्हें न दूंगी ।'
अमर ने उत्सुक होकर पूछा -'तो बिगड़ीं होंगी ?'
' नहीं जी बिगड़ने की क्या बात थी । हां, उन्हें बुरा जरूर लगा होगा, लेकिन मैं दिल्लगी में भी अपने सर्वस्व को नहीं छोड़ सकती ।......
अच्छा बताओ बालक किसको पड़ेगा, मुझे या तुम्हें ? मैं कहती हूं तुम्हें पड़ेगा
' मैं चाहता हूं तुम्हें पड़े '
'यह क्यों ? मैं तो चाहती हूं तुम्हें पड़े ।'

'तुम्हें पढ़ेगा तो मैं उसे ज्यादा चाहूँगा ।'[१]

उपर्युक्त कथोपकथन में अमर और सुखदा की सन्तान के प्रति प्रबल उत्सुकता और परस्पर अनुराग की मधुरता व्यक्त होती है ।

अपनी सन्तान और पितृत्व को साकार होते देख पुरुष का अनुराग गर्भवती पत्नी के शरीर में सौन्दर्य खोजने लगता है । 'दो एकान्त' का विवेक वानीरा को देखकर उसके अन्दर बढ़ने वाले अपने स्वरूप की कल्पना करके वानीरा पर मुग्ध होता जाता है --'वानीरा, शीशे में कभी देखा है कि तुम इन दिनों कितनी सुन्दर लगती हो ?'

'सुन्दर, ओ बाबा ! बड़ा अजीब सा लगता है ।'

'बड़ी ही मन्दाक्रान्ता छन्द सी लगती हो ।'

'ये सब हवाई बातें हैं ।'

' यही कठिनाई है वानीरा । पुरुष जिस भारी देह में कविता देखता है, नारी के पास उसका कोई अर्थ नहीं होता ।'[२]

ख. अवैध सम्बन्धों से उत्पन्न सन्तान

पितृत्व का सुख स्वयंभोग्य होता है । अवैध सम्बन्धों से उत्पन्न सन्तान के प्रति भी पिता के हृदय में ललक होती है । 'गोदान' में मातादीन सिलिया को घर से निकाल देता है । घर से निकाले जाने के पश्चात् सिलिया पुत्र को जन्म देती है । मातादीन का पितृ-हृदय विचलित हो जाता है । सिलिया से मातादीन का सम्बन्ध अवैध है परन्तु उसका पुत्र मातादीन का है । मातादीन एक पुत्र का पिता बन गया है । पुत्र का पिता बनने का भाव मातादीन के अन्दर गर्व उत्पन्न करता है । गर्व से उसकी छाती दो गज की हो जाती है । उस दिन वह और अधिक भंग पीता है । बालक के रूप की सुखद कल्पना

---

१. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ० ३३

२. नरेश मेहता 'दो एकान्त', पृ० ७१

में मातादीन डूब जाता है । वह सोचता है -'बालक उसकी तरह ही होगा ।'[१] अपने अंश की कल्पना मात्र समाजभीरु मातादीन को सिलिया के द्वार पर ले जाकर खड़ा कर देती है । उसने सम्पूर्ण प्राणों से बालक का रोना सुना ,जिसमें सारी दुनिया का संगीत,आनन्द और माधुर्य भरा हुआ था ।[२]

ग. अवैध सन्तान

अवैध पत्नी से उत्पन्न सन्तान के प्रति पति में ममता होती है, क्योंकि उसका पितृत्व शंकारहित होता है, परन्तु पत्नी के अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न अवैध सन्तान पति में मानसिक अवसाद तथा कुछ परिस्थितियों में उसमें शारीरिक कुचेष्टाओं को भी उत्पन्न कर देती है । सन्तान की वैधता में सन्देह होने पर पति-पत्नी तथा सन्तान की स्थिति परिवार में विद्रूप हो जाती है ।

उपन्यासकारों ने अवैध सन्तान के प्रति तथा पत्नी के प्रति पति के मन में उठने वाली ईर्ष्या, वितृष्णा आदि भावों का चित्रण किया है । पुरुष की असहनशीलता का चित्रण 'तितली' उपन्यास में प्राप्त होता है । मधुबन संघर्षों को आमुख स्वीकार करने वाला व्यक्ति है । तितली पर उसे अगाध विश्वास है । मधुबन जब सुनता है कि तितली ने पुत्र को जन्म दिया है, पितृत्व के गर्व से प्रसन्नता के अतिरेक में बहने लगता है । उसी क्षण दीर्घकाल से तितली के पास अपनी अनुपस्थिति सोच कर उसका पुरुष हृदय तितली के चरित्र पर और सन्तान की वैधता पर सन्देह कर दु:खी हो उठता है ।[३] कथाकार का मुख्य उद्देश्य आदर्श की स्थापना है इसलिए वह यथार्थ की कटुता को छू-कर हट जाता है और क्षणिक आवेश के पश्चात् मधुबन को पुन: साधारण बनाकर पुलकित वातावरण में खड़ा कर देता है । क्षणिक आवेश ही पुरुष के परम्परागत पिता एवं पति के अधिकार भाव को स्पष्ट कर जाता है ।

---

१. प्रेमचन्द गोदान, पृ० ३२६

२. ,, ,, पृ० ३२७

३. जयशंकर प्रसाद ,'तितली' , पृ० २६०

'दो एकान्त' उपन्यास के विवेक और वानीरा के दाम्पत्य-जीवन में पुलक है, उत्साह है, परन्तु जैसे ही विवेक के समक्ष स्पष्ट होता है कि वानीरा मैजर आनन्द के बच्चे की माँ बनने वाली है उसका शरीर जड़ हो जाता है । 'विवेक के लिए अब विशेष कुछ भी देखने-सुनने के लिए शेष नहीं रह गया था । देखा तो साधारण ही था पर जो सुना उसके कारण लगा कि किसी ने उबलते हुए लावा में सदा के लिए फेंक दिया है, जहाँ अब कोई निष्कृति नहीं ।'[१]

अवैध सन्तान के कारण दम्पती के सम्बन्धों में उत्पन्न होने वाला अन्तराल 'सदा के लिए फेंक दिया' तथा 'अब कोई निष्कृति नहीं' । शब्दों से अभिव्यक्त हो जाता है ।

'झूठा सच' में पत्नी के अवैध सम्बन्ध और अवैध सन्तान के प्रति पिता के हृदय में उत्पन्न होने वाली घृणा का स्पष्ट चित्रण किया गया है । शीलो रूपरतन से विवाह के पहले से प्रेम करती है । विवाह के पश्चात् भी शीलो रूपरतन से अपने सम्बन्ध समाप्त नहीं करती है । मोहनलाल शीलो के गुप्त-प्रेम-व्यापार से क्षुब्ध हो जाता है । पुत्र का रूपरतन से सूरत शकल में मिलना तथा शीलो का रूपरतन से सम्बन्ध मोहनलाल के हृदय में अपनी सन्तान की वैधता के प्रति सन्देह उत्पन्न करता है । सम्भवतया मोहनलाल शीलो को रूपरतन की प्रेमिका होने के स्तर तक क्षमा भी कर देता परन्तु रूपरतन का उसके पुत्र का पिता बनना वह स्वीकार नहीं कर पाता है । मोहनलाल का दाम्पत्य-सुख समाप्त हो जाता है और वह प्रत्येक प्रयत्न से पुत्र के पितृत्व की सत्यता जानना चाहता है । शीलो से कसम खाने को कहता है— 'मेरे सिर पर हाथ रख कर कसम खा सती न होऊं तो रंडी हो जाऊं ।'[२] मोहनलाल के अत्याचारों से पीड़ित होकर शीलो अन्त में कह देती है —'हां लड़का उसीका है । बेशक मुझे मार डाल, इसे मार डाल[३] ।' सच्चाई सुनकर मोहनलाल का शेष धैर्य भी समाप्त हो जाता है । अभी तक वह जिस बात की सत्यता जानने के लिए उत्सुक

---

१. नरेश मेहता 'दो एकान्त', पृ० १६५

२. यशपाल 'झूठासच' भाग २, पृ० ३६१

३. ,, ,, पृ० ३६२

था, परन्तु अन्दर ही अन्दर नहीं इच्छुक था कि उसकी शीला [illegible] हो, उसे जानवर मोहनलाल का बिसरा-जीवन सिमट नहीं पाता और वह शीलो को क्षमा भी नहीं कर पाता है। शीलो से मोहनलाल-बाप के पास चली जा[illegible] के साथ ही सम्बन्ध तोड़ लेता है जो भारतीय परिवार की प्रवृत्तियों का परिचायक भी है ।[१]

'सूरज किरन की छांव' उपन्यास में राजेन्द्र अवस्थी ने अवैध सन्तान की समस्या को आदिवासियों और नागरिकों के मेलजोल से उत्पन्न होने वाली सभ्यता के परिपार्श्व में उठाया है । निम्नस्तरीय जीवन में सन्तानवती पत्नी से विवाह करना अस्वाभाविक नहीं है । जोसेफ बंजारी की स्थिति से पूर्णरूपेण परिचित होकर विवाह करता है । विलियम का बंजारी के साथ किया गया गुप्त सम्बन्ध , बंजारी का गर्भवती होना तथा बंजारी से विवाह के लिए विलियम की अस्वीकृति आदि से भी वह परिचित है ।[२] फिर भी बंजारी के अवैध सम्बन्ध के कारण उसके उदर में पनपती हुई सन्तान के प्रति उसमें वात्सल्य भाव नहीं उभरता है । बंजारी की साधारण हंसी मज़ाक की बातों का भी वह व्यंग्यों से उत्तर देता है । 'स्यार कहती है निगोड़ी अपने मटका जैसे पेट से पूछ । कहे तो विलियम को बुला दूं । सपने में आता होगा[३]।'

अवैध सन्तान के प्रति पिता के साथ ही मां का ममत्व भी समाप्त होने लगता है । सन्तान के कारण प्रति-दिन पति-पत्नी के मध्य कलह होती है । जोसेफ को 'मुन्नी' को खिलाता हुआ देख बंजारी सहज पत्नी-भाव से पूछती है —'क्या नाप रहे हो ? कितनी बड़ी है , यही न ?' जोसेफ झल्ला गया । उसने मुन्नी को गोद से उतार कर नीचे डाल दिया, बोला,'देख रहा हूं कि इसके हाथ पैर विलियम से कितने छोटे हैं ।[४]

---

१ यशपाल, झूठा सच, भाग २, पृ० ३६३
२. राजेन्द्र अवस्थी, 'तृषित', सूरज किरन की छांव, पृ० २२
३. ,, ,, ,, पृ० ३३
४. ,, ,, पृ० ११२
~~४. ,, ,, पृ० ११३~~

सन्तान के प्रति बलवती होती हुई पति की घृणा को पत्नी समझती है। पति के कारण माँ के हृदय में पुत्री के प्रति परिवर्तित होते हुए ममत्व को लेखक ने स्पष्टत: चित्रित किया है -'मैंने मुन्नी को ज़मीन से उठा लिया। उसके मुंह की ओर देखती रही। मुझे लगा कि जैसे मैं विलियम को गोद में लिए बैठी हूं। अपने ही दुश्मन को खिला रही हूं। एक हल्का सा चक्कर आया। ऐसा लगा जैसे मैं जमीन में समा जाऊंगी।'[१]

घ. रोमांस और सन्तान

यों सन्तान पति-पत्नी के टूटते-सम्बन्धों को जोड़ने का माध्यम है परन्तु किन्हीं विशिष्ट क्षणों में सन्तान सम्बन्धों की गुरुता को हल्का तथा बिखरने वाला बना देती हैं।

सन्तान के कारण माता-पिता के सम्बन्धों में व्यवधान उत्पन्न होता है अथवा बहुसन्तान उनके, विशेष कर पत्नी के विकास-मार्ग ~~मार्ग~~ में बाधा होती है, इस तथ्य पर स्वतंत्रता से पूर्व कथाकारों ने विशेष ध्यान नहीं दिया। इसका एक कारण बहुपत्नीत्व-प्रथा भी था। दूसरा कारण था कि पत्नी सन्तानोत्पत्ति द्वारा वंश-वृद्धि का साधन मात्र मानी जाती थी। आधुनिकता तथा एक विवाह की बाध्यता ने पति-पत्नी के जीवन तथा विचारों में जो अन्तर उत्पन्न किया है वह 'झूठा सच' उपन्यास में जयदेव पुरी तथा कनक के दाम्पत्य-सम्बन्धों से स्पष्ट होता है।

एक पुत्री हो जाने पर कनक का व्यक्तित्व तीन भागों में बंट जाता है, गृहस्थी, प्रेस तथा पुत्री। अत्यधिक व्यस्त कनक के लिये अनियमित सन्तानोत्पादन अवांछनीय हो जाता है। पुरी कनक से अपने अधिकार की मांग करता है।[२] सन्तान-नियोजन के विचार से कनक पुरी के आग्रह का विरोध करती है। कनक द्वारा दाम्पत्य-सम्बन्धों का विरोध पुरी और कनक के मध्य तनाव की स्थिति उत्पन्न कर देता है[३]।

---

१. राजेन्द्र अवस्थी 'सूरज किरन की छांव', पृ० ११३

२. यशपाल 'झूठा सच', पृ० ५३४

३. ,, पृ० ५३४

'काले फूल का पौदा' उपन्यास में अति आधुनिक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है । पिता को सन्तान से लगाव है परन्तु किन्हीं विशेष क्षणों में उसे सन्तान से ऊब होने लगती है । स्वच्छन्दतावादी विचारधारा से प्रभावित युवक-वर्ग अपने भोग-विलास के मध्य परम्परा से आने वाली बाधाओं को तोड़ना चाहता है । पत्नी के साथ सन्तान का रहना भी पति को सहन नहीं होता है । क्योंकि सन्तान पति-पत्नी की क्रियाओं को बाँध कर रखती है । नियन्त्रण परम्परावादी होता है । अतः युवक-वर्ग उसे सहन नहीं कर पाता है । देवेन स्वच्छन्द भोग और स्वतंत्र विचारधारा से प्रभावित युवक है । गीता पत्नीत्व को माँ बनने का साधन मानती है ।[1] माँ बनने का साधन से अभिप्राय है कि पत्नी की पूर्णता प्रेयसी रूप में नहीं माता रूप में है । परन्तु देवेन अपने पुत्र सागर को पत्नी और अपने मध्य हरक्षण उपस्थित देख कर ऊब जाता है । देवेन यह स्वीकार नहीं करना चाहता है कि पुरुष पिता बनकर सन्तान के कल्याण में अपने आपको खपा कर ही पूर्ण होता है । सन्तान के साथ वह अपने व्यक्तिगत व्यक्तित्व को नहीं भूलता है इसलिए उसे सन्तान एक व्यवधान, एक बोझ लगती है विशेषकर उन क्षणों में, जब वह गीता के समीप पहुंचना चाहता है ।[2]

ह० सन्तानहीन दम्पति

सन्तानहीनता दाम्पत्य-जीवन के लिए अभिशाप है । सन्तानहीनता के कारण सम्पन्न होने वाले बहु विवाह, तदाश्रित गृहकलह, विक्षोभ और जीवन से विरक्ति का सजीव चित्रण प्रेमचन्द ने 'काया कल्प' तथा 'सेवा सदन' उपन्यासों में किया है । राजा विशाल सिंह की विलासिता तथा बहु विवाह की कथा एक ओर यदि उनकी कामुक-वृत्ति का चित्रण करती है, तो दूसरी तरफ उनके सन्तान-हीन अतृप्त पैतृक-भाव की करुणा का चित्र भी प्रस्तुत करती है । वृद्धावस्था में अपनी खोई हुई पुत्री को प्राप्त कर विशाल सिंह उन्मादित हो जाते हैं । पुत्र प्राप्त कर स्वयं रुग्ण मनोरमा में जीवन का संचार हो जाता है ।[3] कथाकार विशाल सिंह

---

१. लक्ष्मीनारायण लाल, 'काले फूल का पौधा', पृ० ४७

२. ,, ,, पृ० १९१

३. प्रेमचन्द 'कायाकल्प', पृ० २२५,२२६

के उन्मादित व्यवहार का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक धरातल पर करते हुए कहता है 'आज उनकी चिरसंचित कामना पूरी हुई और इस तरह पूरी हुई, जिसकी उन्हें कभी आशा न थी । यह ईश्वर की दया नहीं तो और क्या है । पुत्र-रत्न के सामने संसार की सम्पदा क्या चीज़ है ? पुत्ररत्न न हो तो संसार की सम्पदा का मूल्य ही क्या है ? जीवन की सार्थकता ही क्या है ? कर्म का उद्देश्य ही क्या है ? पुत्र ही आकांक्षाओं का आधार है, प्रेम का बन्धन है और जीवन का सर्वस्व है ।'[१]

उपर्युक्त विश्लेषण के द्वारा प्रेमचन्द ने साधारण मानव प्रकृति का धरातलीय स्तर पर विवेचन प्रस्तुत किया है । प्रेमचन्द के पात्र अत्यन्त साधारण मनुष्य हैं जो सुख में सुखी और दु:ख में दु:खी होते हैं । राजा विशाल सिंह भी उन असंख्य साधारण लोगों में हैं जो निस्सन्तान होने पर अपने अतृप्त जीवन की तृप्ति विलास में ढूंढ़ते हैं, परन्तु वास्तविकता सन्तान प्राप्ति के पश्चात् प्रकट होती है जब व्यक्ति संसार को सहानुभूति और वात्सल्यमय त्याग की दृष्टि से देखने लगता है । शंखधर का राज्य छोड़कर चले जाना, प्रियरानी मनोरमा पर सन्देह करना, तथा वृद्धावस्था में सातवां विवाह रचना उनकी विक्षिप्तावस्था का प्रमाण है । साधारण व्यक्ति सुखपाकर दयालु और परोपकारी हो जाता है परन्तु विपत्ति में वही असहिष्णु हो जाता है । राजा साहब के अन्य विवाह सन्तान की लालसा तथा विलासिता के परिचायक हैं, परन्तु सातवां विवाह ,वृद्धावस्था में प्राप्त सन्तान के छिन जाने से, ईश्वर और उसकी प्रकृति से प्रतिशोध लेने की भावना से प्रेरित विक्षिप्तावस्था का परिचायक है ।[२]

'सेवा सदन' में सुभद्रा तथा वकील साहब पद्म सिंह शर्मा के सन्तानहीन दाम्पत्य-जीवन की एकरूपता तथा उससे उत्पन्न होने वाले अस्थाई तनावों का चित्रण हुआ है । सन्तानहीन सुभद्रा गृहिणी होते हुए भी गृहस्वामिनी का पूरा अधिकार अनुभव नहीं कर पाती है । 'गृहस्थी की छोटी-छोटी बातों पर जो अनुचित होने पर भी पति को ग्राह्य हो जाया करती हैं, उसे सदैव झुकना पड़ता था ।'[३] सदन वकील

---

१. प्रेमचन्द 'कायाकल्प', पृ० २२८

२. ,, पृ० ३२०,३२१

३. ,, सेवासदन, पृ० २६३

साहब का भतीजा है । निस्सन्तान दम्पती सदन पर अपना प्रेम उड़ेल देते हैं । कथाकार यथार्थ की कटुता को नहीं भूल पाया है । पराई सन्तान के प्रति परायापन होता ही है इसलिये यत्न से पालन-पोषण करने के पश्चात् भी असीम ममत्व का भाव नहीं उमड़ता है । प्रेमचन्द स्त्री के मनोविज्ञान को खोलते हुए कहते हैं –'स्त्री अपने पति के बर्छी के घाव सह सकती है, परन्तु जब सुभद्रा को सदन के पीछे तिरस्कृत होना पड़ा तो सदन सुभद्रा की आँखों में काँटे की तरह गड़ने लगता है ।'[1] अन्त में उसका आत्मसम्मान प्रबल हो जाता है और वकील साहब के रूठ जाने पर उसने मनावन भी नहीं किया ।'[2]

निस्सन्तान दम्पति के जीवन में तनाव का चित्रण जितनी कुशलता से 'सेवासदन' में हुआ है, प्रेमचन्द ने उनके जीवन की सरसता को भी उतनी ही गहराई से पकड़ा है । सुभद्रा और पद्मसिंह का तनाव 'पान के एक बीड़े' से समाप्त हो जाता है । पान का एक बीड़ा दोनों के मध्य 'सन्धिपत्र' बनता है ।[3] पद्मसिंह अनुभव करते हैं कि निस्सन्तान होते हुए भी पत्नी कितनी सुखदायिनी हो सकती है । 'स्त्री सन्तान-हीन होकर भी पुरुष के लिए शान्ति, आनन्द का एक अविरल स्रोत है । सुभद्रा के प्रति उनके हृदय में एक नया प्रेम जागृत हो गया ।'[4]

'पथ का पाप' उपन्यास में रांगेय राघव ने निस्सन्तान दम्पती के दाम्पत्य-जीवन और पुत्र-प्राप्ति की के लिए किए गए कुत्सित प्रयत्नों का चित्रण किया है । मातृत्व के अधिकार से ही स्त्री गृहस्वामिनी बन पाती है । सन्तानहीन सावित्री अपनी सन्तानहीनता से चिन्तित रहती है । किशनलाल के मुख से अपने लिये 'बाँझ' शब्द सुनकर वह विक्षोभ से भर जाती है । नाइन के द्वारा कही गई बात सावित्री

---

१. प्रेमचन्द, सेवा सदन, पृ० २६४
२. ,, पृ० २६४
३. ,, पृ० ७७
४. ,, पृ० २६६

के विचारों को प्रभावित करती है । जाविनी सोचती है -"मर्द का दोस कौन देखता है ?" और "एक अज्ञात सी कल्पना मन में दौड़ गई । जाविनी सिहर गई ।[१]

जाविनी का अन्तर्मन उसी "अज्ञात कल्पना" को मूर्त रूप देने के लिए प्रेरित करता है। सन्तान प्राप्त करने की लालसा में वह रूपरतन, जो पुत्रवान है, के समक्ष अपने आपको समर्पित कर देती है ।[२]

च. सौतेली सन्तान

सौतेली सन्तान भी पति-पत्नी के जीवन की एक समस्या बन जाती है । पति/पत्नी के जीवित रहते अथवा मरने के पश्चात् दूसरा विवाह कर लेता है । नई पत्नी जो प्राकृतिक रूप से माता बनने के पहले ही माता का स्थान ग्रहण कर लेती है, दायित्वों के नीचे दब कर ऊबने लगती है । सौतेली माता का सौतेली सन्तान के साथ व्यवहार प्रारम्भ से ही परायेपन के आभास को लेकर चलता है । पिता की स्थिति परिवार में और विषम हो जाती है । पूर्व सन्तान तथा नई पत्नी के मध्य समन्वय स्थापित करने के प्रयत्न में उसका अपना व्यक्तित्व विभक्त होने लगता है ।

परम्परा यह आशा रखती है कि सौतेली सन्तान और माता में परस्पर द्वेष पूर्ण व्यवहार रहे । परिपाटी से विरुद्ध होने वाले आचरण सन्देह का कारण बन जाते हैं । "निर्मला" उपन्यास की निर्मला का पुत्र मनसाराम से निश्छल प्रेम-व्यवहार भी पति तोताराम तथा उनकी बहन की आंखों में सन्देह उत्पन्न कर देता है ।[३] निर्मला की स्थिति अपनी ही गृहस्थी में गम्भीर हो जाती है । मनसाराम से स्नेह न रखने का अभिप्राय है कि वह सौतेलेपन के कारण मनसाराम से द्वेष करती है और स्नेह रखने का अर्थ है पति की दृष्टि में चरित्रहीन बन जाना ।[४] मनसाराम जब अपनी माता के प्रति अपने पवित्र प्रेम के लिए पिता की आंखों में ईर्ष्या की रेखा पाता है तो उसकी आत्मा झुलस जाती है ।[५] दु:ख और अपमान से भरी उसकी आत्मा शरीर का

---

१. रांगेय राघव, पथ का पाप, पृ० ७३

२. ,, ,, पृ० १२८

३. प्रेमचन्द, निर्मला -- पृ० ७७,७८

४. प्रेमचन्द "निर्मला", पृ० ८०,८२,८६

५. ,, ,, १०२,१०४

मोह त्याग देती है। अपने अन्तिम समय में मनसाराम निर्मला की गोद में सर रख कर एक ही अभिलाषा प्रकट करता है कि अगले जन्म में वह निर्मला के गर्भ से उत्पन्न हो।[१] निर्मला और मनसाराम के पवित्र प्रेम को परम्परावादी तोताराम नहीं समझ सकता है। तोताराम की ईर्ष्या अपने ही पुत्र मनसा को आत्मोत्सर्ग करने के लिए बाध्य कर देती है।

उग्र के 'जीजीजी' उपन्यास में सौतेली माँ की ईर्ष्या अत्यता के कटु स्तर पर वर्णित हुई है। 'जीजी जी' में सौतेलेपन का रूढ़िवादी रूप चित्रित है जिसमें सन्तान के लिये सौतेली माता के हृदय में किंचित भी स्नेह का अभाव रहता है।

किशोरी मंगलाप्रसाद की दूसरी पत्नी है। प्रभा मंगलाप्रसाद की पहली पत्नी की सन्तान है। प्रभा मृदु तथा गम्भीर स्वभाव की है। माता के प्रति भी प्रभा में कहीं कटुता नहीं है फिर भी किशोरी प्रभा के साथ अन्याय-पूर्ण व्यवहार करती है। किशोरी से प्रभावित होकर मंगलाप्रसाद भी प्रभा के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करने लगते हैं। किशोरी की इच्छानुसार ही वह प्रभा का अध्ययन कार्य समाप्त कर देते हैं। प्रभा के लिए किशोरी द्वारा ढूंढ़ा गया अयोग्य तथा घृणित बीमारी से युक्त वर भी मंगलाप्रसाद स्वीकार कर लेते हैं। उग्र ने विमाता के घर में आ जाने से पुत्री की स्थिति और दुर्दशा का चित्रण तो किया ही है साथ ही पुरुष की स्त्रैण वृत्ति पर भी व्यंग्य कसा है। दूसरे विवाह के पश्चात् मंगलाप्रसाद में दृढ़ता समाप्त हो जाती है। यह जानते हुए कि प्रभा के साथ अन्याय हो रहा है वह किशोरी का विरोध नहीं कर पाते हैं। पत्नी का सुख मंगलाप्रसाद के लिए प्रमुख हो जाता है सन्तान का सुख गौण। पत्नी के सुख के साथ ही उनके अपने सुख की स्वार्थी भावना भी निहित है।[२] किशोरी प्रभा के साथ दुर्व्यवहार करती है, क्रोधावेश में मारती भी है।[३] किशोरी की प्रताड़ना सन्तान के कल्याण की भावना

---

१. प्रेमचन्द 'निर्मला', पृ० १२३,१२४

२. उग्र - 'जीजी जी' पृ० ३०,३१

३. ,, पृ० ३७

से प्रेरित प्रताड़ना न होकर प्रतिद्वन्द्वी को परास्त करने की वृत्ति पर आधारित है। प्रभा किशोरी के लिए सौत की पुत्री मात्र न होकर सौत की प्रतिनिधि भी है, जिससे डाह और ईर्ष्या स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक भी है।[1] विमाता की ईर्ष्या का इतना व्यापकत्व लेखक ने दिखाया है कि वह प्रभा से सहानुभूति रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझने लगती है, भले ही वह अपना सगा पुत्र क्यों न हो।[2]

'अमृत और विष' उपन्यास में सौतेली सन्तान तथा माता-पिता की समस्या को रूढ़ दृष्टिकोण से हटाकर भिन्न परिवेश में आंकने का प्रयत्न किया गया है। रानी की सौतेली मां सुमित्रा रानी की ही समवयस्क है। वह हृदय से चाहती है कि बाल-विधवा रानी का पुनर्विवाह हो जाये। रानी का वैधव्य देख कर उसे अपना सुहाग अच्छा नहीं लगता है। पिता रघू सिंह सोचते हैं कि वे स्वयं यदि मर गए तो रानी कमा कर उनकी छोड़ी हुई गृहस्थी को पार लगा देगी।[3] सुमित्रा पति की स्वार्थी प्रवृत्ति की तुष्टि के लिए अपनी ही आयु की अपनी सौतेली पुत्री के जीवन की आहुति होते नहीं देख सकती है। रानी के पुनर्विवाह के लिए रघू सिंह के विरोध करने पर सुमित्रा रघुसिंह से पत्नी का सम्बन्ध न रखने की कसम खा लेती है।[4]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि रानी के प्रति उसकी सौतेली मां सुमित्रा में सहानुभूति और प्रेम है, भले ही वह समवयस्क होने के नाते मातृत्व के अधिकार क्षेत्र में नहीं पहुंच पाया है और सख्य-भाव तक ही सीमित रह गया है।

'विजय' उपन्यास में प्रतापनारायन श्रीवास्तव ने ऐसे परिवार का आदर्श रूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जिसमें पति-पत्नी के अतिरिक्त एक सौतेली सन्तान भी

---

१. उग्र 'जीजी जी', पृ० ६६

२. ,, पृ० २६

३. अमृतलाल नागर, 'अमृत और विष', पृ० ४३३

४. ,, ,, पृ० ४३४

स्थान रखती है । बाबू राधारमण की पहली पत्नी से एक पुत्री मनोरमा है । उनके दूसरे विवाह की नवपरिणिता पत्नी राजेश्वरी जब डेढ़ साल की मनोरमा को हृदय से लगाती है तो उसका मातृत्व अपनी सम्पूर्ण गरिमा के साथ प्रस्फुटित हो जाता है । मन्नी को हृदय से लगा कर वह सम्पूर्ण इच्छा से भगवान से प्रार्थना करती है -- "मैं ही इसकी मां हूं । भगवान ऐसा करना, जिससे मेरे लड़का लड़की न हो । मैं इस बालिका को कभी न खोऊं[१]।" सौतेली सन्तान और परिवार के कल्याण के लिए स्वयं को मातृत्व के प्राकृतिक अधिकार से वंचित रखने की इच्छा पत्नी के त्यागशील हृदय की सम्पूर्ण विशालता को प्रतिबिम्बित करती है ।

छ. दम्पती के अनैतिक तथा असंयमित जीवन का सन्तान के व्यक्तित्व पर प्रभाव --

दाम्पत्य-जीवन के बाहर पति-पत्नी के अनैतिक सम्बन्ध सन्तान को किस सीमा तक प्रभावित करते हैं इसका मनोवैज्ञानिक चित्रण गंगाप्रसाद विमल ने 'अपने से अलग' उपन्यास में तथा आचार्य चतुरसेन ने 'पत्थर युग के दो बुत' उपन्यास में किया है ।

'अपने से अलग' उपन्यास में पिता के परिवार से दूर रहने पर केवल माता की छाया में विकसित होने वाली सन्तानों के व्यक्तित्व का अधूरापन अभिव्यक्त होता है । पिता का कभी-कभी आना, माता और पिता का उत्तेजनापूर्ण व्यवहार, कलह, पिता के व्यक्तिगत रहस्य को जानकर माता का मौन रह जाना, बच्चों में पिता के रहस्य को जानने की जिज्ञासा आदि सन्तानों के मन:चरित्र को प्रभावित करते हैं । बच्चों का मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है/माता का सम्पूर्ण स्नेह प्राप्त करने के पश्चात् भी माता का अपने जीवन के प्रति उदासीन-भाव बच्चों के जीवन को 'बदतर' बना देता है ।[२] परिवार, जीवन और संघर्ष से पलायन की प्रवृत्ति के मध्य बच्चों का व्यक्तित्व विकसित होता है । प्रत्येक सन्तान के हृदय में पिता के अवैध सम्बन्धों का

---

१. प्रतापनारायण श्रीवास्तव 'विजय', पृ० १६

२. गंगाप्रसाद विमल 'अपने से अलग', पृ० १०८

रहस्य कुण्ठा की ग्रन्थि बनाता है । सन्तान का एक मात्र लक्ष्य, अपना उत्थान करना नहीं वरन् अपने से अलग रहने वाले पिता के उस अवैध सम्बन्ध का पता लगाना रहता है जिसने उनकी माँ के जीवन को उदासी से भर दिया है । थकान और घुटी हुई ज़िन्दगी में पलने वाली सन्तान अपने जीवन से ऊब जाती है । 'खीफ और अतृप्ति जैसा अनुभव देती है । यह ऊब , और बहुत जल्दी थका देती है ।[१] उदासी के वातावरण में पलकर माता-पिता के सन्तुलित प्रेम से दूर रहकर सन्तान का जीवन असंयमित हो जाता है जिसका परिणाम व्यक्तित्व के पतनोन्मुखी विकास में परिलक्षित होता है ।

माता-पिता के चारित्रिक पतन का सन्तान के मानसिक जगत पर पड़ने वाला प्रभाव सन्तान के अन्दर माता-पिता के प्रति घृणा की भी सृष्टि करता है । 'पत्थरयुग के दो बुत' उपन्यास की लीलावती, 'माया' और वर्मा के अवैध सम्बन्ध को देखकर क्षुभित हो जाती है । माया की एकमात्र सन्तान होने के कारण वर्मा का आना लीलावती के लिए असह्य हो जाता है क्योंकि वह माता के प्रेम को अपने अतिरिक्त अन्य किसी पर शेष होते नहीं देख सकती । दूसरे वयस्क होती हुई लीलावती को वर्मा के प्रति माया के आकर्षण में अनैतिकता का आभास मिलता है । वर्मा के घर आने का लीलावती विरोध करती है ।[२] माया वर्मा का पक्ष लेकर लीलावती की प्रताड़ना करती है तो माया के विरुद्ध लीलावती का विद्रोह और प्रबल हो जाता है । माया अपनी स्वतंत्रता में व्यवधान देखकर लीलावती को हास्टल भेज देना चाहती है परन्तु लीलावती विरोध करती है -- वे चाहती हैं मैं हास्टल में जाकर रहूँ , और फिर घर में उन्हीं का राज हो जाये । क्यों रहूँ हास्टल में भला ?[३] माया द्वारा किए गए अपने अपमान का प्रतिशोध लीलावती राय से माया की शिकायत करके लेने का प्रयत्न करती है ।

---

१. गंगाप्रसाद विमल 'अपने से अलग' , पृ० १०६
२. आचार्य चतुरसेन 'पत्थर युग के दो बुत' , पृ० ४८
३. ,, ,, पृ० ४८

माया के वर्मा से विवाह कर लेने के पश्चात् जब लीलावती राय और रेखा के घनिष्ट होते सम्बन्धों को देखती है तो उसका पूर्ण वयस्क मस्तिष्क माता की परवशता तथा पिता के पतित चरित्र की सत्यता को पकड़ लेता है । उसके हृदय में रेखा का अपमान करने की भावना जागृत होती है, क्योंकि वह अनुभव करती है कि रेखा माया का स्थान ले रही है जो अनैतिक है साथ ही उसके अन्दर यह भाव भी उत्पन्न होता है कि रेखा माया की प्रतिद्वन्द्वी है यदि लीलावती रेखा का अपमान करेगी तो माया को प्रसन्नता होगी ।[१] लीलावती ने मां का विरोध जितनी प्रबलता से किया था उतने ही वेग से वह पिता का विरोध नहीं कर पाती क्योंकि मां के ममत्व की स्थिरता में सन्तान को विश्वास रहता है, पिता के वात्सल्य को वह मां की ममता की भांति निश्चिन्त होकर विश्वासपूर्वक स्वीकार नहीं कर पाती है । परिणामतः मन ही मन लीलावती घुटती है । लीलावती का माता-पिता द्वारा उपेक्षित मन अपने घर में परायेपन का अनुभव करने लगता है । माता-पिता के स्नेह से वंचित और निराश लीलावती परिवार से अलग हटने में ही अपने मन की शांति ढूंढ़ने का प्रयत्न करती है । वह स्वयं सोचती है कि कभी मां के चाहने पर उसने हास्टल में रहना अस्वीकार कर दिया था परन्तु अब पिता के पतित चरित्र को देख कर वह सोचती है कि हास्टल में जाकर रहे ।[२]

'महाकाल' उपन्यास में अमृतलाल नागर ने चरित्रवान दम्पति के स्वाभाविक परन्तु असंयमित सहवास का प्रभाव उनके बच्चों के विकसित होते हुए मस्तिष्क पर दिखाया है । माता-पिता के स्वाभाविक सहवास को सन्तान अपने-अपने ढंग पर लेती है । माता-पिता के सम्बन्धों के प्रति कुत्सित जिज्ञासा सन्तान को पतन की ओर अग्रसर कर देती है । 'शिबू' बाल्यावस्था से अपने माता-पिता के असंयमित वासना-प्रधान-जीवन को देखता आ रहा है परिणामतः माता-पिता के प्रति श्रद्धा के साथ-साथ उसके हृदय में घृणा भी संचित हो जाती है । 'मां और बाप दोनों ही अपनी कमजोरियों से हार कर अपने बच्चों के शत्रु बन गए थे ।[३] ' एक आवेशजन्य स्थिति

---

१. आचार्य चतुरसेन , 'पत्थर युग के दो बुत, पृ० १२०

२. ,, ,, पृ० १२०

३. अमृतलाल नागर 'महाकाल' , पृ० २२०

में अपनी पत्नी से 'बलात्कार' करते समय, मां द्वारा विरोध किये जाने पर, शिबू में जीवन के अनुभवों की कटुता उभड़ आती है। मां का अपमान करने के लिए शिबू धृष्टता-पूर्वक कहता है --' यह बाबा को सिखाओ जाकर। उनका वक़्त है शरम करने का[1]।' शिबू के इस उत्तर से अपनी चिरसंचित आशंका के साथ साक्षात्कार कर मां का मन अन्दर ही अन्दर लज्जा और पीड़ा लिए हुए ज़मीन में तेज़ी से छुरी की तरह गड़ गया[2]।'

माता-पिता के मध्य दिन-रात होने वाली कलह का प्रभाव बालक के अविकसित मस्तिष्क पर किस प्रकार पड़ता है इसका तीखा चित्रण कृष्णा बलदेव वैद के उपन्यास' उसका बचपन' में हुआ है। माता-पिता में होने वाली मारपीट और वाक्-युद्ध के कारण बीरू को घर एक'पागलखाना' लगने लगता है।[3] परियों की कहानी सुनने की आयु में उसे सुनने को मिलती है, दु:खभरी, थकान उत्पन्न करने वाली मां की आत्मकथा।[4] घर में प्राप्त विष को वह अपने अन्दर समोता रहता है फिर कसमसाता हुआ बाहर चला जाता है और नाली के किनारे बैठकर न जाने कितनी देर धीरे-धीरे रोता है।[5] प्रतिदिन नियमित रूप से माता-पिता द्वारा प्रयुक्त होने वाली गालियां उसके व्यक्तित्व का एक अंग बन जाती है और जब वह ऊंघते-ऊंघते लुढ़क जाता है तो अचानक उसके मुंह से गाली निकल जाती है।[6] माता से बीरू को पहले से ही बहुत डर लगता है।[7] जब बीरू पिता द्वारा अपने लिए प्रयुक्त गाली ' चल.... मादर .... सुनता है तो बाबा के साथ भी उसकी सहानुभूति समाप्त हो जाती है।[8] परि-

---

१. अमृतलाल नागर'महाकाल' , पृ० २२०

२. ,, ,, ,,

३. कृष्णा बलदेव वैद'उसका बचपन', पृ० ३५

४. ,, ,, पृ० ४५,४६

५. ,, ,, पृ० २१

६. ,, ,, पृ० २२

७. ,, ,, पृ० ६७

८. ,, ,, पृ० ५०

वार के जीवन से बीह को वितृष्णा होने लगती है ।

## ज. माता-पिता का किसी विशेष सन्तान के प्रति आकर्षण

'दीवार और आंगन' में अमरकान्त ने सन्तान और दम्पति की विशेष स्थिति का चित्रण किया है जहाँ पति-पत्नी के मध्य कलह का कारण पति में किसी विशेष सन्तान के प्रति लगाव तथा अन्य सन्तानों के प्रति उपेक्षाभाव हो ।

'मुंशी मुन्नीलाल स्वयं सुन्दर न होते हुए भी सौन्दर्य के प्रेमी थे । शादी के पूर्व उनकी बहुत बड़ी तमन्ना थी कि उनकी पत्नी पढ़ी लिखी और खूबसूरत मिले पर वह आकांक्षा पूरी न हुई[१]।' 'उनकी दूसरी बड़ी तमन्ना थी कि उनके बच्चे सुन्दर हों[२]।' पहली सन्तान शंकर से उन्हें घोर निराशा हुई । शंकर काले वर्ण का था । परिणामत: मुंशी जी को पत्नी के साथ ही शंकर से भी घृणा हो गई । दूसरी सन्तान दीप्ति' खूब गोरी और सुन्दर , जैसे चांद थी[३]। पुत्री के स्नेह में मुंशीजी अपने सौन्दर्य-प्रेम की लालसा को तृप्त करने लगे ।

मुंशी जी के अवचेतन में सौन्दर्यानुराग की दमित वासना पुत्री के स्नेह में अपनी तृप्ति का आधार ढूंढने लगी । मनोवैज्ञानिक धरातल पर सौन्दर्यानुराग की दमित वासना के साथ ही भिन्न लैंगिक आकर्षण पुत्री के रूप में उनके हृदय में को आकर्षित करता है । मुंशी जी पुत्री की प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करते हैं परन्तु पुत्र की उपेक्षा करते जाते हैं ।[४]

बासंती को मुंशी जी की यह खुशी पसन्द न आई ।[५] एक तो अपनी असुन्दरता के कारण पति द्वारा किया गया तिरस्कार, दूसरे अपने प्रतिरूप पुत्र शंकर के प्रति पति

---

१. अमर कान्त 'दीवार और आंगन' , पृ० ८
२. ,, ,, पृ० ८
३. ,, ,, पृ० ९
४. ,, ,, पृ० १०
५. ,, ,, पृ० १०

का उपेक्षा भाव, तीसरे दीप्ति का समलिंगी होना बासन्ती में पुत्री के लिये एक 'अजीब किस्म की ईर्ष्या' का प्रादुर्भाव करता है ।[1] 'अजीब किस्म की ईर्ष्या' में बासन्ती के पुत्री के प्रति व्यक्त होने वाले अस्पष्ट भावों का संकेत लेखक ने किया है । बासन्ती में न तो बेटी के प्रति ममत्व रह जाता है और न लगाव, जो मातृत्व के सहज गुण हैं । बासन्ती दीप्ति को अपना सफल प्रतिस्पर्धी मानने लगती है, क्योंकि पति का प्रेम जो पत्नी के अधिकार से अनुराग-रूप में बासन्ती को मिलना चाहिए था, वह सौन्दर्य के कारण पिता के स्नेह-रूप में दीप्ति को प्राप्त होता है । बासन्ती अपने सौन्दर्य की सीमा से भी परिचित है परिणामत: वह पति के व्यवहार के उत्तर में लड़के को बेहद प्यार और पुत्री की उपेक्षा करने लगती है ।[2]

क. दम्पती और सन्तान के कल्याण की भावना

प्रौढ़ता के साथ पति-पत्नी की भावनाओं और आकांक्षाओं में अन्तर आने लगता है । सन्तान के कल्याण के लिए अपने स्वार्थों को त्याग कर पति-पत्नी सन्तान के प्रति समर्पित जीवन व्यतीत करते हैं । यदि दोनों में कोई भी एक ऐसी चेष्टा करता है जिसमें सन्तान का अकल्याण हो तो दूसरा पक्ष पहले पक्ष का विरोध करने लगता है ।

'गोदान' में धनिया होरी के पितृत्व की वत्सलता पर विश्वास करते हुए होरी से गोबर के सर पर हाथ रख कर कसम खाने को कहती है । होरी भाई के मोह तथा सामाजिक अपमान से बचने के लिये गोबर की झूठी कसम खा लेता है ।[3] धनिया के विश्वास पर आघात लगता है । धनिया का मातृहृदय पुत्र के अशुभ की आशंका से अपने पति को धिक्कारने लगता है । होरी का प्रौढ़ धर्मभीरु हृदय विवशता में कसम खा कर अपने को अपराधी अनुभव करने लगता है और वह धनिया की प्रताड़ना का विरोध करने का साहस एकत्रित नहीं कर पाता ।[4]

---

१. अमरकान्त 'दीवार और आंगन', पृ० १०

२. ,, ,, पृ० १०

३. प्रेमचन्द - गोदान, पृ० १०५

४. ,, पृ० १०६

## (अ) अयोग्य सन्तान और दम्पती

सन्तान का अयोग्य निकल जाना प्रौढ़-दम्पती के लिए व्यथा का कारण बन जाता है। दम्पती की सम्पूर्ण जीवन की तपस्या व्यर्थ हो जाती है। पति-पत्नी सन्तान की अयोग्यता के लिये पश्चाताप करते हुए परस्पर दोषारोपण भी करते हैं। ये दोषारोपण कभी मौन रूप से चलते हैं, कभी उत्तेजना में व्यक्त होते हैं और कभी क्षोभ में अभिव्यक्ति प्राप्त करते हैं।

'महाकाल' में शिबू के अयोग्य निकल जाने पर माता-पिता अपनी-अपनी भाँति सोचते रहते हैं। अन्दर ही अन्दर पुत्र को अयोग्य बनाने के कारण स्वरूप एक दूसरे के दोषों का अन्वेषण करते हैं परन्तु खुल कर दोषारोपण नहीं करते।[1]

'गोदान' में गोबर के नालायक निकल जाने का धनिया और होरी को दु:ख है। धनिया गोबर के बदले हुए रुख का सारा दोष झुनिया पर मढ़ देती है। होरी स्पष्ट रूप से धनिया का प्रतिवाद करता है -'जब देखो तू झुनिया ही को दोष देती है। यह नहीं समझती कि अपना सोना खोटा तो सोनार का क्या दोष ? गोबर उसे न ले जाता तो क्या आप से आप चली जाती ? सहर का दाना-पानी लगने से लौंडे की आँखें बदल गईं, ऐसा क्यों नहीं समझ लेतीं।'
धनिया गरज उठी -अच्छा, चुप रहो। तुम्हीं ने रांड़ को मूड़ पर चढ़ा कर रखा था, नहीं मैंने पहले ही दिन झाड़ूमार कर निकाल दिया होता।
...... मान ले, बहू ने गोबर को फोड़ ही लिया; तो तू इतनी कुढ़ती क्यों है, जो सारा जमाना करता है, वही गोबर ने भी किया। अब उसके बाल-बच्चे हुए। मेरे बाल-बच्चों के लिए क्यों अपनी सांसत कराए, क्यों हमारे सिर का बोझ अपने सिर रखे।
तुम्हीं उपद्रव की जड़ हो।'
'तो मुझे निकाल दो। ले जा बैलों को, अनाज मांड़। मैं हुक्का पीता हूं।'[2]

उपर्युक्त उद्धरण में होरी के विनोदी स्वभाव के कारण अयोग्य सन्तान पर उठे वाद-विवाद का अन्त भीषण कलह में न होकर परिहास में समाप्त हो जाता है।

---

१ अमृतलाल नागर 'महाकाल', पृ०२२१

कभी कभी अयोग्य सन्तान के विषय में पति-पत्नी का वार्तालाप साधारण चिन्ता से प्रारम्भ होकर, अन्तस की कचोटों से उर्जित हो, शालीन घात-प्रतिघातों को वहन करता हुआ पुत्र के कार्यों से उत्पन्न घोर निराशा तथा विरक्ति में परिणत हो जाता है।

वृद्धावस्था में परिवार तथा सन्तान के लिये चिन्तित होते हुए दम्पति का सजीव चित्रण 'यह पथ बन्धु था' की विशेषता है। श्रीमती श्रीनाथ पति के पास रात के समय घर के कार्यों का चिट्ठा खोलती हैं। पारिवारिक उलझनों को पति-पत्नी रात के एकान्त में बैठ कर सुलझाते हैं।[१] पुत्रों की अयोग्यता से पति-पत्नी सन्तप्त हैं। मां बड़ी बहू सावित्री द्वारा किये गए अपमान से विक्षुब्ध है, कीर्तनियांजी समाज में फैली श्रीमोहन की निन्दा से दुःखित हैं।[२]पत्नी के प्रति कभी भी न कठोर होने वाला पति भी बेटों की अयोग्यता से असंयमित हो सम्पूर्ण दोष पत्नी पर ढाल देता है। कीर्तनिया जी द्वारा कहा गया वाक्य- बड़े पुण्यात्मा को जन्म दिया है तुमने- एक और अयोग्य सन्तान को उत्पन्न करने के लिये पत्नी को दोषी ठहराता है तो दूसरी और स्वयं उनके निरर्थक होते हुए पितृत्व के संताप को अभिव्यक्त करता है। ~~पत्नी~~ 'आज आपको क्या हो गया है?' के द्वारा पति के नए रूप के प्रति ऐसी पत्नी की चिन्ता प्रकट होती है जिसने पति को कभी भी परिवार और पत्नी के विषय में कुछ कहते हुए न सुना हो।[३]

ट. प्रौढ़-दम्पती के कलह-क्षणों में सन्तान की भूमिका

गृहिणी जीवन भर अत्याचारी पति का अत्याचार सहती है परन्तु प्रौढ़ावस्था आने पर वह पति का विरोध प्रकट रूप से करने लगती है। पत्नी के पास अपने शरीर से उत्पन्न सन्तान का बल होता है। पति के साथ पत्नी धर्म से बंधी होती होती है परन्तु पुत्र पर उसका अधिकार होता है।

---

१. नरेश मेहता, 'यह पथ बन्धु था', पृ० १५६,१६६
२. ,, ,, पृ० १५८
३. ,, ,, पृ० १५६

'दीवार और आंगन' के मुंशी जी ने सारी जवानी ऐयाशी तथा पत्नी को संत्रस्त करने में व्यतीत कर दी है । प्रौढ़ावस्था में आकर वे शान्त प्रकृति के हो गए हैं परन्तु पत्नी बासंती मुंशीजी के जीवन से जली बैठी है । अब बासंती मुन्नीलाल का अन्याय सहन नहीं कर पाती और उग्र रूप से उनका विरोध करती है । मुंशी जी का पूर्व क्रोधी स्वभाव भड़क उठता है और वे छड़ी उठाकर पत्नी पर प्रहार करने के लिए तैयार हो जाते हैं । शंकर माता के साथ हो रहे अन्याय को सहन नहीं कर पाता है । माता की रक्षा के लिए आया हुआ शंकर पिता के भरपूर प्रहार को अपने ऊपर झेल कर 'स्थिर दृष्टि' से पिता की ओर देखता रहता है ।[१]

शंकर का खामोश नज़रों से पिता को देखना मात्र ही उसके अन्दर उठते हुए भावों को तथा पति-पत्नी की भावी स्थिति को स्पष्ट कर देता है । मुंशी जी की दृष्टि जब लड़के की खामोश दृष्टि से मिली तब उन्हें होश हुआ ।[२] पुत्र के समक्ष ओछा सिद्ध हो जाने पर मुंशी जी को अपने विगत जीवन एवं अपराधी-वृत्तियों पर पश्चाताप होता है । 'मुंशी जी समझ गए थे कि वह अब बासन्ती पर अन्याय नहीं कर सकते ...... यदि अन्याय करेंगे तो शंकर उसे बरदाश्त नहीं करेगा । वह अपनी मां की रक्षा के लिये अवश्य आयेगा और उनका विरोध करेगा ।'[३]

'गोदान' में होरी बल-प्रयोग द्वारा धनिया के सत्याग्रह को समाज के समक्ष दबाना चाहता है । धनिया समाज द्वारा किए गए अन्याय को मूक होकर सहना नहीं चाहती है । एक बार शक्तिभर मारने के पश्चात् भी जब धनिया शान्त नहीं होती तो होरी पुन: आंखों से आग बरसाता हुआ धनिया की ओर लपका ।[४] गोबर जो अभी तक मूक दर्शक मात्र था, वह माता-पिता की कलह के बीच आना नहीं चाहता था, माता की निर्बलता का बल बनकर सामने आकर खड़ा हो जाता है ।[५]

---

१. अमरकान्त 'दीवार और आंगन', पृ० ७२
२. ,, ,, पृ० ७२
३. ,, ,, पृ० ७२
४. प्रेमचन्द, 'गोदान', पृ० ११०
५. ,, पृ० ११०

गोबर में अन्याय करते हुए पिता के प्रति क्रोध है, उसके विद्रोह में उग्रता है साथ ही कर्तव्य ज्ञान की स्पष्टता भी है। गोबर ऐसा कपूत नहीं है कि पिता पर हाथ उठाए परन्तु माँ के ऊपर होने वाले अत्याचार को वह सहन नहीं कर सकता भले ही पिता के विरोध में उसे आत्महत्या करनी पड़े।[1]

पुत्र का सहारा पाकर धनिया बलवती हो जाती है। वह होरी के अन्याय का विरोध प्रबलता से करने लगती है। होरी की पशु-शक्ति नारी की आत्मशक्ति के समक्ष निर्बल हो जाती है। होरी समझ जाता है कि स्त्री के आगे पुरुष कितना निर्बल है, निस्सहाय है।[2]

'अमृत और विष' की हिंडोलवाली पति के पतित चरित्र को सहन कर लेती है परन्तु अपने अहं को नहीं टूटने देती। लाल साहब के अन्दर हिण्डोलवाली के लिये मात्र घृणा है क्यों कि हिंडोलवाली ने सम्पत्ति के मद में लाल साहब को कभी महत्व नहीं दिया। हिंडोलवाली के प्रति उठने वाली घृणा के कारण 'लाल साहब' 'उन लड़कों से अपनापन महसूस नहीं करना चाहते थे जो कि उनके साथ ही साथ हिंडोलवाली के भी हैं।'[3]

सम्पत्ति का बंटवारा दम्पती में कचहरी की नौबत ले आता है। लाल साहब अपने चरित्र पर लांछन आने के विरोध में पत्नी पर दुश्चरित्रता का मिथ्या-रोपण करते हैं और अपनी सन्तानों को अवैध घोषित करने की धमकी भी देते हैं।[4] पत्नी हिंडोलवाली अपने चरित्र पर लगाए गए लांछन को सहन नहीं कर पातीं और पति के प्रति उनके अन्दर बसने वाली घृणा -- बवुआ, पांच जूते मारो, सारे के। यहै हरामी के पिल्ले की अम्मा कहार की रहैं। मारो हरामी के। पती-फती अब हम न समझब ई का'-पति के प्रति कहे गए इन शब्दों में व्यक्त हुई है।[5]

---

१. प्रेमचन्द, गोदान , पृ० ११०

२. ,, पृ० ३६

३. अमृतलाल नागर 'अमृत और विष' , पृ० ४६७

४. ,, ,, पृ० ४६५

लाल साहब के पुत्र हिण्डोलवाली की 'चरित्र की शक्ति' तथा लालसाहब के निर्बल चरित्र से परिचित हैं। माता के चरित्र पर पिता द्वारा लगाए गए लांछन तथा अपनी उत्पत्ति की कुत्सित कथा सुन कर, लाल साहब के प्रति पुत्रों में हिंसा की भावना प्रबल हो जाती है। शंकर सहाय माता की आज्ञा से पिता का 'मर्डर' तक करने को तैयार हो जाता है। शंकर का पिता से विरोध भी सविनय विरोध है। शंकर पिता की मर्यादा के विपरीत एक भी शब्द प्रयोग नहीं करता है, परन्तु पिता से अधिक मा के गौरव की रक्षा शंकर के लिए महत्त्व रखती है। शंकरसहाय पिता को धमकी देते हैं -- 'परशुराम आपन महतारी का मर्डर कीन रहैं और कलियुग मां मां की आज्ञा से हम पिता का' ...... मास्टर बबुआ के कुरते की जेब से पिस्तौल निकल आई।[१] शंकर सहाय के शब्दों में माता के प्रति उनकी दृढ़ आस्था परिलक्षित होती है और पिस्तौल निकालने की क्रिया में पिता के व्यक्तित्व के प्रति अश्रद्धा व्यक्त होती है।

लाल साहब परिवार में अपनी नगण्यता को समझ जाते हैं। 'रानी अम्मा' तथा 'ददुआ' की आज्ञा से आये हुए पुत्र को अपनी मृत्यु के समक्ष देख कर प्राण-रक्षा के लिये लाल साहब वह कमरा, महल सब छोड़ कर चले जाते हैं।[२]

निष्कर्ष

हिन्दी-उपन्यासों में सन्तान के प्रति दम्पती के सहज आकर्षण तथा ममत्व के चित्रणों से स्पष्ट होता है कि सन्तान दाम्पत्य-जीवन का लक्ष्य है। अवैध सन्तान, पत्नी के अवैध सम्बन्धों से उत्पन्न सन्तान, सौतेली सन्तान तथा वयस्क सन्तान का दाम्पत्य जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव के साथ ही दम्पती के जीवन का सन्तान के व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभाव को भी कथाकारों ने गम्भीरता के साथ रूपायित करने का प्रयत्न किया है।

१. अमृतलाल नागर 'अमृत और विष', पृ० ५०२

## चतुर्थ अध्याय

## हिन्दी-उपन्यासों में दाम्पत्य-जीवन विचार-स्वातन्त्र्य की दृष्टि से

१. समाज-सेवा तथा राष्ट्रीय भावना

   (क) पति-पत्नी के विचारों में सादृश्यता
   (ख) पति-पत्नी के विचारों में असादृश्यता

२. क्रान्तिकारी दृष्टिकोण सम्पन्न राष्ट्रीय भावना

   (क) अहिंसात्मक क्रान्ति ।
   (ख) हिंसात्मक क्रान्ति

३. राजनीति में सक्रिय सहयोग

प्रथम महायुद्ध में महात्मा गान्धी के नेतृत्त्व में भारतीय जनता ने तन-मन-धन से ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की सहायता की । 'युद्ध के मध्य सन् १६१७ में माण्टेग्यू घोषणा हुई जिसमें भारत की प्रगति पर विशेष बल दिया गया ।' परन्तु युद्धोपरान्त भारतीयों को निराश होना पड़ा, फलत: 'निराशा तथा क्षोभ से भरे भारत में दुगुने उत्साह से स्वशासन की मांग को औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग के रूप में परिवर्तित कर राष्ट्रीय आन्दोलन में पुन: संगठित किया' और सन् १६१८ तक राष्ट्रीयता की भावना भारत में पूर्णत: जाग्रत होगई ।'[1]

१६१८ में भारतीय जन के मन पर महात्मागान्धी के विचारों और सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव पड़ चुका था । रूस से आई साम्यवाद की विचार-धारा भी भारतीय जनता को प्रभावित कर रही थी । साम्यवादी विचार-धारा आयात की गई विचार-धारा थी इसलिये साम्यवाद ने जनता को प्रभावित अवश्य किया परन्तु वह कुछ बौद्धिक-वर्ग के लोगों को प्रभावित कर सतही बन कर रह गई थी । गांधीवाद, भारतीय पृष्ठभूमि पर आधारित, भारत की भूमि में उत्पन्न हुई विचारधारा थी, इसलिये यह जन-जन के हृदय को प्रभावित करने में सफल रही । गांधी जी का मुख्य सिद्धान्त अहिंसा था, सत्य, अपरिग्रह और त्याग में उनका अखण्ड विश्वास था । गान्धी जी के जीवन का मुख्य उद्देश्य जन-सेवा था । जन-सेवा के द्वारा ही पथभ्रष्ट जनता में आत्मबल जगा कर सत्पथ पर बढ़ने की प्रेरणा दी जा सकती है ।

प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दकालीन उपन्यासकारों के उपन्यासों में जाति-सेवा, वर्ग-सेवा, जनकल्याण तथा सामाजिक आन्दोलन के रूप में गांधी जी के विचारों का प्रगटीकरण हुआ है । गांधीवाद से प्रभावित हो पुरुष-वर्ग, स्वयं तो समाज-सेवा का बाना पहन कर निकला ही, उसने स्त्रियों को भी अपने साथ-जनसेवा करने के लिए घर की चारदिवारी से बाहर निकाला । 'राजनैतिक क्षेत्र में महिलाओं

---

१. मंजुला सिंह - हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग, पृ० ३१

के आने से उनके, उनके परिवार के और अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों के सामने जो प्रश्न आ खड़े होते हैं उनकी अनदेखी उपन्यासकारों ने नहीं की ।"[१] स्त्री-पुरुषों के विचार-स्वातन्त्र्य ने सबसे अधिक दाम्पत्य-जीवन को प्रभावित किया । पति-पत्नी के मध्य यदि पर्याप्त 'अण्डरस्टैन्डिंग' नहीं है, उनका दाम्पत्य-जीवन के प्रति दृष्टिकोण स्वस्थ नहीं है, उनके सिद्धान्त अपरिपक्व हैं तो, विचार-स्वातन्त्र्य उनके जीवन को अस्वस्थ बना देता है, जहां विचारों और सिद्धान्तों में परिपक्वता है, समझौता है वहां पति-पत्नी का जीवन स्वस्थ है और स्वस्थ जीवन व्यतीत कर पति-पत्नी विभ्रमित होते हुए समाज को उचित मार्ग प्रदर्शित करते हैं ।

१. समाज-सेवा तथा राष्ट्रीय भावना

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व के उपन्यासों में समाजसेवा का सात्विक रूप प्राप्त होता है साथ ही राष्ट्रीय आन्दोलनों का उग्र रूप भी प्राप्त होता है । समाज-सेवा और राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने वाले पति-पत्नी कभी समान विचारों को लेकर चलते हैं कभी असमान विचारों को लेकर चलते हैं । विचारों की सादृश्यता तथा असादृश्यता पति-पत्नी के कार्यों को भी प्रभावित करती हैं ।

क. पति-पत्नी के विचारों में सादृश्यता :-

प्रेमचन्द के समय में सबसे दयनीय स्थिति कृषक-वर्ग की थी । ज़मीन्दार तथा भारतीय रजवाड़े कृषकों के दलन में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट का साथ दे रहे थे । प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में कृषकों के उत्थान के लिये भरपूर प्रयास किया है । 'प्रेमाश्रम' के प्रेमशंकर, ज़मीन्दारों की परिपाटी से अलग, त्याग की भित्ति पर अपने जीवन-आदर्श की स्थापना करते हैं । विदेश से लौटने पर प्रेमशंकर से श्रद्धा नहीं मिलती है तो प्रेमशंकर निराश हो जाते हैं और उनका समाज-सेवा का स्वप्न भंग

---

१. बिन्दु अग्रवाल - हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण", पृ० २४२

हो जाता है ।[1] घर में श्रद्धा का, परिवार वालों का अंधविश्वास आदि भावनाएं प्रेमशंकर को चिन्तित कर देती हैं । 'चिन्तामय अवस्था से बचने के लिए वह कहीं अलग जाकर शान्ति के साथ रहना और अपने जीवन के उद्देश्य को पूरा करना चाहते हैं।[2] प्रेमशंकर का भावुक हृदय कृषकों के प्रति करुणा से भर जाता है और उनका मननशील मस्तिष्क कृषकों की स्थिति में सुधार लाने के उपाय निकालने लगता है ।

प्रेमशंकर चाहते हैं कि एक विशाल स्तर पर प्रयोगशाला खोली जाये जिससे अच्छे बीज और खाद कृषकों को दी जा सके । अपनी प्रयोगशाला के लिये प्रेमशंकर राजाओं महाराजाओं से सहायता मांगते हैं । राज्यसत्ता प्रेमशंकर की प्रयोगशाला को ब्रिटिश-शासन के प्रचार का माध्यम बनाना चाहती है । प्रेमशंकर की राष्ट्रीय भावना सजग हो जाती है और वे निर्भीकता-पूर्वक कहते हैं -- 'मैं इस संस्था को सरकारी सम्पर्क से अलग रखना चाहता हूं ।'[3] उपर्युक्त वाक्य में ब्रिटिश-राज्य-सत्ता के प्रति जनजीवन में संचित होती हुई घृणा और अविश्वास की अभिव्यक्ति होती है । प्रेमशंकर अपने लक्ष्य को गांधी जी के आदर्शों, निस्वार्थ सेवा, तप, त्याग और अहिंसा आदि, के द्वारा प्राप्त करने का निश्चय करते हैं ।[4]

ग्रामीणों की निस्वार्थ सेवा करते हुये प्रेमशंकर को निरन्तर श्रद्धा की याद आती है । उन्हें आशा है -'कदाचित् देश और समाज की अवस्था का ज्ञान श्रद्धा में सद्विचार उत्पन्न कर दे ।'[5] प्रेमशंकर कर्म-क्षेत्र में अपनी जीवन-संगिनी के

---

१. 'दिन-के-दिन दीवानखाने में पड़े रहते न किसी से मिलना न जुलना । कृषि सुधार के इरादे स्थगित हो गए ।' प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम, पृ० १११

२. प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' पृ० ११२ ३. वही पृ० ११७

४. 'निस्वार्थ सेवा करना मेरा कर्तव्य है । प्रयोगशाला स्थापित करके मैं कुछ स्वार्थ की सिद्धि करना चाहता था । कुछ लाभ होता, कुछ नाम होता । परमात्मा ने उसी का मुझे यह दण्ड दिया है । सेवा का क्या यही एक साधन है । प्रयोगशाला के पीछे ही क्यों पड़ा हुआ हूं ? बिना प्रयोगशाला के भी कृषि सम्बन्धी विषयों का प्रचार किया जा सकता है, रोग निवारण क्या सेवा नहीं ? 'प्रेमचन्द' - प्रेमाश्रम' , पृ० ११८

५. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ० ११९

सहयोग की भी इच्छा रखते हैं । प्रेमशंकर सोचते हैं -"यदि वह भी मेरे साथ होती तो कितने आनन्द से जीवन व्यतीत होता ।"[१]

उपर्युक्त भाव यदि एक ओर श्रद्धा के प्रति प्रेमशंकर के हृदय में उठने वाले असीम स्नेह को द्योतित करता है तो दूसरी ओर जन-जागृति के चिह्न भी स्पष्ट करता है । पति (अधिकांशत:) अपेक्षा करने लगे थे कि उनकी पत्नियां घर के अतिरिक्त समाज-सुधार और जन-सेवा में समय देकर उनके कार्यों में सहयोग प्रदान करें । पतियों के जागृत विचारों ने ही स्त्रियों को सामाजिक क्षेत्र में आने के लिये प्रोत्साहित किया । श्रद्धा जो 'चादर से पूरा शरीर ढक कर बड़े घर की स्त्रियों की तरह निकलती थी,'[२] उससे समाज सेवा के क्षेत्र में सहयोग की कल्पना करना ही रूढ़ियों के प्रति क्रान्ति के श्रीगणेश का संकेत है ।

दूसरा पक्ष श्रद्धा का है । प्रेमशंकर के जीवन-आदर्श के प्रति श्रद्धा सजग है और समाज-सेवा के प्रति चैतन्य है । प्रत्यक्ष रूप से असमर्थ होते हुए भी परोक्ष से पति के कार्यों में सहयोग देने के लिये प्रयत्नशील है । प्रेमशंकर के जातिसेवा के उद्देश्य की पूर्ति में वह बाधा नहीं बनना चाहती । जायदाद के लिए ज्ञानशंकर को दिया गया श्रद्धा का उत्तर -"उनकी जो इच्छा हो वह करें । चाहे अपना हिस्सा बेच दें या रखें । वह स्वयं बुद्धिमान हैं, जो उचित समझेंगे करेंगे । मैं उनकी पांव में बेड़ी क्यों डालूं ?"[३] --यदि एक ओर प्रेमशंकर के प्रति श्रद्धा के अटूट विश्वास और समर्पण को व्यक्त करता है तो दूसरी ओर प्रेमशंकर के कर्त्तव्य-पालन में सहयोग देने की इच्छा को भी व्यक्त करता है । प्रेमशंकर को आर्थिक कष्ट में देखकर श्रद्धा का अपने आभूषणों तथा जमापूंजी का दे देना तथा प्रेमशंकर को बाध्य करना कि वह श्रद्धा की सम्पत्ति का उपयोग अपने स्वप्नों के चरितार्थ करने में करें, श्रद्धा की गरीब किसानों के प्रति दया के भाव को व्यक्त करता है ।[४]

---

१. प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' पृ० ११८
२. ,, पृ० २१३
३. ,, पृ० १३४
४. ,, पृ०१२१

श्रद्धा का प्रारम्भिक त्याग दरिद्र किसानों के प्रति दया की भावना से प्रेरित न होकर प्रेमशंकर के प्रति प्रेमभाव से प्रेरित हुआ है। श्रद्धा का चिन्तन क्रमश: श्रद्धा के विचारों में आमूल परिवर्तन कर देता है । श्रद्धा स्वयं अन्त में समाज की स्थिति देखकर, सम्पूर्ण अंधविश्वासों को तोड़ कर, प्रेमशंकर के प्रेम की छांव में त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेमाश्रम में आ जाती है ।[1] प्रेमशंकर का स्वप्न पूरा होता है । महलों और पर्दे में रहने वाली नारी, दरिद्रजनों की पुकार सुन, रूढ़-बन्धनों को त्यागकर, त्यागपूर्ण जीवन बिताने लगती है ।

'प्रेमाश्रम' में ज्वालासिंह तथा उनकी पत्नी शीलमणि का समाज-सेवी रूप उभरा है । शीलमणि का सामाजिक समस्याओं के प्रति कोई व्यक्तिगत दृष्टिकोण नहीं है । ज्वाला सिंह को पति रूप में स्वीकार करने के पश्चात् वह ज्वालासिंह के समस्त कार्यों और विचारों से सहमत हैं । श्रद्धा की तरह विचारों की दृढ़ता तथा स्वतंत्रता का शीलमणि में अभाव है । पति ज्वालासिंह से शीलमणि किसानों के पक्ष में न्याय करने का अनुरोध करती है, परन्तु इस अनुरोध में सच्चे हृदय से कृषकों के प्रति व्यक्त होने वाली सहानुभूति का अभाव है तथा अदृष्ट का भय अधिक है ।[2]

ज्वाला सिंह प्रेमशंकर के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर नौकरी से स्तीफा देकर त्यागमय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं । ज्वाला सिंह के हृदय में देश के पीड़ित-कृषक-वर्ग के प्रति सहानुभूति है तो शासकीय वृत्ति के लिये लोभ भी है । ज्वालासिंह ऐसे हिन्दुस्तानी अधिकारी-वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो तत्कालीन स्वदेशी आन्दोलनों से प्रभावित होकर जनता की सेवा करना चाहता था साथ ही नौकरी के प्रति मोह के कारण अंग्रेज अधिकारियों को असन्तुष्ट नहीं कर सकता था । परिणामत: ज्वालासिंह गुप्त रूप से ५०० रुपये की राशि लखनपुर वालों की सहायता के लिये प्रेमशंकर के पास भेजते हैं ।[3] अन्त में आत्मा की पुकार ज्वाला सिंह ~~गुप्त रूप से ५०० रुपये की~~ के बाह्य आवरण को वेध डालती है और ज्वाला सिंह जनसेवा की भावना से ओतप्रोत हो जाते हैं ।

---

प्रेमचन्द प्रेमाश्रम, पृ० ३८२
,, पृ० १५१ ३. प्रेमचन्द , प्रेमाश्रम , पृ० १५७

शीलमणि और ज्वाला सिंह के विचारों में पुन: टकराहट होती है । शीलमणि ने अधिकारों का सुख भोगा है । अधिकार-लिप्सा उसके अन्दर शेष है । वह त्यागपत्र देने से पहले ज्वाला सिंह को समझाती है -"तुम्हारे हाथों में न्याय करने का अधिकार तो है ।"[1] पदच्युत करने वाले अधिकारियों से संघर्ष करने के लिए वह ज्वाला सिंह को प्रोत्साहित करती है । ज्वाला सिंह के नौकरी पर दृढ़ रहने के लिए शीलमणि द्वारा प्रस्तुत सम्पूर्ण तर्क अकाट्य है । शीलमणि का एक-एक वाक्य इस बात की पुष्टि करता है कि ज्वाला सिंह कुर्सी पर रह कर जितनी जन-सेवा कर सकते हैं उतनी पद-त्याग करने के पश्चात् नहीं कर सकते । ज्वाला सिंह जब विवश होकर त्यागपत्र देने के लिए चल देते हैं तो वह क्रोधित होकर कह देती है -"ऊंह; जो इच्छा हो करो, मुझे क्या करना है । आप ही पछताओगे, यह सब आदर-सन्मान वहीं तक है जब तक हाकिम हो, जब जाति -सेवकों में जा मिलोगे तो कोई बात भी न पूछेगा ।"[2] शीलमणि के शब्दों में कटु लौकिक सत्य है साथ ही उसकी अधिकारों के प्रति सजग इच्छाएं भी अभिव्यक्त हुई हैं ।

शीलमणि, जब ज्वाला सिंह के साथ प्रेमाश्रम में आ जाती है तो, अपने आपको समाज-सेवा के कार्यों में खपा देती है । उसका विचार-परिवर्तन द्योतित करता है कि जब तक शीलमणि ने त्याग द्वारा प्राप्त आत्मिक सुख का उपभोग नहीं किया था तब तक पद-अधिकार को ऊंचा समझती रही ।[3] त्याग और

---

१. प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' , पृ० २८५

२. ,, पृ० २८६

३. "जब हम प्रजा की कमाई खाते हैं तो प्रजा के फायदे का ही काम करना चाहिए यह क्या जिसकी कमाई खायें उसी का गला दबायें । यह तो नमक हरामी है । घोर नीचता है । यह तो वह करे जिसकी आत्मा मर गई हो । लोक परलोक की कुछ भी चिन्ता न हो । जिसके हृदय में जाति-प्रेम का लेश मात्र है, वह ऐसे अन्याय नहीं कर सकता ।" प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ० ३३७

सेवा द्वारा शीलमणि के विचारों में परिवर्तन शीलमणि का ही नहीं वरन् तत्कालीन नारी और समाज के विचारों का परिवर्तन है । शीलमणि जो प्रारम्भ में पति की दृष्टि से संसार को देखती थी वही अब समाज और जाति के प्रति अपने दृढ़-सुव्य-वस्थित विचार व्यक्त कर सकती है । कर्तव्य-परायणता और समाजसेवा के साथ ही शीलमणि के विचारों में जातीय भावना तथा सरकार की नीति के प्रति विरोध का भाव भी सन्निहित है जो राष्ट्रीय भावना का द्योतक है । सामाजिक स्थिति से परिचित होकर शीलमणि का पत्नीत्व स्वतंत्र रूप से विकसित होता है,जो सम्पूर्ण दलित भारतीयों को अपनी ममत्व की छाया में ढक देना चाहता है । जातीय भावना के समक्ष उसकी पुत्रेच्छा भी मन्द पड़ जाती है ।[१]

प्रेमचन्द का 'कायाकल्प' भी समाज-सुधार तथा जाति-सेवा की भावना से ओतप्रोत है । चक्रधर 'सिद्धान्तों के पक्के आदर्श पर मर-मिटने वाले, अधिकार और प्रभुत्व के जानी दुश्मन हैं ।'[२] चक्रधर का उद्देश्य जनता में जागृति फैलाना, शिक्षा का प्रचार करना, जनता को स्वार्थी अमलों के फन्दों से बचाने का उपाय करना, सबसे ऊपर जनता को आत्म-सम्मान की रक्षा का उपदेश देना है ।[३] चक्रधर चाहते हैं कि साधारण दलित मजदूर-वर्ग भी मनुष्य बनें और मनुष्यों की भांति संसार में रहें ।[४]मानव के प्राणों के मूल्य को समझने वाले चक्रधर राजा विशालसिंह के कोप-भाजन बन कर कारावास जाते हैं । कारावास का दण्ड चक्रधर के लिये दण्ड न होकर आत्मचिन्तन के लिये सुविधापूर्ण स्थान हो जाता है ।'कैदियों के कपड़े पहन कर खड़े हुए चक्रधर के चेहरे पर विचित्र शान्ति की झलक दिखाई दी, मानो किसी ने जीवन का तत्त्व पा लिया हो । उन्होंने वही किया जो उनका कर्तव्य था और

---

१. प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम, पृ० ३३७

२. ,, कायाकल्प, पृ० १०५

३. ,, पृ० ११०

४. ,, पृ० १११

कर्त्तव्य का पालन ही चित्त की शांति का मूल-मंत्र है ।'[१]

चक्रधर में रूढ़ियों के खण्डन की भावना उग्ररूप से परिलक्षित होती है । खण्डनात्मक प्रवृत्ति तथा उद्धार-वृत्ति के कारण ही वे यशोदानन्द की पोषिता -कन्या अहिल्या, जिसकी जन्म और जाति कुछ भी ज्ञात नहीं है, से विवाह करते हैं । विवाह से पूर्व चक्रधर के विचारों में द्वन्द्व उत्पन्न होता है, परन्तु चक्रधर मन में उठने वाले सम्पूर्ण विरोधी तर्कों का खण्डन कर निर्भीकता पूर्वक अहिल्या के साथ परिणाय सूत्र में बंधने के लिये तैयार हो जाते हैं क्योंकि,वह स्वतंत्रता के उपासक थे और निर्भीकता स्वतंत्रता की पहली सीढ़ी है ।'[२] भावनाओं के स्थान पर चक्रधर कर्त्तव्य को प्रमुखता देते हैं । चक्रधर अहिल्या के जीवन की सत्यता जान कर, अहिल्या के लावण्य की ओर से आंखें बन्द कर सकते थे परन्तु उद्धार के भाव को दबाना उनके लिये असम्भव हो गया ।

जेल में अहिल्या से मिलने पर चक्रधर कहते हैं -'खैर, मेरे दुबले होने के तो कारण हैं, लेकिन तुम क्यों ऐसी घुली जा रही हो ? कम-से-कम अपने को इतना तो बनाये रखो कि जब मैं छूट कर आऊं तो मेरी कुछ मदद कर सको, अपने लिये नहीं तो मेरे लिये ही तुम्हें अपनी रक्षा करनी चाहिए ।'[३] इन शब्दों में चक्रधर की अपनी जीवन-संगिनी के साथ जीवनोद्देश्य में लगने की लालसा व्यक्त होती है । इससे स्पष्ट होता है कि युवक-वर्ग प्रयत्न कर रहा था कि उसकी पत्नी भी उसी के समान उच्चादर्शों से पूर्ण सामाजिक कार्यों में सहयोग दे ।

हिन्दू-मुस्लिम-दंगे में अहिल्या को मुसलमान उठाकर ले जाते हैं । अहिल्या आत्मरक्षा के लिये ख्वाजा साहब के पुत्र का वध कर देती है । अंधविश्वास पूर्ण भारतीय समाज में अपहृता कन्या के लिये मृत्यु के अतिरिक्त अन्य कहीं स्थान नहीं

---

१. प्रेमचन्द कायाकल्प, पृ० १२६

२. ,, ,, पृ० ~~१६५~~ २०

३. ,, ,, पृ० १६५

होता परन्तु चक्रधर माता-पिता और समाज की अवहेलना कर अहिल्या को ढूंढ़ने निकलते हैं और अहिल्या के साहसपूर्ण कार्य को देखकर उसके प्रति श्रद्धा से विनत हो जाते हैं, क्योंकि 'उन्होंने यह कभी अनुमान ही नहीं किया था कि इसके विचार इतने उन्नत और उदार हैं। उन्हें यह सोचकर आनन्द हुआ कि इसके साथ जीवन कितना सुखमय हो जायेगा।'[१]

चक्रधर के माध्यम से हम युवकवर्ग के विचारों में क्रमशः होते हुये परिवर्तनों को देख सकते हैं। अपहृता नारी को जहां रूढ़िबद्ध समाज त्याज्य समझता था, क्योंकि समाज की दृष्टि नारी के शरीर की अपवित्रता पर ही केन्द्रित हो जाती थी, वहीं चक्रधर अहिल्या को वीरोचित कार्य तथा स्वरक्षा के लिये किये गए संघर्ष के कारण, पूज्य मानने लगते हैं।[२]

अहिल्या जातिसेवी यशोदानन्दन के उदार विचारों की छाया में पोषित हुई है। भारतीयता की रक्षा करना वह अपना कर्तव्य मानती है। हिन्दू-मुस्लिम-दंगे में चक्रधर को निर्भयता से कूदते देखकर चक्रधर के प्रति अहिल्या में श्रद्धा उत्पन्न होती है। चक्रधर जेल जाते हैं तो अहिल्या घर में जेल जैसा जीवन व्यतीत करने लगती है, क्योंकि चक्रधर को वह पतिरूप में स्वीकार कर चुकी है फिर पति यदि कष्टों में घिरा है तो वह घर में किस प्रकार सुखों का उपभोग कर सकती है।[३] समाज-सेवा की भावना अहिल्या को संस्कारों से मिली है और चक्रधर अहिल्या की उपलब्धि है, जिनका सहयोग पाकर वह जन-सेवा को चरितार्थ कर सकती है।[४] समाज-सेविका होने के साथ ही अहिल्या पत्नी और गृहिणी भी

---

१. प्रेमचन्द, कायाकल्प, पृ० १६८

२. ,, पृ० १६८

३. ,, पृ० १६३

४. 'मैंने तो तुमसे किसी बात की शिकायत नहीं की। अगर तुम जो हो वह न होकर धनी होते, तो शायद मैं अबतक क्वांरी ही रहती। धन की मुझे लालसा न तब थी न अब है। तुम जैसा रत्न पाकर अगर मैं धन के लिए रोऊं तो मुझसे बढ़कर अभागिनी कोई संसार में न होगी। तुम्हारी तपस्या में सहयोग देना मैं अपना सौभाग्य समझती हूं।'

है । उसके ऊपर घर का तथा पति का उत्तरदायित्व है । निष्काम सेवा में उसका विश्वास है परन्तु अर्थ के बिना गृहस्थी चलाना भी उसके लिये असम्भव है । वह सोचती है —'जब लोग पहले घर में चिराग जलाकर मस्जिद में जलाते हैं तो वह क्यों अपने घर को अंधेरा छोड़ कर मस्जिद में चिराग जलाने जायें..... आखिर प्राण देकर सेवा नहीं की जाती ।'[1] सेवा के लिये धन की आवश्यकता को अहिल्या अस्वीकार नहीं कर पाती, इसलिये चक्रधर का-'सेवा स्वयं अपना बदला है'- आदर्श उसे अविश्वसनीय लगता है ।'[2]

'कायाकल्प' में विचार-स्वातंत्र्य से सम्बद्ध एक मुख्य बिन्दु प्राप्त होता है जिसका चित्रण प्रेमचन्द ने विस्तार पूर्वक किया है —'पति का पत्नी के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण'-पति चाहता है कि पत्नी समाज-सेवा में पति के सिद्धान्तों को चरितार्थ करने में पति की सहायता करे परन्तु पत्नी का स्वतंत्र विकसित होता हुआ व्यक्तित्व वह सहन नहीं कर पाता । प्रेमशंकर 'प्रेमाश्रम' में श्रद्धा को अपनी अनुगामिनी बनाना चाहते हैं पर स्वयं श्रद्धा के विचारों के आगे झुकना नहीं चाहते हैं । 'कायाकल्प' में चक्रधर अहिल्या के तेजोमय रूप और गौरवपूर्ण विचारों से प्रभावित अवश्य हैं परन्तु जहां गृहस्थी में अहिल्या को अपने से ऊपर उठा हुआ पाते हैं वहां उनके स्वामित्व को आघात लगता है । 'उन्हें कभी ख़याल ही नहीं हो सकता था कि अहिल्या इतनी विचारशील है, मगर यह जान कर भी ख़ुश नहीं हुए । उनके अहंकार को धक्का सा लगा ।.... वह अज्ञात भाव से बुद्धि में, विद्या में एवं व्यावहारिक ज्ञान में अपने को अहिल्या से ऊंचा समझते थे ।'[3] जब चक्रधर अहिल्या को प्रत्येक क्षेत्र में अपने से आगे खड़ा पाते हैं तो अपने त्यागमय जीवन की चादर और कस कर पकड़ लेते हैं —'मुझे ऐश करना होता तो सेवा-क्षेत्र में आता ही क्यों'[4]?

---

१. प्रेमचन्द -कायाकल्प, पृ० २१५
२. ,, २१६
३. ,, पृ० २२०
४. ,, पृ० २२०

अहिल्या का त्याग तथा सहनशील व्यक्तित्व चक्रधर पर विजय प्राप्त करता है। चक्रधर स्वयं सोचते हैं कि समाज के साथ परिवार के प्रति भी मनुष्य के कुछ कर्तव्य होते हैं। उनकी आत्मा उन्हें धिक्कारती है — 'तेरी लोकसेवा केवल भ्रम है, कोरा प्रमाद है। जब तू उस रमणी की रक्षा नहीं कर सकता जो तुझ पर अपने प्राण तक अर्पण कर सकती है, तो तू जनता का उपकार क्या करेगा ?'[१] चक्रधर के विचारों से समाजसेवियों को समन्वयात्मक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा मिलती है। परिवार समाज की नींव है, उसे तोड़ कर जाति, समाज अथवा राष्ट्र का हित नहीं हो सकता। परिवार के लोगों के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुये समाज-सेवा करना ही वस्तुत: समाज-सेवा की कसौटी है।

'तितली' की तितली के माध्यम से प्रसाद ने जिस पत्नी की कल्पना की है वह स्वयं तो दृढ़ है ही दूसरों को भी जीवित रहने की प्रेरणा देने में सक्षम है। समाज का विरोध सहकर, पति द्वारा धोखा दिये जाने पर भी, वह कर्मक्षेत्र में अडिग है और अपने सिद्धान्तों को चरितार्थ करने में तत्पर है। तितली की समाज-सेवा प्रेमचन्द के पात्रों की तरह मात्र भावुकताजन्य नहीं है। प्रेमचन्द के पात्र प्राय: धनीवर्ग के हैं जिन्हें समाज-सेवा करते समय इसकी चिन्ता नहीं रहती कि धन कहां से आयेगा। पूर्वजों द्वारा की गई पाप की कमाई संचितधन को नष्ट करना ही उनके जीवन का लक्ष्य है। तितली साधारण वर्ग की है। स्वयं साधारण होते हुए भी समाज के दलित-वर्ग के प्रति उसकी सहानुभूति है। अपनी आर्थिक आवश्यकताओं के प्रति भी वह उदासीन नहीं है। खेती में अथक परिश्रम करती है, साथ ही मधुबन को भी उद्योगी बनाने के लिये प्रेरित करती है। तितली न तो किसी विशेष वर्ग के प्रति विद्रोह करती है न ही विशेष वर्ग के उद्धार का बीड़ा उठाती है। यही कारण है कि तितली और मधुबन में समाज के प्रति प्रेम और त्याग का जितना उत्कृष्ट रूप मिलता है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। तितली स्वयं को आदर्श बनाना चाहती है जिसका अनुसरण कर प्रत्येक व्यक्ति स्वावलम्बी बन सके। 'तितली' में समाज-सुधार की जो भावना अभिव्यक्त होती है, उसका उपाय विद्रोह नहीं है 'तप' है। प्रेमचन्द के पात्र जहां जनता और राज्य सत्ता में टकराहट की स्थिति

---

१. प्रेमचन्द 'कायाकल्प' पृ० २२१

उत्पन्न कर देते हैं वहीं प्रसाद के पात्र उच्चतम भारतीय आदर्शों की स्थापना कर समाज के विद्रोह को शान्त कर देते हैं ।

तितली और मधुबन के समाजसेवी सिद्धान्तों का उनके दाम्पत्य-जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है । तितली ने पिता-तुल्य बाबा रामनाथ के आदर्शों को अपने संस्कारों में बसा लिया है.। मधुबन भी बाबा रामनाथ से प्रभावित होकर स्वावलम्बी बनता है । बाबा का विचार है -" हल चलाने से बड़े लोगों की बात नहीं चली जाती । अपना काम हम नहीं करेंगे तो दूसरा कौन करेगा । "[१] बाबा रामनाथ के सिद्धान्तों को तितली और मधुबन स्वीकार तो करते हैं पर उन सिद्धान्तों का विश्लेषण अपनी अपनी रुचि से करते हैं । मलिया इन्द्रदेव के यहां की दासी है । इन्द्रदेव के बहनोई मलिया के साथ अपमानपूर्ण व्यवहार करते हैं । मलिया तितली के यहां आ जाती है । जब छावनी से मलिया का बुलावा आता है तो तितली साफ कह देती है कि मलिया अपनी इज्जत देने वहां नहीं जायेगी ।[२] मधुबन को मलिया के कारण छावनी वालों से विरोध करना उचित नहीं लगता है । वह तितली को समझाता है --बाबा जी ने " जाने के समय हम लोगों को जो उपदेश दिया था उसका तात्पर्य यही था कि मनुष्य को जानबूझ कर उपद्रव मोल न लेना चाहिए । विनय और कष्ट सहन का अभ्यास रखते हुये भी अपने को किसी से छोटा न समझना चाहिए और बड़ा बनने का घमण्ड भी अच्छा नहीं होता ।"[३] परन्तु तितली को मधुबन की दलील में कर्तव्यों से मुकरने की गंध मिलती है । वह तर्क न देकर निर्णय देती हुई कहती है -" बस करो मैं जानती हूं कि बाबा जी इस समय होते तो क्या करते, और मैं वही कर रही हूं जो करना चाहिए । मलिया अनाथ है उसकी रक्षा करना अपराध नहीं है ।"[४]

---

१. प्रसाद 'तितली' , पृ० ५२

२. ,, पृ० १३५

३. ,, पृ० १३६, १३७

४. ,, पृ० १३७

अनाथों के प्रति तितली में असीम दया-भाव है । नारी-जाति के प्रति उसमें मोह है । मलिया की रक्षा ही नहीं वह प्रत्येक नारी को सुशिक्षित और सबल बनाना चाहती है । कन्या-पाठशाला खोलकर वह अपनी जीविका का माध्यम भी खोज लेती है साथ ही कन्याओं को सुशिक्षित बना कर समयोपयोगी बनाने का कर्तव्य भी पूरा करती है ।[१] उसे इस बात की चिन्ता नहीं है कि गांव वाले उससे प्रसन्न हैं अथवा अप्रसन्न हैं । कन्या-पाठशाला चलाने के लिये वह कटि-बद्ध है ।[२] नारी के प्रति उसके उदार विचार कन्या-पाठशाला तक ही सीमित नहीं रहते बल्कि 'व्यभिचार की सन्तान' , जिनकी माताएं भी उन्हें छूने में पाप समझती हैं , तीन नन्हीं नन्हीं कन्याओं को भी अपने आश्रम में स्थान देती है[३] । तितली शैला का सहयोग पाकर अपने समाज-सुधार के स्वप्न को पूरा करती है। उसके त्यागपूर्ण जीवन से प्रेरणा पाकर ग्रामवासी ग्राम-सुधार की ओर उन्मुख होते हैं । 'पाठशाला ,बैंक और चिकित्सालय तो थे ही तितली की प्रेरणा से रात्रि पाठशालाएं भी खुल गईं थीं । कृषकों के लिये कथा के द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध हो रहा था ।'[४] समाज के लिये तितली का जीवन आदर्श बन जाता है ।

'रंगभूमि' की रानी जाह्नवी त्याग,तप, संयम और सेवा जैसे उदात्त-गुणों की प्रतिमूर्ति है और कुंवर भरत सिंह विलासी प्रवृत्तियों के दास हैं । रानी जाह्नवी महाभारत की कथाओं तथा डाक्टर गांगुली के व्यक्तित्व से प्रभावित ~~देशमुख~~ देशानुराग की ओर उन्मुख होती हैं । विलासी पति के साथ वह समाज-सेवा नहीं करपातीं परन्तु पुत्र विनय सिंह को अपने विचारों की प्रतिमूर्ति बनाने का निश्चय कर लेती हैं ।[५] विनय के साथ जाह्नवी स्वयं कठिन तपस्या करती हैं । विलासी-जीवन त्याग कर तपस्विनी का जीवन व्यतीत करती हैं । सेवादल की विशाल योजना, समिति-सदस्यों के प्रशिक्षण में वह क्रियात्मक सहयोग देती हैं ।

---

१. प्रसाद 'तितली' पृ० २३५

२. ,, पृ० २३३

३. ,, २३३

४. ,, पृ० २६०

५. प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ० ३७८, ३७६

विनय का सोफिया के प्रति आकर्षण-भाव उनकी कामनाओं पर तुषारापात कर देता है । जाति-सेवा और चरित्र की दृढ़ता के प्रति रानी जाह्नवी की अटूट आस्था है, अत: वे कर्तव्यच्युत विनय से घृणा करने लगती हैं ।[१] इसी स्थान पर कुंवर भरत सिंह को पुत्र-प्रेम खींचता है । भरतसिंह का व्यक्तित्व समाज-सेवा के प्रति समर्पित नहीं है परन्तु उनका वात्सल्य ~~समाज-सेवा~~ चरम स्थिति पर है । पुत्र का त्याग मय जीवन समाजसेवा और कठोर जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य करते हैं । जवान बेटे के सामने बूढ़ा बाप कैसे विलास का दास बना रह सकता था ।[२] रानी जाह्नवी इस तथ्य को स्वीकार करती हैं कि पुत्र की ममता में बंध कर ही कुंवर साहब "मुक्त हृदय से सत्कार्यों में भाग लेते हैं... और उनके अनुराग के बगैर विनय सिंह को कभी इतनी सफलता प्राप्त नहीं होती ।"[३] इससे स्पष्ट होता है कि भरत सिंह की सेवादल के प्रति सहानुभूति, सेवा-कार्यों में तत्परता तथा स्वदेश-प्रेम आदि भावनाएं पुत्र-प्रेम के इर्द-गिर्द घूमती हैं, उन भावनाओं का स्वतंत्ररूप से कुंवर साहब के हृदय में कोई अस्तित्व नहीं है, इसीलिए विनय की मृत्यु के पश्चात् कुंवर साहब को सब व्यर्थ लगने लगता है । निराशा तथा नश्वरता का ज्ञान भरत सिंह को, क्षणिक ऐश्वर्यमय जीवन को भोग लेने के लिये, पुन: विलासिता में डुबो देता है ।[४]

भरत सिंह के विपरीत रानी जाह्नवी में सेवा की भावना स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं । वे विनय को अपने सिद्धान्तों के अनुसार ढालती हैं और विनय के कार्यों में अपने आदर्श को चरितार्थ होते देख कर प्रसन्न होती हैं । कर्तव्य की वेदी पर चढ़ जाने वाले पुत्र विनय के लिये उन्हें दु:ख नहीं गर्व होता है । विनय की मृत्यु उन्हें हताश नहीं करती वरन् उनके उत्साह में वृद्धि करती हैं । विनय द्वारा छोड़े गए अधूरे कार्य को वह वृद्ध होते हुए भी उत्साह और लगन के साथ पूरा करने के लिये कर्म-क्षेत्र में उतरती हैं ।[५]

---

१. प्रेमचन्द, 'रंगभूमि' , पृ० ३७८
२. ,, पृ० ८६
३. प्रेमचन्द, 'प्रेमाश्रम' , पृ० २६४
४. ,, पृ० ५४३
५ ,, पृ० ५५०

विचारों में भिन्नता होते हुए भी जाह्नवी तथा भरत सिंह में टकराहट नहीं है ।[१] वे दोनों परस्पर सुगम हैं, सुबोध हैं, उनमें कुछ भी छुपा नहीं है । सामाजिक कार्यों के साथ ही रानी जाह्नवी पति की मर्यादा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करती हैं । समाज-सेवा उनके दाम्पत्य-जीवन में दरार उत्पन्न नहीं करती वरन् परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के ~~जीवन के~~ व्यक्तित्व का स्वतंत्र रूप से विकास करती है, ऐसा विकास जो समाजोन्मुखी है, जो भ्रमित समाज को पथ-निर्देश करने की क्षमता रखता है ।

'तितली' में प्रसाद ने शैला की निस्वार्थ सेवावृत्ति का चित्रण किया है । नीलकोठी के आकर्षण में खिंच कर शैला इन्द्रदेव के साथ भारत आ जाती है । पाश्चात्य सभ्यता से सम्बन्धित नारी भारतीय जनता की दरिद्रता और पीड़ा देख कर द्रवित हो जाती है । भारतीय जनता के हित के लिये वह समाज-सेवा का बीड़ा उठाती है । धामपुर में अस्पताल की स्थापना ग्रामीणों की सेवा आदि, यदि एक ओर शैला के नीलकोठी के प्रति आकर्षण को व्यक्त करती है तो दूसरी ओर उसकी निस्वार्थ सेवावृत्ति को भी व्यक्त करती हैं ।[२] बाबा रामनाथ के शब्द उसके लिये आदर्श बन जाते हैं । तितली के जीवन से भी वह प्रेरणा लेती है । तितली पर आपत्ति की कथा सुनकर वह द्रवीभूत हो जाती है और इन्द्रदेव से तितली की सहायता करने की प्रार्थना करती है ।[३]

इन्द्रदत्त जमीन्दार-वर्ग के हैं । शैला के प्रति उन्हें सच्चा स्नेह है । शैला की इच्छाओं को जानकर शैला का सामीप्य प्राप्त करने के लिये ही इन्द्रदत्त रियासत से त्यागपत्र दे देते हैं ।[४] इन्द्रदत्त का त्याग शैला को उनके साथ विवाह-सूत्र में बंधने के लिये बाध्य कर देता है । विवाह के पश्चात् शैला अपने ग्राम-सुधार के स्वप्न को पूरा करती है और इन्द्रदत्त शैला के स्वप्न को साकार रूप देने में पूर्ण सहयोग देते

---

१. प्रेमचन्द 'रंगभूमि' पृ० २६०
२. प्रसाद 'तितली', पृ० ७०
३. ,, पृ० २०३
४. ,, पृ० २०५

है । शैला की निस्वार्थ सैवा और इन्द्रदत्त का निष्काम त्याग 'धामपुर को स्वर्ग' बना देते हैं ।'[१]

समाजसेवा करते हुए भी शैला और इन्द्रदत्त सफल गृहस्थ हैं ।' बैरिस्टरी की आय उनके लिये पर्याप्त होती है रियासत की आय जनता की भलाई में लगाते हैं[२]। शैला सामाजिक कार्यों में भाग लेने के पश्चात् 'चतुरगृहिणी' भी है । इन्द्रदत्त के स्वावलम्बन में भी वह अपना अंश पूरा करती हैं ।[३] पांश्चात्य शरीर में भारतीय नारी की आत्मा का निरूपण कर प्रसाद ने भारतीय नारी के कर्तव्यों की स्थापना की है । भारतीय नारी, जो सामाजिक क्षेत्र में तो उतरती ही है साथ ही, परिवार की सुख-सविधा के प्रति भी अपने कर्तव्यों का निर्वाह करती है । भारतीय नारी की भांति शैला समाज और परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों का सन्तुलित रूप से निर्वाह करती है ।

'बूंद और समुद्र' में वनकन्या और सज्जन की प्रकृति में विशाल अन्तर है । सज्जन और व्यक्तिवादी तथा विलासी प्रकृति का है, उसके ठीक विपरीत, वनकन्या दृढ़ और मर्यादित जीवन में विश्वास रखती हैं । पारिवारिक वातावरण और परिस्थितियां कन्या में सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह के भाव को जागृत करती हैं । कथाकार का मुख्य उद्देश्य समाज में नारी की असहाय स्थिति का चित्रण करना है । नारी चाहे पत्नी हो चाहे वेश्या, चाहे अपढ़ हो चाहे सुशिक्षित वह पूर्णरूपेण पति, परिवार और समाज के आधीन रहने के लिए बाध्य है । मुखबन्द करके प्रत्येक व्यक्ति का अत्याचार सहना ही उसका प्रारब्ध है । असहाय नारी के प्रति कथाकार की सहानुभूति का मूर्त रूप वनकन्या है ।

सज्जन विलासी होने के साथ ही भावुक और प्रोग्रेसिव विचारों का भी है । वनकन्या का सुदृढ़-अवलम्ब तथा योग्य-पथ-प्रदर्शन सज्जन को समाजसुधार की ओर उन्मुख करता है ।' बाबा रामदास सज्जन के सत्पक्ष की प्रेरणा हैं जो पथभ्रष्ट होने से पहले ही उसे चेतावनी दे देते हैं ।

---

१. प्रसाद 'तितली', पृ० २६१
२. ,, पृ० २६१
३. ,, पृ० २६१

वनकन्या में पीड़ित-नारी-जाति के प्रति व्यापक सहानुभूति है। 'महिला-सेवा-मण्डल' में हो रहे अमानुषिक कार्यों के लिये वह दु:खी हो जाती है। वनकन्या कहती है -" इस दुराचार का अन्त करना होगा।"[१] वनकन्या में वैचारिक दृढ़ता है। उसका मस्तिष्क विचार के तर्क जाल में न पड़कर निर्णय लेता है। नारी उद्धार की भावना से प्रेरित होकर नारियों के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए कहती है -"स्त्रियों पर यह अत्याचार होते हैं, स्त्रियां इसके लिये विवश हैं ..... कुछ भी हो मैं इसके लिए प्रमाण एकत्र करूंगी। मैं कुछ भी करूंगी इस अन्याय का प्रतिकार करूंगी।"[२]

सज्जन 'महिला-सेवा-मण्डल' की समस्या को समस्या रूप में लेकर उस पर तर्क-वितर्क द्वारा निर्णय लेना चाहता है और वनकन्या भावनात्मक स्तर पर समस्या से प्रभावित होकर उसे नितान्त व्यक्तिगत स्तर पर ले लेती है। यही कारण है कि वनकन्या से सज्जन की निर्णय-शून्यता सहन नहीं होती।[३] विचारों में मतभेद हो जाने पर भी पतिपत्नी में बोधगम्यता है, जो झुंझलाहटों और अधीरता-प्रदर्शन के पश्चात् भी उन्हें अनन्य बनाए रहती है। वनकन्या की उत्तेजना सज्जन को प्रभावित करती है। सज्जन 'महिला-सेवा-मण्डल' का भण्डाफोड़ करता है। सज्जन केवल गंदगी का उद्घाटन करने की दृष्टि से ही काम नहीं करता है। वह बाबा रामदास की रचनात्मक वृत्ति से प्रेरणा प्राप्त करता है साथ ही कन्या का सहयोग भी उसके लिए रचनात्मक है।[४]

सज्जन और वनकन्या के समक्ष बाबा रामजी द्वारा निर्देशित एक विशाल उद्देश्य पड़ा है 'नगर के पुरुषों को महाजिन्दों की फांसी और बेईमानी से बचाना तथा स्त्रियों के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाकर, उन्हें योग्य बनाना।'[५]

---

१. अमृतलाल नागर 'बूंद और समुद्र', पृ० ३०७
२. ,, ,, पृ० ३०८
३. ,, ,, पृ० ३०६
४ ,, ,, पृ० ३१३७
५. ,, ,, ३४३

सज्जन और वनकन्या सबसे पहले सहकारी बैंक की स्थापना करके तथा ताई की हवेली में पाठशाला खोलकर, जिसमें स्त्रियों को गृहोपयोगी कार्यों की शिक्षा दी जाती है, अपनी समाज-सुधार की भावना को क्रियात्मक रूप देते हैं।[१]

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात्, राजनैतिक पार्टियों की अधिकार-लिप्सा और सामाजिक भ्रष्टाचार की उथल-पुथल में सज्जन और वनकन्या के आदर्शों की स्थापना करके कथाकार ने समाज-सुधार का उपाय सामने रखा है। स्वतंत्र भारत में महात्मा गांधी के स्वप्न को चरितार्थ करना और प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का कर्तव्य है। महात्मा गान्धी भारतीय थे और सज्जन हिन्दुस्तानी बनने का प्रयत्न कर रहा है।[२] 'हवाई' स्थापनाओं से हटकर जब व्यक्ति 'अपना हो जायेगा' तभी समाज को कुछ दे सकेगा। सज्जन कहता है -'जन-जीवन' अंध-विश्वास और भ्रान्तियों से जकड़ा हुआ है। ऐसी दशा में बुद्धिवादी भला चुप बैठ सकते हैं? क्या आज वे पूंजी और व्यक्तिवादी वातावरण से प्रभावित होकर जनता को भरमाने में ही योग देते रहेंगे? क्या किसी को भी आज अपने देश से प्यार नहीं?[३] यह प्रश्न सज्जन का ही नहीं आधुनिक भारतीय समाज के बुद्धिजीवी-वर्ग का प्रश्न है। प्रश्न को प्रश्न ही नहीं बनाना है उसे क्रियात्मक रूप भी देना बुद्धिवादी व्यक्ति का कार्य है। राजनैतिक पार्टियों के जालों से अपने को बचाते हुए, उद्धार तथा कल्याण की भावना से प्रेरित समाजसुधार में कर्मरत दम्पती का उत्कृष्ट उदाहरण सज्जन और वनकन्या हैं। 'सज्जन और कन्या एक लगन लेकर अपने छोटे से क्षेत्र में मानवता का दर्शन करने के लिये कर्मरत हो गए। रूढ़िवादिता स्वयं के संहार को बचाने से पहले कठिन प्रहार करती है और करेगी भी, परन्तु दोनों पति-पत्नी आस्था पर डटे रहेंगे। व्यक्ति की सामाजिक चेतना जाग कर रहेगी।'[४]

ख. पतिपत्नी के विचारों में असादृश्यता

विचारों में असादृश्यता पतिपत्नी के सामाजिक तथा पारिवारिक क्षेत्रों में

---

१. अमृतलाल नागर 'बूंद और समुद्र', पृ० ~~३~~४५

२. ,, पृ० ~~३७५~~ ३६६

३. ,, पृ० ३७५

४. ,, पृ० ३६६

को पूर्णतः प्रभावित करती है । 'रंगभूमि' उपन्यास में इन्दु तथा महेन्द्र सिंह विचारों की स्वतंत्रता के पक्षपाती हैं, पर साथ ही अपने व्यक्तिगत सिद्धान्तों से लोभियों की तरह चिपके हुए हैं । परस्पर एक दूसरे का अपमान तथा विरुद्ध आचरण करने में ही वे अपने विचारों को सुरक्षित रखने का उपाय ढूंढ़ते हैं । जातीयता, समाजसेवा तथा राष्ट्रीयता आदि उदात्त विचार इन्दु को मातृपक्ष से प्राप्त हुए हैं । राजा महेन्द्र सिंह का निश्चित रूप से कोई सिद्धान्त नहीं, पर स्पष्ट रूप से यह कह देना कि उनके अन्दर सेवा, त्याग आदि उदात्त गुण नहीं हैं, नितान्त असंगत होगा । महेन्द्र सिंह स्वीकार करते हैं -'हुक्काम का विश्वासपात्र बने रहने के लिये सच्ची बातों में दबना अपनी आत्मा की हत्या करना है ।'[१] महेन्द्र सिंह तत्कालीन राजा-रईसों के सच्चे प्रतिनिधि हैं जो भारतीय जनता का अहित नहीं करना चाहते थे साथ ही पद तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिये अंग्रेजों को खुश रखना चाहते थे । महेन्द्र यश तथा पद के लोभी हैं साथ ही कृपणता उनमें चरमसीमा पर प्राप्त होती है । यश-प्राप्ति के लिये महेन्द्र सिंह समाज-सेवा करते हैं परन्तु पद-रक्षा के लिये अपनी ही रियाया का गला घोंट देते हैं ।[२] लोभ के कारण महेन्द्र-सिंह का सहजगुण जातीय-प्रेम उभरने नहीं पाता ।

इन्दु शुद्ध रूप से समाज-सेवी है । दरिद्र जनता के प्रति उसमें सहानुभूति है । सूरदास की ज़मीन की समस्या जब इन्दु के समक्ष आती है तो इन्दु स्पष्ट रूप से अपने विचार रख देती है -'क्या सूरदास ही ऐसा व्यक्ति है जिसके पास दस बीघे ज़मीन है । कितने ही ऐसे बंगले पड़े हैं जिनका घेरा दस बीघे से अधिक है हमारे ही बंगले का क्षेत्र पन्द्रह बीघे से कम न होगा ।'[३] इन्दु का साम्यवादी दृष्टिकोण राजाओं-रईसों का विरोध करते-करते अपने ही परिवार वालों का विरोध करने लगता है । गरीब-अमीर का भेद इन्दु में नहीं है पर भूमि की उपयोगिता पर उसकी दृष्टि जाती है -'सूरदास की ज़मीन में तो मुहल्ले के ढोर चरते हैं । अधिक नहीं तो एक मुहल्ले का फायदा तो होता ही है । इन बातों से तो एक व्यक्ति

---

१. प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ० १६६
२. ,, पृ० १७४
३. ,, पृ० १७३

के सिवा और किसी का कुछ फायदा नहीं ।'[1] इन्दु समुदाय के लाभ को व्यक्ति के लाभ से अधिक महत्त्व देती है और कुकामों के विरोध में दु:खीजनों की हिमायत करना मानवी धर्म मानती है । नगरवासियों की विशेषकर दीनजनों के स्वत्वों की रक्षा करना इन्दु अपना कर्तव्य मानती है ।[2]

समाजसेवी प्रवृत्तियों के साथ ही इन्दु में अहं उग्ररूप से है । जहाँ उसके अहं पर चोट पड़ती है तिलमिला उठती है । सूरदास के विषयमें पहले वह सेवा-भाव से सूरदास का पक्ष लेती है और महेन्द्र सिंह को भी सूरदास का पक्ष लेने के लिए प्रेरणा देती है, परन्तु जब वह देखती है कि सोफिया सूरदास का पक्ष ले रही है तथा क्लार्क महोदय सोफिया के कारण सूरदास की ज़मीन वापस दिला रहे हैं तो ईर्ष्या के वशीभूत हो इन्दु राजा महेन्द्र को सूरदास का विरोध करने के लिये प्रेरित करती है ।[3] राजा महेन्द्र सूरदास पर सख्ती करते हैं और उसके विरुद्ध निर्णय देते हैं । समाज द्वारा अपने कृत्यों की निन्दा सुनकर इन्दु पुन: समाज-सेवा की ओर झुकती है और सूरदास का पक्ष लेने लगती है ।[4] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि इन्दु समाज-सेवा करना चाहती है परन्तु समाज-सेवा के लिये जिस प्रकार के गम्भीर व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है उसका इंदु में नितान्त अभाव है । इन्दु के स्वभाव में क्षणिकता है जिसके कारण वह राजा की साहब को भी किसी स्थिर मार्ग पर चलने की प्रेरणा नहीं दे पाती ।

सामाजिक हो जाने पर दम्पती का व्यवहार और पारिवारिक परि-स्थितियाँ किस प्रकार राजनीति का विषय बन जाती हैं यह इन्दु तथा महेन्द्र के जीवन से प्रतीत होता है । इन्दु मतभेद और अपमान के कारण महेन्द्र सिंह का घर छोड़ कर मायके आ जाती है और स्वतंत्र रूप से समाज-सेवा करती है । इन्दु तत्कालीन जागृत नारी का प्रतिरूप बन कर आन्दोलन करती है, चन्दे एकत्रित करती है । आत्मा की रक्षा के लिए ही वह स्वतंत्र रूप से समाज-सेवा में कर्मरत होती

---

१. प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ० १७३
२. ,, पृ० १७४
३. ,, पृ० २२६, २२७, २२८
४. ,, पृ० ३५७

है ।[१] 'यह विवाद दाम्पत्य क्षेत्र से निकल कर राजनीतिक क्षेत्र में अवतरित हुआ । महेन्द्रकुमार उधर एड़ी-चोटी का जोर लगाकर इस आन्दोलन का विरोध कर रहे थे, लोगों को चन्दा देने से रोकते थे, प्रान्तीय सरकार को उत्तेजित करते थे, इधर इन्दु सोफिया के साथ चन्दे वसूल करने में तत्पर थी । इन्दु ने अपना चन्दा तो एक हजार दिया ही अपने कई बहुमूल्य आभूषण दे डाले जो बीस हजार के बिके । राजा साहब की छाती पर साँप लोटता रहता था । पहले अलक्षित रूप से विरोध करते थे फिर प्रत्यक्ष रूप से दुराग्रह करने लगे । गवर्नर के पास स्वयं गए, रईसों को भड़काया सब कुछ किया ।'[२]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि राजा महेन्द्र के अन्दर देशसेवकों तथा नागरिकों के प्रति जो सहानुभूति थी भी वह इन्दु के हठ से समाप्त हो जाती है । महेन्द्र के हृदय में संचित सद्भावनाओं को- कभी इन्दु का मर्यादा-प्रेम, कभी उसका हठ और कभी दुराग्रह-असामाजिक वृत्तियों में बदल देता है ।[३]

'अचल मेरा कोई' में सुधाकर और कुन्ती के माध्यम से ऐसे दम्पति का चित्रण हुआ है जो समाज-सेवा या तो मात्र मन बहलाव के लिये करते हैं अथवा यश-प्राप्ति के लिये । विवाह से पूर्व सुधाकर सामाजिक आन्दोलनों में भाग लेकर कारावास की यात्रा भी करता है । कुन्ती से विवाह करने के पश्चात् सुधाकर सम्पूर्ण समाजसुधार के सिद्धान्तों को भूल जाता है और परम्परावादी गृहस्थ बन जाता है । समाज-सेवी, उन्मुक्त विचारों वाली तथा योग्य पत्नी की इच्छा रखने वाला पति सुधाकर विवाह के पश्चात् पत्नी पर मात्र बन्धन लगाने वाला पति रह जाता है । सुधाकर शब्दों से अवश्य नारी-स्वतंत्रता का कायल है परन्तु स्त्री-स्वतंत्रता को और उसकी समाज-सेवा को पति तथा परिवार के बन्धनों से मुक्त नहीं करना चाहता ।[४]

कुन्ती हठी है । पति का विरोध ही उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की कसौटी है । ग्रामीणजनों की सहायता के लिये जाते समय उसके द्वारा कहे गए शब्दों-

---

१. प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ० ५३५

२. ,, पृ० ५३५

३. ,, पृ० ५३५

४. वृन्दावनलाल वर्मा 'अचल मेरा कोई', पृ० ३६

'मुझे न कोई बाधा है और न कोई मुझको रोक सकता है,' मैं कुन्ती की समाज-सेवा की भावनाएं कम, परिवार की परम्पराबद्ध मान्यताओं के लिए उच्छृंखल विद्रोह अधिक है ।[१]

कुन्ती अचल के साथ ग्रामों में जाती है । ग्रामीण स्त्रियों की दुर्दशा देख कर पुलिसवालों का विरोध करती है । दरोगा को भी फटकारती है ।[२] सम्पूर्ण स्थितियां व्यक्त करती हैं कि कुन्ती में स्त्रीजाति तथा दरिद्र ग्रामीणों के प्रति सहानुभूति है परन्तु इस सहानुभूति में आवेश है, स्थायित्व नहीं है । कुन्ती की समाज-सेवा मात्र पूर्व-प्रेमी अचल का सामीप्य प्राप्त करने तथा परिवार के बन्धनों से ऊबे मन के बहलाव का साधन है ।[३] रूढ़ियों के प्रति उसके विद्रोह में समष्टि के कल्याण की चिन्ता नहीं है वरन् स्वअस्तित्व के प्रति स्वार्थमय मोह है । यही कारण है कि वह न तो सुधाकर में सोई हुई सामाजिक चेतना को जगा पाती है, न स्वयं ही स्थिर-चित्त होकर समाज-सेवा कर पाती है ।

'जीवन की मुस्कान' में ऊषा प्रियम्वदा ने कमलेश और रूपरेखा की वैचारिक भिन्नता को स्पष्ट किया है । रूपरेखा परिवार की अवहेलना कर पृथीश के साथ क्वेटा में भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिए जाती है । क्वेटा-विध्वंस में रूपरेखा को अपने ध्वस्त नारीत्व की झलक मिलती है ।[४] अथक परिश्रम और उत्साह से वह पीड़ितों की सहायता करती है ।[५] रूपरेखा का सृजनात्मक नारीत्व, जो घर में पति और परिवार वालों द्वारा अवहेलित होकर कुंठित हो रहा था, भूकम्प-पीड़ित रोगियों की सेवा में माता के ममत्व की पूर्णता लेकर प्रकट होता है । रूपरेखा विकृत मनोदशा में मानव-सेवा की ओर उन्मुख होती है, परन्तु मानव-सेवा उसके व्यथित और निराश हृदय की तृप्ति होती है । कमलेश रूपरेखा के कार्यों के प्रति तटस्थ भाव रखता है । उसे न तो समाजसेवा में विश्वास है न व्यक्ति के अस्तित्व पर । कमलेश की तटस्थ प्रवृत्ति से रूपरेखा पीड़ित होती है और व्यक्ति की पीड़ा

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा अचल मेरा कोई , पृ० २२६
२. ,, ,, पृ० २३२
३. ,, ,, पृ० २२७, २३२
४. ऊषा प्रियम्वदा - जीवन की मुस्कान, पृ० १५३
५. ,, ,, पृ० १५६

उसे समष्टि के कल्याण की ओर उन्मुख कर देती है ।[१]

## २. क्रान्तिकारी दृष्टिकोण-सम्पन्न राष्ट्रीय भावना –

समाज-सेवा तथा जातीय सेवा में भारतीय जनों के उत्थान का आदेश अवश्य सन्निहित था परन्तु राज्यसत्ता के प्रति विद्रोह नहीं था । समाज-सुधारक जब जान गए कि, भारतीय राजा और जमींदार भी ब्रिटिश-सरकार के हाथ की कठ-पुतली हैं, न चाहते हुए भी उन्हें अपनी प्रजा पर अत्याचार करना पड़ता है तो उसके विरोध का केन्द्र सीधी ब्रिटिश-सरकार बन गई । ग्रामीण-सेवा जब जनजागरण के रूप में नगरों में बुद्धिजीवियों के मध्य प्रकट हुई तब उसने राष्ट्रीयता का रूप ले लिया । इसके अतिरिक्त अंग्रेजों की गोरे-काले की भेदनीति ने भारतीय जनता को विद्रोह करने के लिए बाध्य कर दिया । अब सुधार की भावना, विशेष ग्रामों तक ही सीमित न रह कर भारतीय जनता को अंग्रेजों से मुक्त करने के लिये, राष्ट्रीय क्रान्ति के रूप में प्रकट हुई ।

राष्ट्रीय क्रान्ति के भी दो रूप प्राप्त होते हैं: अहिंसात्मक क्रान्ति और हिंसात्मक क्रान्ति ।

### क. अहिंसात्मक क्रान्ति

प्रेमचन्द के 'रंगभूमि' उपन्यास में यह स्पष्ट हुआ है कि समाज-सेवा किस प्रकार परिस्थितियों में पड़कर राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप ले लेती है । 'कर्मभूमि' उपन्यास की तो मूल प्रेरणा ही महात्मागान्धी का सत्याग्रह आन्दोलन है ।[२] 'कर्मभूमि' का अमरकान्त आदर्शवादी युवक है । देश से गरीबी, अन्धविश्वास और पाखण्ड को हटाने के लिये अमरकान्त व्यापक क्रान्ति की आवश्यकता समझता है-- 'ऐसी क्रान्ति जो सर्वव्यापक हो, जो जीवन के मिथ्यादर्शों का, झूठे सिद्धान्तों का, परिपाटियों का अन्त कर दे । एक नए युग का प्रवर्तन हो, एक नई सृष्टि खड़ी कर दे ।'[३] अमरकान्त का विद्रोह धर्म और धार्मिक पाखण्डों के प्रति ही नहीं शैक्षणिक

---

१. कुषा प्रियम्बदा, जीवन की मुस्कान, पृ० १६१

२. बिन्दु अग्रवाल- हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण, पृ० १४६

३. प्रेमचन्द, कर्मभूमि , पृ० ६३

संस्थाओं, शिक्षा-प्रणाली और राज्य-कर्मचारियों के प्रति भी है। अमर कहता है -- 'हमारे विद्यालय क्या हैं, राज्य के विभाग हैं और हमारे अध्यापक उसी राज्य के अंग। वह खुद अंधकार में पड़े हैं, प्रकाश क्या फैलाएंगे।'[1] वर्तमान स्थिति से घृणा करने वाला अमरकान्त कल्पित राज्यकर्मचारी, गुरुजन और राज्य-व्यवस्था की कल्पना करने लगता है।[2] अमर का विद्रोही हृदय परीक्षा की भी अवहेलना कर देता है क्योंकि 'जीवन को सफल बनाने के लिये वह शिक्षा आवश्यक मानता है परन्तु डिग्री नहीं'।[3] अमरकान्त प्रारम्भ से अन्त तक क्रान्ति की इच्छा रखते हुए भी 'कोरा आदर्शवादी' बना रह जाता है।[4] हरिद्वार के पास के एक गांव में जाकर अछूतों के मध्य रहना, उनकी सेवा करना, पाठशाला खोलना आदि कल्पनाशील युवक की शुद्ध समाज-सेवा की भावना के द्योतक हैं।

'कर्मभूमि' की सुखदा के व्यक्तित्व में शासन है और है नेतृत्व की शक्ति भी। सुखदा अत्याचार सहन नहीं कर पाती, पतिद्वारा उसके पत्नीत्व पर किया गया अत्याचार हो अथवा शासक वर्ग का गरीब जनता पर, वह खुलकर उसका विरोध करती है।[5]

भावावेश में घर का बन्धन छोड़ कर गोलियों के सामने खड़ी होने वाली नारी का चित्रण सुखदा के रूप में पहली बार सफलता पूर्वक हुआ है। सुखदा का चित्रण इतना सजीव हुआ है कि उस युग की क्रान्तिकारी नारी अपने समूचे व्यक्तित्व के साथ स्पष्ट हो जाती है। निरीह जनता के लिए उत्सर्ग की भावना सुखदा में प्रारंभ से ही है। मुन्नी के साथ अंग्रेज सिपाहियों द्वारा किये गये बलात्कार की कथा सुनकर वह दु:खी हो जाती है और नारी के प्रति होने वाले अत्याचारों के लिये सुखदा की आत्मा तड़पने लगती है। गर्भावस्था में भी वह शान्ति से नहीं लेट पाती। अमर की

---

१. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ० १०४
२. ,, पृ० १०४
३. ,, पृ० १०४
४. ,, पृ० १४२, १७२
५. ,, पृ० २१६

लचर नीति से चिढ़ कर वह कहती है --"ऐसी दशा में जो शान्ति से लेटे वह मृतक है। इस देवी के लिये मुझे प्राण भी देने पड़े तो खुशी से दूँ। नारी के लिये नारी के हृदय में जो तड़प होगी, वह पुरुषों के हृदय में नहीं हो सकती।"[१]

उपर्युक्त प्राणोत्सर्ग की भावना निरीह जनता का पक्ष लेकर उसे गोलियों के सामने खड़ा कर देती है। सुखदा की नेतृत्व शक्ति, जिससे अमर घबराता था, दीन-जनों के उखड़े कदमों का बल बन जाती है।[२] सुखदा का नेतृत्व और मजूरों का प्राणोत्सर्ग पुलिस वालों को गोलियाँ बन्द करने के लिये बाध्य कर देता है।[३] क्षणों में सुखदा का दर्पपूर्ण व्यक्तित्व उसे नगर-नेत्री बना देता है। विलासिनी सुखदा अब तपस्विनी बन जाती है।[४] परन्तु सुखदा सम्पत्ति का बहिष्कार नहीं करती वह अपने धन का सदुपयोग करना चाहती है। शान्तिकुमार का सहयोग पाकर सुखदा मुहल्ले-मुहल्ले में सेवाश्रम की स्थापना करती है और मादक वस्तुओं को बन्द करवाने के लिये आन्दोलन करती है।[५] दरिद्र जनता के लिये आवास-निर्माण का कार्य भी अपने हाथों में लेती है और बोर्ड के मेम्बरों से सहयोग देने की प्रार्थना भी करती है। म्यूनिसिपल बोर्ड के मेम्बरों द्वारा प्रस्ताव की अवहेलना होते देखकर वह एक-एक द्वार पर जाकर चेतना फूंकती है और सम्पूर्ण नगर में असहयोग आन्दोलन के रूप में एक सफल हड़ताल का आयोजन करती है। हड़ताल के आयोजन के परिणामस्वरूप उसे जेल जाना पड़ता है।[६]

सुखदा द्वारा सम्पादित क्रान्ति में जो त्वरा है उसके द्वारा कथाकार ने नारी के चैतन्य रूप को स्पष्ट किया है। नारी; जो अपने अधिकारों के प्रति सचेत है, नागरिकों के अधिकारों के प्रति सचेत है, शासक वर्ग के अधिकारों के प्रति सचेत है साथ ही अपने कर्त्तव्यों के प्रति भी सचेत है। अमर क्रान्ति चाहता है परन्तु उसके पास

---

१. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ० ५८
२. ,, पृ० २१०
३. ,, पृ० २११
४. ,, पृ० २१२
५. ,, पृ० २३३
६. ,, पृ० २६३, २७२

चेतना की त्वरा का अभाव है, उसकी प्रकृति कर्तव्योन्मुखी होने के साथ ही पलायन-वादी भी है। समाज और परिवार को समन्वयात्मक रूप से लेकर चलने की जो क्षमता सुखदा में है वह अमर में प्राप्त नहीं होती। अन्त में अमर सुखदा के जेल चले जाने के पश्चात् उसके अधिकार-पूर्ण व्यक्तित्व के आगे झुक जाता है। वस्तुतः अमर जिस अहिंसात्मक जनक्रान्ति की कल्पना अपने छात्र-जीवन में किया करता था उसका क्रियात्मक और त्वरित रूप सुखदा द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चल कर ही प्राप्त कर पाता है। सुखदा के विद्रोहात्मक जीवन से प्रेरणा लेकर अमर भी ग्रामीण-जनों का पक्ष लेकर सरकार का विरोध करता है और जेल जाता है।[1]

सरकार का विरोध ही अमर के जीवन में उसकी कल्पित क्रान्ति का प्रारम्भ है।

यशपाल के 'मनुष्य के रूप,' 'देशद्रोही' और भगवती चरण वर्मा के 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में ऐसे दम्पती की रचना हुई है जो राष्ट्रीय क्रान्ति में सक्रिय भाग नहीं लेते परन्तु क्रान्ति के प्रभाव से प्रभावित हैं इसके साथ ही राष्ट्रीय आन्दोलनों और परिस्थिति के विषय में अपनी स्वतंत्र धारणाएं रखते हैं।

'मनुष्य के रूप' में यशपाल ने १६४२ के पहले की राष्ट्रीय स्थिति का चित्रण किया है। नर तथा नारी की राष्ट्रीय भावना को इस उपन्यास में राजनीतिकदलों के परिप्रेक्ष्य में उभारा गया है। मनोरमा कम्युनिस्ट है और सुतलीवाला पूंजीपति। मनोरमा राष्ट्रीय संघर्ष को सामने रख कर भारतीय जनता के मन में क्रान्ति उत्पन्न करने का प्रयत्न करती है उस समय सुतलीवाला पूंजीवादी संघर्ष की रूपरेखा मनोरमा के समक्ष रखता है।[2] साम्यवादी मनोरमा को कम्यून में काम करने, भूषण के साथ चन्दा वसूल करने तथा राष्ट्रहित में लगी कम्युनिस्ट पार्टी के लिये काम करने में जो सुख और सन्तोष मिलता है वह पति के व्यभिचार से कमाई गई सम्पत्ति के उपभोग और विलास में नहीं मिलता।[3] पति-पत्नी की स्वतंत्र धारणाएं उन्हें सम्बन्ध-विच्छेद करने के लिए बाध्य कर देती हैं।

---

१. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ० ३१८

२. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ० २१४

३. ,, ,, पृ० २१४

पूँजीवाद और साम्यवाद का वैचारिक संघर्ष एक घर में रहनेवाले पति-पत्नी के मध्य उत्पन्न होते हुए तनावों के रूप में 'देशद्रोही' उपन्यास में उभरा है। जिस समय इस उपन्यास की रचना हुई उस समय राजनीतिक पार्टियों के आन्दोलनों का प्रभाव व्यापारी-वर्ग पर पड़ रहा था। साम्यवादी एक तरफ नारा लगाते थे कि मजदूरों की तनख्वाहें बढ़ाई जायें और दूसरी तरफ व्यापारी वर्ग का, वस्तुओं की कीमत बढ़ाने पर, विरोध करते थे।

चन्दा और राजाराम ऐसे दम्पती हैं जो व्यापारी-वर्ग से सम्बद्ध हैं। डा० खन्ना कम्युनिस्ट हैं। चंदा डा० खन्ना से विचारों से प्रभावित होती है। चन्दा गृहिणी है, पति का विरोध वह नहीं करती फिर भी पति को समझाना अपना कर्तव्य मानती है। राजाराम और खन्ना के मध्य हो रही बहस का अन्त करने के उद्देश्य से वह कहती है - 'हटाओ परे बढ़ा दो मजदूरी। काम रुकने में तुम्हारी भी तो हानि ही है।'[१] परन्तु राजाराम चन्दा की बात को साम्यवाद द्वारा फेंकी गई चुनौती के रूप में स्वीकार करता है। तर्क के लिये तैयार होकर कहता है -'वाह-वाह मजदूरी बढ़ा दो। क्या बक्सों का दाम भी बढ़ जायेगा ? जो लोग अपने माल के दाम बढ़ा सकते हैं उन्हें मजदूरी बढ़ाने में क्या है ? हमारा नुकसान कहाँ से पूरा होगा ?'[२] चंदा मजदूरों का पक्ष लेकर तर्क देती है। राजाराम तर्क से उत्तेजित हो जाता है -'रोजगार में जैसा परता पड़ेगा वैसी मजदूरी दी जायेगी। कोई अपने घर से थोड़े दे देगा। बिजनैस की समझ भी है चली हैं सोशलिस्ट बनने।'[३] राजाराम द्वारा प्रस्तुत तर्क में चन्दा के विचारों के लिए भर्त्सना प्रकट होती है। समाज में नारी-स्वातंत्र्य के लिए आन्दोलन हो रहे थे परन्तु घरों के अन्दर पत्नियाँ पति की प्रभुता स्वीकार करने के लिए बाध्य थीं। चंदा की नगण्यता सिद्ध करने के लिये राजाराम कह देते हैं -'तुम्हारा बीच में बोलने का क्या मतलब ?'[४] अर्थात् घर की चारदीवारी

---

१. यशपाल, देशद्रोही, पृ० २३५
२. ,, पृ० २३५
३. ,, पृ० २३५
४. ,, पृ० २३६

के अन्दर भी पत्नी अपने विचारों को प्रकट करने के लिए स्वतंत्र नहीं थी ।

राजाराम और चन्दा न तो राजनैतिक पार्टियों से सम्बन्धित हैं, न ही किसी प्रकार के सामाजिक आन्दोलन में भाग लेते हैं, फिर भी राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रभावित होने के कारण परस्पर विरुद्ध मतों को स्वीकार कर तर्क करते हैं, जिन तर्कों से कोई निर्णय नहीं निकलता परन्तु उनका अन्त परिवार में तनावपूर्ण स्थिति के रूप में होता है ।

'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में भगवतीचरण वर्मा ने विचार-स्वातंत्र्य के कारण उत्पन्न विषम स्थिति का चित्रण किया है । उमानाथ कम्युनिस्ट हैं । वे विदेश में कम्युनिस्ट हिल्डा के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर विवाह करते हैं । कम्युनिस्ट सिद्धान्त के अनुसार पति-पत्नी के अधिकार समान हैं, वे परस्पर स्वतंत्र हैं । उमानाथ द्वारा स्त्री-स्वतंत्रता और पत्नी के स्वतंत्र व्यक्तित्व और साम्यवादी सिद्धान्तों पर दिया गया लम्बा-चौड़ा वक्तव्य, सामाजिक होती हुई तथा स्वतंत्र विचार रखने वाली, पत्नी के ऊपर किया गया व्यंग्य है ।[१] पत्नी स्वतंत्र रहना चाहती है, पति के अधिकारों को स्वीकार नहीं करना चाहती है साथ ही पति से आशा रखती है कि पत्नी के प्रति पति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करे ।[२] वस्तुत: हिल्डा और उमानाथ ऐसे ही दम्पति हैं जो विचारों के और व्यक्तित्व की स्वतंत्रता के कायल हैं, साम्यवादी सिद्धान्तों को ढोते हैं, जनकल्याण की भावना से प्रेरित होकर सामाजिक संघर्ष में भाग लेते हैं परन्तु उनमें पति-पत्नी की परस्परता का अभाव है ।

ख. हिंसात्मक क्रान्ति

जैनेन्द्र का 'सुखदा' उपन्यास भारतीय-राजनैतिक क्रान्ति की उस पृष्ठ-भूमि में सम्पन्न हुआ है जब कि हिंसावादी क्रान्तिकारी ब्रिटिश-सरकार को आतंकित

---

१. भगवती चरण वर्मा - टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृ० १०६

२. ,, ,, पृ० १०७

कर देश छोड़ने के लिए बाध्य करने का प्रयत्न कर रहे थे। सरकारी खजाने लूटना, अंग्रेजों की हत्या करना, बम चलाना, रेल की पटरियां उखाड़ना आदि क्रियाएं गरम दल द्वारा सम्पादित हो रही थीं।

'सुखदा' की सुखदा राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है। क्रान्तिकारी दल जो विद्रोह और विध्वंस में विश्वास रखता था उसका प्रभाव जनता और सरकार पर समान रूप से पड़ रहा था। सुखदा भी क्रान्तिकारियों से प्रभावित होती है, वह क्रान्तिकारियों के षड्यन्त्रों में सहयोग देती है। सभाओं में जाती है और साथ ही उनका नेतृत्व भी करती है।[१]

राष्ट्रहित में लगी अत्यधिक सामाजिक होती हुई पत्नी और पत्नी के प्रति एकनिष्ठ पति के नीरस होते हुए दाम्पत्य-जीवन के कुछ मार्मिक चित्र जैनेन्द्र ने प्रस्तुत किये हैं। अत्यधिक सामाजिक होने के पश्चात् सुखदा पति के साथ कुछ समय देना चाहती है, जिससे परिवार की सरसता लौट आये, उसी समय राष्ट्रहित सुखदा को परिवार से दूर खींच ले जाता है और पति तथा पुत्र अपने आप में सिमटे हुए अकेले रह जाते हैं। 'शाम को जरूरी मीटिंग थी। हरीश ने अनुरोधपूर्वक मुझे बुलाया था। पहले सोचा था कि अगले दिन घूमने चलेंगे। सिनेमा भी जायेंगे।.....'

'हूं, आज देर हो गई। बस भई कुछ पूछो मत। तो कहो, आज चलने की पक्की है न ? देखो तुमने कल आज के लिये कहा था'

मैंने कहा -'आज नहीं, अब फिर कल।'

'क्यों, अब फिर देश का मामला आ गया क्या ?

मैंने कहा-'तुमको क्या मालूम ? छः बजे मीटिंग थी, लेट हो गई हूं।'

'जाना जरूरी है ?'

मुझे उनका यह पूछा जाना अच्छा न लगा। मेरी समझ में न आया कि देश किस तरह किसी के लिये मजाक का विषय हो सकता है।..... और, सच कहती

---

१. जैनेन्द्र -'सुखदा', पृ० ३३

हूं जाते-जाते मेरे मन में भाव उठने लगे कि गिरस्ती बस निरी झंझट है । और मानों मैंने अपने को कहा कि उन वीरों को देखो जो देश पर कुर्बान होते हैं, राष्ट्र की आज़ादी जीतते हैं ।[१]

उपर्युक्त वार्तालाप से स्पष्ट होता है कि राष्ट्र और परिवार में साम्य स्थापित न हो पाने पर राष्ट्रसेवा पति-पत्नी के सरस क्षणों को नष्ट कर देती है । अन्तिम भाग से सुखदा की राष्ट्र-सेवा के उद्देश्य की स्वपनीयता स्पष्ट होती है । सुखदा राष्ट्रहित के लिये नहीं वरन् परिवार के बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए राष्ट्र-सेवा करती है । सुखदा घर-घर जाकर नवजागरण का मंत्र फूंकती है —जेवर पहनने के ये दिन नहीं हैं ।..... पर्दा छोड़ो, पतियों की गुलामी मत करो, देश की स्वतन्त्रता में हाथ बटाओ ।[२]

क्रान्तिकारी दल का साथ देने में सुखदा परिवार और पति से अलग हटती जाती है । उसके लिये यह आवश्यक नहीं रह गया था कि पति क्या चाहते हैं और उसके विषयमें क्या सोचते हैं इस पर भी वह ध्यान दे, उसके लिए तो यही प्रमुख था कि वह क्या चाहती है और क्या सोचती विचारती है ।[३]

सुखदा के जीवन में विचार-स्वातंत्र्य की पूर्ण सुरक्षा हुई है । पति उसके विकास में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं उत्पन्न करता । परन्तु सुखदा सामाजिक रूप से सफल होते हुए भी आत्मिक रूप से सन्तुष्ट नहीं हो पाती । इसका मुख्यकारण है कि सुखदा शुद्ध भावनाओं से राष्ट्रहित में समर्पित नहीं होती वरन् पति का तिरस्कार ही उसके जीवन का उद्देश्य है । इसलिए सुखदा का व्यक्तित्व क्रान्तिकारियों को उस रूप में प्रस्तुत नहीं कर पाता, जो शुद्ध रूप से स्वाधीनता के पुजारी थे, जिनमें उत्सर्ग की भावना अत्यन्त पवित्र स्तर पर प्राप्त होती है ।

---

१. जैनेन्द्र- सुखदा, पृ० ३६,४०
२. ,, पृ० २८
३. ,, पृ० ३०

३. राजनीति में सक्रिय सहयोग

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् ख्याति प्राप्त राष्ट्र-सेवक-वर्ग जन-सेवा का फल प्राप्त करने के लिये लालायित हो उठा। जन-सेवा के उच्चादर्शों को त्यागकर नेतागण राज्यसत्ता प्राप्त करने के लिए राजनीतिक क्षेत्र में आ गये। पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों ने भी राजनीति में सक्रिय सहयोग दिया।

'झूठा सच' में जयदेव पुरी और कनक ऐसे पति-पत्नी हैं, जो एक साथ एक ही प्रकार का कार्य करते हैं, दोनों का उद्देश्य एक है, सिद्धान्त एक है परन्तु विचारों के क्रिया रूप में परिणत होते समय उनमें भी भिन्नता आ जाती है। सरकार की नीतियों की आलोचना करना कनक के जीवन का लक्ष्य है। कनक अपने विचारों को 'नाज़िर' पत्र के माध्यम से जनता तक पहुंचाना चाहती है। कनक के लेखों में भारतीय कांग्रेस की आलोचना पुरी के राजनीतिक व्यक्तित्व को प्रभावित करती है।[1] जयदेव पुरी कनक के विचारों को दबाने के लिये पति के अधिकारों का प्रयोग करता है। कनक अपनी आत्मा की आवाज़ दबा कर विचारों को कुचल कर परिवार की शान्ति बनाये रखने का प्रयत्न करती है।[2]

'एक और मुख्य मंत्री' का अरविन्द गुलाब के साथ विवाह ही इसलिए करता है कि उसकी राजनीतिक स्थिति दृढ़ हो जाये। अपहृता रिफ्यूजी कन्या से विवाह करके अरविन्द रिफ्यूजी पंजाबियों की सहानुभूति प्राप्त करता है।[3]

अरविन्द शची को राजनीति में उतारता है परन्तु गुलाब को घर की चार-दीवारी के भीतर तक ही सीमित रखता है। राजनीति तथा अपने व्यक्तिगत जीवन में भी अरविन्द गुलाब का हस्तक्षेप सहन नहीं कर पाता है। गुलाब को राजनीति के

---

१. यशपाल 'झूठा सच', पृ० ५१६
२. ,, पृ० ४११
३. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र 'एक और मुख्य मंत्री', पृ० ६८

विषयों पर बातचीत करते देख कर शची फौरन रोक देती है -"राज्य की परेशानियों पर मैं नहीं जानी चाहिए, आप तो बताइये बच्चे कैसे हैं ?'[१] गुलाब अपनी निरीह स्थिति का अनुभव करती है। सुख और सम्मान की चकाचौंध में घुटने वाली पत्नी के उच्छ्वास गुलाब द्वारा कथित इन वाक्यों में प्रकट होते हैं -"मैं अच्छी हूं। शची जी, मैं एक मुख्य मंत्री जी की पत्नी हूं। मुझे क्या दु:ख हो सकता है ? सुखों से घिरी हूं मैं।"[२] जैसे-जैसे अरविन्द सफलता के उज्ज्वलम शिखर की ओर अग्रसर हो रहा था वैसे-वैसे गुलाब एक अजीब आतंक से घिरी जा रही थी। सुख और अतुल सम्पत्ति के बीच उसे एक अबूझ खोखलापन घेरता जा रहा था।"[३]

जहां पत्नियां राजनीति में भाग ले रही हैं, चुनाव लड़ रही हैं, मंत्री बनने का साहस कर रही हैं वहां पति अपने आपको नितांत अकेला अनुभव कर व्यभिचार की ओर बढ़ता है। दिन-दिन-भर बाहर रहने वाली शची जब राजनीति के दांव-पेंच से थकी घर लौटती है तो महेन्द्र बुझे दिल से उसका स्वागत करता है। शची अपना अपराध अनुभव करती है और सोचती है कि पति के प्रति उसके जो कर्तव्य हैं उन्हें वह पूरा नहीं कर पा रही है। अपनी स्थिति की विवशता से भी वह भिज्ञ है। राजनीति में एक बार घुस कर उसके मोह को छोड़ना आसान नहीं है।

महेन्द्र और रजनीगन्धा का सम्बन्ध शची के राजनीतिक जीवन पर प्रभाव डालता है। शची कुशल राजनीतिज्ञ की भांति महेन्द्र और रजनीगन्धा के वक्तव्य अखबारों में निकलवा कर अपनी स्थिति को सम्हाल लेती है।[४] इससे स्पष्ट होता है कि राजनीति से सम्बन्धित दम्पती के चरित्र की पवित्रता की कसौटी समाचार पत्र होते हैं। शची के राजनीतिक जीवन से महेन्द्र को कोई लगाव नहीं है फिर भी पत्नी के पद-गौरव को समझते हुए उसे पत्नी के आगे झुकना पड़ता है। शची और महेन्द्र का सम्बन्ध उन दम्पती का प्रतिनिधत्व करता है जिनको दाम्पत्य-जीवन

---

१. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' एक और मुख्यमंत्री , पृ० २६२
२. ,, ,, पृ० २६२
३. ,, ,, पृ० १६५
४. ,, ,, पृ० ३२६

और चारित्रिक पक्ष भी राजनीति सै सम्बद्ध हौता है । एक सामाजिक आड़ कौ लियै उनकै सम्बन्ध बनै रहतै हैं, पति-पत्नी कै न तौ विचार मिलतै हैं और न उनका जीवन का लक्ष्य ही मिलता है ।

निष्कर्ष

समाज-सैवा, राष्ट्र-सैवा और राजनीति मैं लगै दम्पती कै विचारौं और उनकी विभिन्न स्थितियौं कै पर्याप्त चित्रण हिन्दी कै उपन्यासौं मैं प्राप्त हौतै हैं । दम्पती कै सामाजिक कार्यौं का उनकै दाम्पत्य-जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इसका चित्रण हिन्दी उपन्यासकारौं नै कुशलता सै किया है । विचारौं कै क्षैत्र मैं जहां दम्पती स्वतंत्र हैं वहां स्वतंत्र विचार उनकै दाम्पत्य-जीवन मैं कभी विषम स्थिति उत्पन्न कर दैतै हैं और कभी स्थिति सामान्य बनी रहती है । विचार-वैभिन्य की स्थिति मैं अधिकतर दाम्पत्य-जीवन कै तनावपूर्ण चित्रण ही प्राप्त हौतै हैं । दाम्पत्य-जीवन की पूर्णता उपन्यासौं मैं उन्हीं स्थलौं पर प्राप्त हौती है जहां पति-पत्नी कै विचारौं मैं सामंजस्य है । राजनीति सै सम्बद्ध जिन दम्पती का चित्रण प्राप्त हौता है, उनमैं दाम्पत्य-जीवन का विश्वास और मधुरता ~~प्राप्त~~ परिलक्षित नहीं हौती है । समाज-सैवा मैं रत, राष्ट्रीय आन्दौलनौं मैं लगै हुए तथा राजनीति कै दांव-पैंच मैं उलझै हुए स्त्री-पुरुषौं कै दाम्पत्य-जीवन पर हिन्दी कै उपन्यासकारौं नै पर्याप्त प्रकाश डाला है ।

# पंचम अध्याय

## हिन्दी उपन्यासों में दम्पती का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

१. प्रेमचन्द कालीन उपन्यासों में वर्णित पति-पत्नी का संस्कारगत मानस

२. १९३६-१९६० तक के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में दमित वासनाएं

३. समसामयिक उपन्यासों में आधुनिक मूल प्रवृत्यात्मक जीवन का समावेश

४. निष्कर्ष

परिस्थितियों/प्रभावित होकर व्यक्ति के शरीर, बुद्धि तथा मन में विशेष प्रकार की प्रतिक्रियाएं उत्पन्न होती हैं, जो जीवन की घटनाओं को नया मोड़ देती हैं। व्यक्ति के जीवन में आने वाले मोड़ों के कारण को हम तीन प्रकार से जान सकते हैं --

१. व्यक्ति के कार्य-व्यापार से

२. विचारों के प्रगटीकरण से

३. अन्तर्द्वन्द्व से

कार्य-व्यापार से हम व्यक्ति के मनस् की भलक स्पष्टत: प्राप्त नहीं कर पाते। विचारों पर मनुष्य नियंत्रण करता है, इसलिए विचारों का प्रगटीकरण व्यक्ति के व्यक्तित्व को द्योतित करने का पूर्ण माध्यम नहीं है। अन्तर्द्वन्द्व ऐसी एकान्त स्थिति होती है, जहां मनुष्य अपने आपको सुरक्षित अनुभव करता है तथा उस पर नियन्त्रण रखने का प्रयत्न भी नहीं करता। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए मुख्य विधि मानसिक विश्लेषण है। मानसिक विश्लेषण के लिए शारीरिक क्रियाएं, विचारों की अभिव्यक्ति तथा अन्तर्द्वन्द्व का समन्वयात्मक रूप लेना आवश्यक है। उपन्यासकार मानसिक विश्लेषण द्वारा ही पात्र के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है।

## १. प्रेमचन्दकालीन उपन्यासों में वर्णित पति-पत्नी का संस्कारगत मानस --

प्रेमचन्द कालीन उपन्यासकारों का मुख्य उद्देश्य सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना था। उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में मानसिक संघर्ष की अपेक्षा बाह्य संघर्ष को महत्व दिया है तथापि मानसिक संघर्ष अवहेलित नहीं हो पाया है। कथाकार जहां भी मनुष्य के हृदय में पैठे हैं वहां उन्होंने पात्र के मर्म को छुआ है, अनुभूत किया है तथा उसकी व्यथा-प्रसन्नता, सुख-दु:ख के स्वयं भागीदार बनकर पात्र की अनुभूतियों को पाठक के लिए हृदयग्राही बनाया है। मानसिक भावों के चित्रण में कथाकार का दृष्टिकोण हस्तक्षेप रखता है यही कारण है कि मानसिक विश्लेषण कभी विशुद्ध आदर्शोन्मुखी हो गया है, कभी यथार्थवादी होते हुए

भी उसे आदर्श की ओर मोड़ दिया गया है।

प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में श्रद्धा और प्रेमशंकर, आदर्श-भावों से युक्त आदर्श-दम्पती हैं, जो अपनी उदात्त भावनाओं के कारण मनुष्य के स्तर से भी ऊँचे उठ जाते हैं। सम्भवतया प्रेमचन्द का आदर्श-मनुष्य की कल्पना का पूर्ण रूप प्रेमशंकर और श्रद्धा हैं।

विदेश से लौटे हुए पति से मिलने में श्रद्धा के समक्ष सामाजिक अनुशासन की दीवार बाधा बन कर आ जाती है। मिलन की तीव्र इच्छा और धार्मिक विश्वास टकराते हैं। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण लेखक ने प्रभावोत्पादक ढंग से किया है।[1] प्रेमशंकर का सामीप्य वह अन्तर्मन से चाहती है, परन्तु धार्मिक निष्ठा दूर हट जाने के लिए बाध्य करती है। प्रेमशंकर को सामने खड़े देखकर श्रद्धा का विवेक शून्य हो जाना, एकात्मक निर्णय न ले पाने पर उत्पन्न हो जाने वाली जड़ता का द्योतक है।

प्रेमशंकर की समाज-सेवा, त्याग तथा प्रेमशंकर के लिए जनता के हृदय से निकलती हुई जय-जयकार, श्रद्धा के हृदय में प्रेमशंकर के प्रति 'श्रद्धा' उत्पन्न कर देती है।[2] 'आज जब से उसने सैकड़ों आदमियों को द्वार पर खड़ा देखा था तभी से उसके मन में यह समस्या उठ रही थी - क्या इतने अन्तःकरणों से निकली हुई शुभेच्छाओं का महत्व प्रायश्चित से कम है? कदापि नहीं। परोपकार की महिमा प्रायश्चित से कदापि कम नहीं हो सकती। बल्कि सच्चा प्रायश्चित तो परोपकार ही है। इतनी आशीषें तो किसी महान पापी का भी उद्धार कर सकती हैं। कोरे प्रायश्चित का इनके सामने क्या महत्व?'[3] श्रद्धा की संकीर्ण धार्मिक निष्ठा परोपकार के असीमत्व में व्याप्त होकर प्रेम के व्यापक रूप में परिवर्तित हो जाती है। अन्त में उसका विवेक दृढ़ निश्चय लेता है- 'ऐसे श्रद्धेय, ऐसे यशस्वी पुरुष को प्रायश्चित की कोई जरूरत नहीं है[4]....।' श्रद्धा की प्रेमशंकर के प्रति श्रद्धा 'भक्ति' में परिणत हो जाती है[5]।

---

१. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ० १११

२. रामचन्द्र शुक्ल-चिन्तामणि, भाग २, पृ० १४ 'जिन कर्मों के प्रति श्रद्धा होती है उनका होना संसार को वांछित है, यही विश्वकामना श्रद्धा की प्रेरणा का मूल है।

३. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ० ३७६

४.५. ,, पृ० ३७६

दूसरा पक्ष प्रेमशंकर का है । प्रेमशंकर का मन प्रारम्भ में नियमित तथा सीमित विचारधाराओं में बंधा हुआ चित्रित किया गया है । भारतीय धार्मिक अंध विश्वासों पर अविश्वास, पत्नी के प्रति असीम आसक्ति तथा अपने सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ता आदि ऐसी प्रवृत्तियां हैं जो प्रेमशंकर को 'त्याग' जैसे व्यापक भाव की भूमि पर नहीं उतरने देतीं । प्रेमशंकर का अन्तर्द्वन्द्व उनके हृदय में उठने वाले भावों को स्पष्ट करता है । श्रद्धा के द्वारा अपने प्रति की गई उपेक्षा उन्हें चिंता में डाल देती है ।[1] क्योंकि श्रद्धा के मोह में बंध कर ही वे विदेश से लौटे थे और यहां यदि श्रद्धा ही उन्हें नहीं अपनाती है तो "फिर मेरा (उनका) जीवन ही नष्ट हो जायेगा -" चिन्ता व्यग्रता का रूप धारण करती है । 'व्यग्रता' में स्थिरता नहीं होती । कार्य के कारण को जानने की प्रबल उत्सुकता होती है । कारण जानने के लिए प्रेमशंकर श्रद्धा के कमरे की तरफ चल देते हैं । श्रद्धा की अनिर्णीत जड़ स्थिति में प्रेमशंकर को अपना तिरस्कार प्रतीत होता है । प्रेमशंकर के हृदय में निराशा उत्पन्न हो जाती है । 'निराशा का मुख्य कारण है कि प्रेमशंकर अपने सिद्धान्तों के प्रति अडिग रहकर श्रद्धा को झुकाना चाहते हैं, क्योंकि श्रद्धा नारी और पत्नी है । श्रद्धा की दृढ़ता प्रेमशंकर के अहंकार को स्वीकार नहीं करती इसलिए प्रेमशंकर निराश हो जाते हैं ।[2]

श्रद्धा को गंगातट की ओर आत्महत्या के लिये जाते देखकर प्रेमशंकर के अहं और प्रेम में द्वन्द्व होता है । अहं दब जाता है तथा सद्भावनाएं उभरती हैं । श्रद्धा का त्याग, धर्म निष्ठा और उसकी निस्वार्थ पतिभक्ति के समक्ष प्रेमशंकर को अपना-सिद्धान्तवाद व्यर्थ लगने लगता है । "माना, प्रायश्चित पर मेरा विश्वास नहीं है, पर उससे दो प्राणियों का जीवन सुखमय हो सकता था । इस सिद्धान्त-प्रेम ने दोनों का ही सर्वनाश कर दिया ।"[3] पश्चाताप प्रेमशंकर को संकीर्ण सिद्धान्त-प्रेम से उठाकर, सहानुभूति, त्याग और समाज-प्रेम के विस्तृत क्षेत्र में पहुंचा देता है ।

---

१. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ० ११०
२. ,, पृ० २१६
३. ,, पृ० २१६

'गोदान' मे होरी और धनिया का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रेमचन्द ने साधारण मानवीय धरातल पर किया है । धनिया और होरी के दाम्पत्य-जीवन की एक स्थिति विशेष रूप से आकृष्ट करती है, । कलह के बाद के क्षणों में होरी और धनिया का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, अपने कृत्यों के प्रति होरी में पश्चाताप की भावना तथा धनिया में पत्नी के पद-गौरव को अभिव्यक्त देने वाला 'मान' ।

समाज से निरन्तर अपमानित और प्रताड़ित होने से होरी का कुचला हुआ अहं, धनिया द्वारा अपना विरोध किए जाते देखकर, सामाजिक प्रतिशोध की भावना से फुंकार उठता है । क्रोधित होरी समाज के सामने निर्बल है । अपने क्रोध का भाजन अबला पत्नी को बनाता है । होरी के क्रोध की कायिक अभिव्यक्ति धनिया की प्रताड़ना द्वारा होती है ।[१] पत्नी को भरे समाज में मारने के पश्चात् क्रोध के शान्त होने पर होरी को अपने कृत्य पर पश्चाताप होता है । 'वह जिसके साथ मैंने पचीस साल गुजारे उसे मारा और सारे गांव के सामने, मेरी नीचता थी,'[२] --इन शब्दों में होरी आत्मभर्त्सना करता है । आत्मभर्त्सना द्वारा वह अपने अपराध को स्वीकार करता है और पश्चाताप के आवेग में उसकी इच्छा होती है कि वह जाकर धनिया से क्षमा याचना करे और कहे -'मैंने तुझे मारा है तो ले मैं सिर झुकाए लेता हूं, जितना चाहे मार ले, जितनी चाहे गालियां दे ले ।'[३]

होरी से प्रताड़ित होकर धनिया का स्वाभिमान अपने अपमान का प्रतिकार होरी की मूक अवहेलना द्वारा लेता है । होरी को बुखार चढ़ता है । बीमार पति के प्रति-पत्नी धनिया बदले की भावना स्थिर नहीं रख पाती, वह सोचती है ' पति जब मर रहा है तो उससे कैसा बैर, ऐसी दशा में तो बैरियों से भी बैर नहीं रहता ।' ' दाढ़ीजार ने मुझे सबके सामने मारा, लेकिन तब से कितना लज्जित है,' के द्वारा पति के ~~सामने उसके~~ प्रति अपनत्व और मान की भावना व्यक्त होती है । होरी की अपराध-स्वीकृति तथा क्षमायाचना धनिया के भाव-प्रवण हृदय में क्षमा का संचार करती है ।[४] प्रेमचन्द के आदर्श-पत्नी-पात्रों के चरित्र का यह प्रमुख भाव

---

१. प्रेमचन्द गोदान, पृ० १०५
२. ,, पृ० ११४
३. ,, पृ० ११४
४. ,, पृ० ११३

श्रद्धा के भावनात्मक पक्ष में पति के प्रति प्रेम, विश्वास और श्रद्धा का भाव व्याप्त है । प्रेमशंकर श्रद्धा के लिए श्रद्धेय से उठकर पूज्य पद पर आसीन हो जाते हैं । होरी और धनिया का प्रेम लौकिक स्तर पर है । धनिया होरी से लड़ती है, फट-कारती है, 'दाढ़ी जार' तक कहती है और अन्त में 'क्षमा' करने का अधिकार भी रखती है । यही है धनिया के प्रेम की मानवीयता ।

'गोदान' की गोविन्दी[1], झुनिया[2] 'तितली' की तितली, 'कुण्डली चक्र' की रतन के मानसिक विश्लेषण में अशिव भावों का विसर्जन तथा शिव भावों की सर्जना प्राप्त होती है ।

'तितली' की तितली की रचना ही प्रसाद ने मानवोपरि स्तर पर स्थित नारी के रूप में की है । परन्तु तितली साधारण नारी भी है । पति के चरित्र पर शंका करना नारी का सहज गुण है जो तितली में प्राप्त होता है । प्रसाद ने 'शंका' का शीघ्र ही निवारण भी किया है । 'शंका' के समय तितली के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण श्लाघ्य है ।[3]

'कुण्डलीचक्र' की रतन का भुजबल के लिये 'त्याग करना, भुजबल के दूसरे विवाह के विषय में जानकर भी शांत रहना, रतन की महान भावनाओं का प्रतीक न होकर, उसकी वासनाओं के दमित होने से उत्पन्न' जीवन के प्रति तटस्थता' तथा 'आत्म-पीड़न' का सार्थक प्रतिबिम्ब है । भुजबल को दूसरे विवाह की स्वीकृति देते समय वर्मा जी ने रतन के मुख पर 'सूखी मुस्कान'[4] दिखाई है, यदि स्वीकृति के पश्चात् रतन की मानसिक स्थिति का वर्णन किया होता तो निश्चित ही सूखी मुस्कान के पीछे रतन की दमित वासना तथा मास्टर अजितकुमार के प्रति रुग्ण आसक्ति, रतन के अवचेतन में प्राप्त होती । लेखक स्त्री के पवित्र स्त्रीत्व पर कलंक नहीं लगा सका ।

---

१. प्रेमचन्द , 'गोदान' , पृ० २७६
२. ,, पृ० २७१
३. जयशंकर प्रसाद-तितली , पृ० १६३
४. वृन्दावनलाल वर्मा, कुण्डली चक्र, पृ० १४४

परिस्थिति वश या स्वभाव वश यदि पति-पत्नी यथार्थ के चपेटे में आते हैं या साधारण स्तर के मनुष्यों की भांति उनकी वृत्तियां तथा कार्य व्यापार चलते, हैं या कहीं-कहीं अवचेतन में दमित वासना उनके क्रोध, प्रेम अथवा अन्य आवेश जन्य परिस्थितियों में प्रत्यक्ष हो जाती है, तो कथाकार उस स्थिति को हटाकर पात्र के मानसिक द्वन्द्व के परिष्कार का मार्ग निकाल लेता है ।

ज्ञानशंकर एक ऐसा पात्र है जो असद् भावों द्वेष, ईर्ष्या, कपट, घमण्ड, अनीति अत्याचार, अनाचार, अविचार आदि से बना होने पर भी पूरे उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में छाया रहता है । ज्ञानशंकर को अन्त में हत्या[1] दिखाने में कथाकार का उद्देश्य 'सत्य की विजय, असत्य का नाश' जैसा लगता है परन्तु ज्ञानशंकर की असद् वृत्तियों के चित्रण में कथाकार ने आत्मीयता बरती है इसमें सन्देह नहीं ।

ज्ञानशंकर 'लोभी' प्रवृत्ति का है । धन के प्रति लोभ होने से उसे प्रत्येक धनवान से ईर्ष्या होती है । धन के लोभ के कारण ही वह चाचा का 'अविश्वास' करता है, भाई पर शंका करता है तथा ससुर से ईर्ष्या करता है। लोभी व्यक्तित्व की अपार सहनशीलता भी ज्ञानशंकर में परिलक्षित होती है । पत्नी, भाभी, श्वसुर तथा समाज के द्वारा अवहेलना और मूक अपमान प्राप्त होने पर भी वह धन के लोभ को नहीं छोड़ता है । धन के लोभ में ही वह गायत्री के साथ प्रेम का स्वांग भरता है । पुत्र मायाशंकर द्वारा सम्पत्ति का तिरस्कार किये जाने पर ज्ञानशंकर को अपने व्यतीत लोभवृत्ति परक जीवन पर विचार करके 'ग्लानि' होती है । 'लज्जा' के कारण वह समाज में मुंह नहीं दिखा पाता और 'निराशा' की चरम स्थिति में पहुंच कर 'आत्म-हत्या' करता है ।[2]

विद्या के चरित्र का गठन दया, माया, करुणा, त्याग आदि महत् भावों से हुआ है । ज्ञानशंकर के विपरीत विद्या के अन्दर भौतिक सुखों के लिए एक सीमा तक उदासीनता का भाव है । सबसे ऊपर उसके चरित्र का विशेष गुण है पतिभक्ति में विश्वास । पति ज्ञानशंकर का गायत्री के साथ पतन देख कर उसे दु:ख होता है । पति

---

१. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ० ३६६

२. ,, पृ० ४००

के चरित्र पर क्रोध आता है परन्तु क्रोध अक्षम होने के कारण अमर्ष के रूप में प्रकट होता है । विद्या ज्ञानशंकर के कृत्यों के प्रति क्षोभ प्रकट करती हुई कहती है —'तुम इतने नीच, इतने क्रूर, इतने निर्लज्ज, दुर्बल हो । तुमने कहीं का न रखा । तुम्हारे कारण मेरी यह दुर्दशा हो रही है और अभी न जाने क्या होगी । तुम धूर्त हो । न जाने पूर्व जन्म में क्या पाप किया था कि तुम्हारे पल्ले पड़ी ।'[1] विद्या में पात-भक्ति से लेकर ज्ञानशंकर के प्रति उत्पन्न होने वाली घृणा का भाव कथाकार ने अपने शब्दों में व्यक्त किया है ।[2] पति के पतन के लिए ग्लानि में गलती हुई विद्या के आत्मपीड़न को कथाकार ने कुशलता से रखा है —'यह ईर्षा का भाव न था जिसमें अहित चिंता होती है, यह प्रीति का भाव न था जिसमें रक्त की तृष्णा होती है । यह अपने आपको जलाने वाली आग थी, यह वह विघातक क्रोध था, जो अपना ही ओंठ चबाता है, अपनी ही चमड़ी नोचता है, अपने ही अंगों को दांतों से काटता है ।'[3]

वेदना और नैराश्य की चरम स्थिति में पहुंच कर उन्मादग्रस्त विद्या अपने सुहाग की प्रत्येक वस्तु उतार कर खिड़की से बाहर फेंकने लगती है । क्योंकि- जब आग ही नहीं तो राख किस काम की - जब पति से घृणा है तो पति के अधिकार को घोषित करने वाली वस्तुएं भी घृणा का विषय बन जाती हैं । विद्या की आत्म-हत्या[4] आत्मवेदना से उत्पन्न निराशा की चरमस्थिति है ।

मिस्टर खन्ना 'गोदान' के रोमाण्टिक पात्र हैं । जिनके लिए पत्नी भार स्वरूप है । डा० मिस मालती के इश्क में वे पत्नी को बात-बात पर झिड़क देते हैं, मारते भी हैं ।[5] मिस्टर खन्ना की जब मिल जला दी जाती है, परिस्थितियां उन्हें विपन्न कर देती हैं, 'हताश खन्ना को 'निराशा की स्थिति में पत्नी गोविन्दी ही एकमात्र सहारा दिखाई पड़ती है ।' जैसे वह उनके अभागे मस्तक पर हाथ रखकर

---

१. प्रेमचन्द, 'प्रेमाश्रम' , पृ० ३२०
२. ,, पृ० ३२०
३. ,, पृ० ३२०
४. ,, पृ० ३२७
५. ,, गोदान पृ० १८२

उनकी प्राणहीन धमनियों में रक्त का संचार कर देगी ।"[1] इस प्रकार के स्थलों पर प्रायश्चित के भाव का मनोवैज्ञानिक वर्णन देखा जा सकता है ।

'कर्मभूमि' का अमरकान्त भी जन्ना की तरह व्यभिचार [2] के संवेग से प्रेरित है । सुखदा से अतृप्त अमरकान्त सकीना और मुन्नी के नारीत्व पर आकर्षित होता है क्योंकि सकीना और मुन्नी के समर्पण में अमरकान्त की प्रभुता की भावना स्थान प्राप्त करती है ।

'तितली' के मधुबन में भी व्यभिचार का संवेग प्रकट होता है, जब उसका रसिक मन साध्वी पत्नी से हटकर वेश्या मैना की ओर आकर्षित होता है । मैना के प्रति आकर्षण मधुबन के हृदय में पहले से है । तितली के हठी स्वभाव के कारण मधुबन का रूपलोभी मन त्वरित गति से मैना के चंचल स्नेह को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है ।" वह मैना की बात सोचने लगा + "कितनी चंचल, हँसमुख और सुन्दर है, और मुझे....... मानती है ।   मधुबन को शरीर की यौवन भरी सम्पत्ति का सहसा दर्पभरा ज्ञान हुआ ।"स्त्री और मैना सी मन चली । वह तो..... तब इस कूड़ा करकट में कब तक पड़ा रहूँगा ।[3]

'कुण्डलीचक्र' का भुजबल 'लम्पट' ~~और कुप्रवृत्ति~~ प्रवृत्ति का व्यक्ति है । रतन के साथ विवाह करना उसकी धन के प्रति 'लोभवृत्ति' का द्योतक है । विवाह के पश्चात् भुजबल का अपनी साली पूना से विवाह करने की इच्छा रखने में 'व्यभिचार' का भाव मुख्य है । पूना का उद्धार, अपनी विवशता आदि बातें गौण तथा निरर्थक हैं ।

उपर्युक्त उपन्यासों के पात्रों, जन्ना, ज्ञानशंकर, अमरकान्त, मधुबन तथा भुजबल की मानसिक स्थिति का चित्रण यथार्थ मानवीय धरातल पर हुआ है,

---

१. प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, पृ० २७८

२. Adultery :- Some times of an unhappy marriage may drive the spouses apart from each other and into the companionship of other's who can better satisfy their natural human craving for the affection of some fellow beings. Dr. Bhagwan Das, The Science of the Emotions पृ० ११४

३. जयशंकर प्रसाद 'तितली', पृ० १७२

परन्तु कथाकारों के प्रयत्न से उनके नैतिक संवेग 'व्यभिचार' का परिष्करण हुआ है। व्यभिचार शारीरिक स्तर पर नहीं आ पाता, मानसिक स्तर तक ही सीमित रहता है। ज्ञानशंकर के संवेग का परिष्कार आत्महत्या द्वारा,[1] जन्ना की प्रवृत्ति का परिष्कार निराशा तथा क्षमायाचना द्वारा,[2] मधुबन की प्रवृत्ति का परिष्कार विवेक द्वारा[3] तथा भुजबल की प्रवृत्ति का परिष्करण सामाजिक विरोध से उत्पन्न लज्जा द्वारा होता है।[4] प्रेमचन्द तथा जयशंकर प्रसाद की अपेक्षा वृन्दावनलाल वर्मा के पात्र भुजबल का मनोवैज्ञानिक चित्रण अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण से हुआ है।

प्रेमचन्द कालीन उपन्यासों में पत्नी सुमन का मनोवैज्ञानिक चित्रण विशेष स्थान रखता है। प्राचीन परम्पराओं को उपेक्षित कर, नवीन विचारधाराओं से प्रभावित स्वत्व की रक्षा में तत्पर पत्नी के अहं को प्रस्तुत कर प्रेमचन्द ने नारी के उस मानवी रूप को चित्रित किया है जिसमें प्रेम है, मोह है, साथ ही है अहं, जो सम्मान का भूखा है। सुमन प्रारम्भ से ही ऊँचे हौसले वाली स्त्री है जिसका विवाह कृपण गजाधर से होता है। सुखोपभोग की अतृप्त इच्छा के कारण सुमन गृहिणी से वेश्या बनती है। वेश्या के द्वार तक कथाकार सुमन को सुविधापूर्वक नहीं ले जा पाया है। नारी, वह भी पत्नी और गृहिणी, से नवीन युग की क्रान्ति करवाने में कभी लेखक यथार्थ वृत्तियों का चित्रण बड़ी तन्मयता से कर गया है, उसे अपने आदर्श की बलि चढ़ानी पड़ी है और कभी उसका आदर्श छुपे रूप में मुखरित हुआ है। सुमन का अन्तर्द्वन्द्व गृहणीत्व और वेश्यात्व के प्रति आकर्षित होने वाली इच्छाओं के द्वन्द्व, ~~गृहिणीत्व~~ को प्रकट करता है।[5] गृहिणी की दासी जैसी स्थिति तथा वेश्या का समाज में सम्मान, सुमन को गृहस्थ जीवन से उदास कर देता है।

---

१. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ० ४००

२. ,, गोदान, पृ० २७८

३. प्रसाद, तितली, पृ० २५६

४. वृन्दावनलाल वर्मा, कुण्डलीचक्र, पृ० २१५

५. प्रेमचन्द, सेवासदन, पृ० ५५,५६, ६२

भोली वैश्या का मन्दिर में प्रवेश देख कर सुमन को अपनी धर्म-साधना व्यर्थ लगती है। धर्म-साधना की व्यर्थता का तथा दरिद्रता का बोध सुमन में हीनता-ग्रन्थि का निर्माण करता है। हीनता-ग्रन्थि से प्रेरित सुमन प्रभुता प्राप्त कर समाज में सम्मानित पद प्राप्त करना चाहती है।[१]

गजाधर द्वारा घर से बहिष्कृत की गई सुमन का स्वाभिमान आहत हो जाता है। गृहिणी की गृहस्थी में नगण्यता अनुभव कर सुमन का अपमानित स्वाभिमान पुरुष के स्वामित्व के प्रति विद्रोह कर उठता है।[२] सुमन का स्वाभिमान मिथ्या आत्मविश्वास से भर कर 'वह अब मेरा मुंह भी नहीं देखना चाहते, तो फिर क्यों उन्हें मुंह दिखाऊं, क्या संसार में सब स्त्रियों के पति होते हैं? क्या अनाथाएं नहीं हैं, मैं भी अब अनाथा हूं,'[३] सुमन को गृहस्थी की चौखट से हटाकर भोली के द्वार पर ले जाता है।

भोली के द्वार पर पहुंच कर सुमन के हृदय में पुन: अन्तर्द्वन्द्व प्रारम्भ होता।[४] गृहिणीत्व उसे घर छोड़ देने पर दु:खी करता है तथा आत्मसम्मान के छद्मवेश में बैठी अतृप्त वासनाएं पुरुषों द्वारा सम्मानित भोली के वैभव की ओर आकर्षित करती हैं। अन्त में असंस्कारिक भावनाओं और वैभव के प्रति आकर्षण की विजय होती है। संस्कार बद्ध मनस् के चिन्तन की परम्परा में सुमन का विद्रोही मनस् एक नवीन मार्ग का अन्वेषण करता है जो अशिव है परन्तु तथ्य है। आगामी नारी के स्वायत्त व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब सुमन के व्यक्तित्व में प्राप्त होता है।

## २. १९३६- १९६० तक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में दमित वासनाएं –

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का शिल्पीकरण प्रेमचन्द कालीन उपन्यास-लेखन की परम्परा से भिन्न मार्ग पर हुआ। चरित्र-प्रधान तथा घटना-प्रधान उपन्यासों में

---

१. प्रेमचन्द - सेवासदन, पृ० २९

२. ,, पृ० ५५

३. ,, पृ० ५०

४. ,, पृ० ५६

व्यक्ति के बाह्य रूप और घटनाओं पर विशेष बल था, मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों को अभिव्यक्त कर मनुष्य के जीवन की घटनाओं और चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मानसिक विश्लेषण पद्धति पर किए गए अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण मनुष्य के चरित्र तथा जीवन दर्शन को अभिव्यंजित करते हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य अचेतन मन का मनुष्य के व्यक्तित्व पर प्रभाव दिखाना है। जैनेन्द्र आदि उपन्यासकार फ्रायडी अवधारणा से परिचित हो चुके थे। फ्रायड के 'कामवृत्ति' का मानव-जीवन पर प्रभुत्व' सिद्धान्त को मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में दिखाया है। कामवृत्ति की प्रभुता और उसके दमन से उत्पन्न असाधारणता से प्रेमचन्द परिचित नहीं थे, ऐसी बात नहीं है। 'सेवासदन' में दरोगा श्रीकृष्णाचन्द कारावास से सजा भोग कर वापस आते हैं। पत्नी का देहान्त हो चुका है। सहानुभूति तथा प्रेम से अतृप्त दरोगा साहब के जीवन में असाधारणता आ जाती है। प्रेमचन्द ने श्रीकृष्णा चन्द्र के अशोभनीय कृत्यों का एक मात्र कारण उनकी दमित होती हुई कामवासना बताया है।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दमित कामवासना प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी परिलक्षित होती है भले ही वह फ्रायड के अचेतन मन के सिद्धान्त से परिचित न हों। मनोवैज्ञानिक उपन्यास अचेतन और उसमें दमित कामवासनाओं के सिद्धान्त को प्रतिपादित तथा परिलक्षित करने का माध्यम हैं। कामवृत्ति (लिबिडो) समाज तथा नैतिक बन्धनों के नियन्त्रण से दमित हो जाती है और दमित होकर अचेतन में पड़ जाती है, जहाँ से वह अपने मूलरूप में बाहर नहीं निकल पाती। दमित वासनाएँ चेतन में आने का प्रयत्न करती हैं तथा प्रहरी (सेन्सर) को धोखा देकर परिवर्तित रूप में बाहर निकलती हैं। यह दिवास्वप्न, कल्पना, स्वप्न तथा भूलों और आवेशजन्य कार्यों में प्रकट होती है। दमितवासनाओं के बाहर न निकल पाने पर मन में ग्रन्थियों का निर्माण होता है जिससे मनुष्य के जीवन में कुण्ठा, निराशा, पीड़न, विध्वंस तथा तटस्थता उत्पन्न होती है।

---

१. प्रेमचन्द - सेवासदन, पृ० १७७

जैनेन्द्र, इलाचन्द जोशी तथा अज्ञेय के पात्रों पर फ्रायड के सिद्धान्तों की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि फ्रायड के सिद्धान्तों के प्रयोग के लिये ही उपन्यास तथा पात्रों की रचना हुई है। सारे पात्र असाधारण हैं, क्योंकि असाधारण व्यक्तित्व में ही विकारों की सर्जना स्पष्ट रूप से हो पाती है। प्रत्येक पात्र अपने ढंग से सामाजिक तथा नैतिक नियमों द्वारा दमित की गई वासनाओं की पूर्ति करता है, जिसका पूर्ण प्रभाव पात्रों के दाम्पत्य-जीवन पर परिलक्षित होता है।

'सुनीता' की सुनीता और श्रीकान्त, 'सुखदा' की सुखदा और सुकान्त, 'कल्याणी' की कल्याणी और डा० असरानी, 'व्यतीत' का जयन्त और 'त्यागपत्र' की मृणाल दमित वासनाओं के कारण असन्तुष्ट और असाधारण दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करते हैं।

'सुनीता' के श्रीकान्त की अस्वाभाविक क्रियाएं व्यक्त करती हैं कि वह असाधारण है। पत्नी की प्रसन्नता के लिए वह हरिप्रसन्न को घर में लाता है तथा हरिप्रसन्न को हर प्रकार से सन्तुष्ट रखने का पूर्ण उत्तरदायित्व सुनीता पर छोड़ देता है।[1] पत्नी तथा मित्र के परिचय में प्रगाढ़ता उत्पन्न करने के लिए ही वह लाहौर में ठहर जाता है।[2] लौटने पर घर में ताला देखकर तथा सुनीता के द्वारा सुन कर कि वह रात में हरिप्रसन्न के साथ जंगल में गई थी, श्रीकान्त के चेहरे पर अंकित होने वाली प्रसन्नता तथा सन्तोष की छाप यह व्यक्त करती है, कि श्रीकान्त यही चाहता था जो घटित हुआ।[3] हरि प्रसन्न के प्रति श्रीकान्त का अन्धा प्यार उसकी समलैंगिक आसक्ति को व्यक्त करता है।[4] समलैंगिक आसक्ति के कारण ही वह सुनीता को सन्तुष्ट नहीं कर पाता और सुनीता के सन्तोष के लिए

---

१. जैनेन्द्र, 'सुनीता', पृ० १३६
२. ,, पृ० १३७
३. ,, पृ० १८५
४. ,, पृ० १,३

'घर में नयी वायु' का प्रवेश करवाता है ।[१]

सुनीता के असन्तुष्ट जीवन से उत्पन्न घर के 'निरानन्द' को वह हरिप्रसन्न के प्रवेश से समाप्त कर देता है ।

सुनीता के हरिप्रसन्न की तरफ आकर्षित होने के दो मुख्य कारण हैं। एक तो पति की आज्ञा दूसरा उसकी अतृप्त वासना । अतृप्त-वासना अधिक प्रबल कारण है । श्रीकान्त सुनीता के नारीत्वको सन्तुष्ट नहींकर पाता । रतिभाव भंग होनेपर सुनीता असन्तुष्ट रहती है[२]।हरिप्रसन्न के बाधा रहित जीवन के'प्रति सुनीता का नारीत्व आकृष्ट होता है । एकान्त जंगल में हरिप्रसन्न के आलिंगन द्वारा सुनीता कामोद्दीप्त हो जातीहै । प्रबल कामाग्नि( Lust )में जलतीहुई सुनीता हरिप्रसन्न द्वारा भोगी जाने के लिए निरावरण होजाती है[3]। आवेशजन्य स्थिति के द्वारा सुनीताके अचेतनमें दमित कामेच्छा(लिबिडो)का पता चलता है जिसे उसका चेतन समाज तथा घर के नियमों में बांध कर नियन्त्रित रखता है, जिसके दमन की अभिव्यक्ति घर के 'निरानन्द' वातावरण द्वारा होती है ।

'सुखदा' की सुखदा का विवाह कान्त से होता है । सुखदा की वैभव तथा दर्पपूर्ण पुरुष-प्राप्ति की इच्छाएं अतृप्त रह जाती हैं । समाज के कड़े बन्धन हैं अचेतन में दमित होकर चली जाती हैं । दमित वासनाएं निकल नहीं पातीं परन्तु सुखदा को हीनता-ग्रन्थि का शिकार बनना पड़ता है । हीनता के विपरीत वह प्रभुता-प्राप्ति का प्रयत्न करती है । अतृप्त इच्छाओं के कारण सुखदा का अचेतन कान्त को अस्वीकार करता है । सुखदा के अचेतन में कान्त के प्रति घृणा बैठ जाती है जो उसके इड और इगो के संघर्ष द्वारा व्यक्त होती है[४]। अतृप्त इच्छाएं और अव्यक्त घृणा बार-बार सुखदा से कान्त का तिरस्कार कराती हैं । पति पर चीख कर, क्रोध करके तथा व्यंग्य करके सुखदा उसे नीचा दिखाने का प्रयत्न करती है ।[५] हीनग्रन्थि से ग्रस्त सुखदा यशप्राप्ति के लिए गृहस्थी, पति तथा सन्तान की अवहेलना कर क्रान्तिकारी बन जाती है । क्रान्तिकारी लाल का पौरुष सुखदा को प्रभावित करता है । लाल द्वारा भी अतृप्त छोड़ी हुई सुखदा अन्त

---

१. जैनेन्द्र,सुनीता, पृ० ७
२. ,, पृ० ७,१५
३. ,, पृ० १८१
४. जैनेन्द्र,सुखदा,पृ० ७२
५. ,, पृ० २३,२४,२६,२८

में टी०बी० की मरीज हो जाती है ।

टी०बी० अस्पताल में पति से न मिलना, पुत्र से न मिलना सुखदा के 'आत्मपीड़न' भाव के रूप हैं ।[१] जीवन में निराशा तथा अतृप्ति पाने वाली सुखदा 'त्याग पत्र' की मृणाल की तरह आत्मपीड़न द्वारा अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त करना चाहती है । मृणाल के आत्मपीड़न में व्यापकता है, वह किसी का अपमान तथा किसी से विद्रोह नहीं करती । मृणाल को परिवार, पति तथा सभ्य समाज द्वारा अवहेलित किया गया है । सुखदा के आत्मपीड़न में आत्मभर्त्सना भी है जो अपने द्वारा की गई, पति तथा परिवार की अवहेलना के लिए 'पश्चाताप' की द्योतक है ।[२]

'व्यतीत' का जयन्त समाज द्वारा बाधित किए गए प्रथम प्रेम के दमन से असाधारण बन जाता है । अनिता के प्रति 'रुग्ण आसक्ति' जयंत को वासनात्मक सम्बन्धों के प्रति तटस्थ बना देती है ।[३] चन्द्री को पत्नी रूप में तथा नग्नअवस्था में देखकर भी वह 'बरफ' बना रहता है ।[४] पत्नी चन्द्री अनिता तथा जयन्त के सम्बन्धों को समझ लेती है । जयंत और अनिता का बिस्तर एक कमरे में लगाकर स्वयं अलग चौके में सो जाती है । जयन्त का अनिता के प्रति वासनात्मक प्रेम घर के एकान्त कमरे में प्रकट होता है ।[५] अनिता का समर्पण जयंत की ग्रन्थियों को सुलझा कर उसके दमित भाव का रेचन करता है, परन्तु वह पत्नी के प्रति साधारण न बन कर भिक्षुक गैरिक वस्त्रों को धारण कर लेता है ।[६]

जैनेन्द्र के पात्रों में कुछ समान मनोवैज्ञानिक विशेषताएं पाई जाती हैं ।

---

१. जैनेन्द्र, 'सुखदा', पृ० १२
२. ,, पृ० १२
३. जैनेन्द्र, व्यतीत, पृ० २
४. ,, पृ० ८७
५. ,, पृ० ९३
६. ,, पृ० १२३, १२४

पहली विशेषता है कि प्रेमिका अथवा नारी पात्रों को पूर्ण नग्न और समर्पित देख कर उन्हीं पुरुष पात्रों की दमित कामवासना का रेचन हो जाता है और पात्र साधारण हो जाते हैं। दूसरी विशेषता है कि पति-पत्नी में वासनात्मक तत्त्वों के लिए पर्याप्त 'अण्डरस्टैण्डिंग' है। सुनीता को अतृप्त जानकर उसकी तृप्ति के लिये हरि प्रसन्न को घर में लाना तथा सम्बन्धों में प्रगाढ़ता जगाने के लिए अकेला छोड़ देना, सुकान्त का सुखदा और लाल का बिस्तर एक साथ लगाना और अपना बिना किसी ईर्ष्या-भाव के अलग सोना, चन्द्री का जयन्त तथा वनिता का बिस्तार एक साथ लगाकर स्वयं चौके में चटाई डाल कर सो जाना, आदि ऐसी क्रियाएं हैं जो एक दूसरे के प्रति सद्भावनाओं को व्यक्त करती हैं, परन्तु साधारण दाम्पत्य-जीवन में असम्भव हैं।

'कल्याणी' उपन्यास के डा० असरानी इतने शंकालु प्रकृति के हैं कि पत्नी के चरित्र पर लांछन लगाना उनकी प्रवृत्ति हो गई है। जरा सी बात पर बीच चौराहे पर पीटना उनके लिए साधारण बात है। कल्याणी की दमित प्रेम-भावना का प्रकटीकरण बातचीत के मध्य होता है।[1] अवचेतन में सुप्त पूर्व-प्रेम की याद तथा वर्तमान में पति की शंका-दृष्टि और अपमान सूचक पत्र कल्याणी के मस्तिष्क में मन्थन उत्पन्न कर देते हैं। प्रस्तुत जीवन से रुष्ट कल्याणी जीवन को बदल देना चाहती है। अर्थात् कल्याणी मृत्यु की कामना करती है। आधुनिका कल्याणी का स्त्री-स्वातंत्र्य का विरोध करना, त्यागी और साधिका का जीवन व्यतीत करना, पति को देवता मानना, भारतीय दर्शन में विश्वास रखना, प्रस्तुत जीवन से निराशा के प्रतीक हैं। आवेश में निकले वाक्य-'तुम क्या चाहते हो, मुझे तिल-तिल कर बेचना चाहते हो?'-कल्याणी के अचेतन में सोई पति के प्रति घृणा को व्यक्त करता है।[2]

मानसिक तनाव के मध्य जीने वाली कल्याणी असाधारणता की कोटि में आ जाती है। दिन में वह स्पष्ट अनुभव करती है कि कोई पति बाथरूम में अपनी गर्भवती पत्नी का गलाघोंट रहा है। फिर वह पदचाप कल्याणी के कमरे तक आकर समाप्त हो जाती है।[3] वास्तव में कल्याणी पति के अत्याचारों से 'अकारण-मृत्यु-भय'

---

१. जैनेन्द्र - कल्याणी, पृ० १३४

२. ,, पृ० ४३

३ पृ० ७४

~~निरसाधारप्रत्यक्षीकरण~~ (हैल्यूसिनेशन) की बीमारी से ग्रस्त हो जाती है। हैल्यूसि-नेशन में कल्याणी ही वह स्त्री है और गला दबाने वाला व्यक्ति डा० असरानी हैं। परन्तु कल्याणी का चेतन प्रत्यक्ष में इस बात को स्वीकार नहीं करता। हैल्यू-सिनेशन की अवस्था में देखे गए दम्पती का 'आरोपण' वह डैक्लालीकर पर कर देती है, जो उसी मकान में पहले किरायेदार थे, जिसमें वर्तमान स्थिति में कल्याणी रह रही है।[१] कल्याणी का संस्कारों से बंधा 'चेतन' पति को कुत्सित नहीं मानता परन्तु अचेतन में बैठी घृणा पति के कुत्सित रूप को हत्यारे के रूप में देखती है। स्त्री की मृत्यु में कल्याणी का मृत्युभय तथा परोक्ष रूप से मृत्यु की कामना प्रकट होती है। अन्त में कल्याणी की मृत्यु-कामना इतनी प्रबल हो जाती है कि वह मृत्यु से अपने को बचा नहीं पाती।[२]

'सन्यासी' का नायक नन्दकिशोर अहंभाव का पुंज है। समाज में अपने अहंभाव की तुष्टि न पाकर वह विध्वंसात्मक प्रणाली को अपनाता है। नन्दकिशोर की विनाशात्मक क्रियाओं का शिकार बनती हैं वे नारियां, जो पत्नी के रूप में पूर्ण समर्पिता बनकर उसके सम्पर्क में आती हैं — यही इस उपन्यास की मार्मिकता है।

नन्दकिशोर का प्रारम्भिक जीवन बड़ा उन्मुक्त, निर्द्वन्द्व और अप्राकृतिक व्यतीत होता है। उसके अन्दर सहानुभूति और ममता की भावनाओं का नितांत अभाव हो जाता है वह स्वार्थी, असहनशील और शंकालु बन जाता है।[३] नन्दकि-शोर के द्वारा ही कथाकार नन्दकिशोर का मानसिक विश्लेषण करवाता चलता है। जयन्ती के प्रथम दर्शन में ही उसके 'नागकन्या' जैसे रूप पर चेतन मोहित हो जाता है[४]। समाज के नैतिक बन्धनों के भय से वह अपनी उद्दाम वासना को प्रकट नहीं करता और संसर्ग की वासना दमित होकर उसके अचेतन में बैठ जाती है। शांति से साक्षात्कार

---

१. जैनेन्द्र, 'कल्याणी, पृ० ६४, ६५
२. ,, पृ० १४०
३. इलाचन्द्र जोशी - सन्यासी, पृ० ८०
४. ,, पृ० १६
५.

मैं नन्दकिशोर की दमित वासना 'प्रेम' का छद्मवेश रख कर चेतन पर छा जाती है[१]। शांति को भगाने में, उससे सामाजिक नियमों के विरुद्ध गांधर्व-विवाह करने में चेतन वासना-रहित प्रेम और अबला-उद्धार जैसी महान भावना को स्वीकार करता है, परन्तु अचेतन अपनी दमित वासना से परिचित है। नन्दकिशोर अपने मानसिक चरित्र का विश्लेषण करते हुए कहता है -"यदि केवल हृदयों का पारस्परिक प्रेम पाना ही हम लोगों के लिये महत्त्वपूर्ण बात थी, तो शान्ति को अपने साथ लाकर समाज तथा संसार के प्रति विद्रोह की घोषणा करके इतने बड़े बखेड़े का भार अपने ऊपर लेने की आवश्यकता ही मुझे क्या थी ?"[२]

नन्दकिशोर मैं हीनता की ग्रन्थि है। प्रभुत्व-कामना के कारण ही वह शान्ति और जयंती पर हावी होता है। परिणामतः गर्भवती शान्ति का परित्याग करता है तथा पत्नी जयंती को आत्महत्या के लिए विवश करता है। आत्म-हीनता के कारण ही वह बलदेव और शान्ति के सम्बन्धों[३] पर तथा जयन्ती और कैलाश[४] के सम्बन्धों पर शंका करता है। आत्महीनता के कारण ही वह जयन्ती से विवाह करता है। नन्दकिशोर स्वीकार करता है कि जयन्ती से मैं इसलिए विवाह करने नहीं जा रहा था कि मैं अपने एकाकी जीवन की अपूर्णता को पूर्ण करूं बल्कि इसलिये कि मुझे इस तेजस्वी नारी के स्वभाव में एक शांत, संयत तथापि दुर्दमनीय गर्व का जो भाव दिखाई दिया था उसे अकारण ही चूर-चूर करने की एक प्रतिहिंसा पूर्ण भावना मेरे मन में समा गई थी।"[५] नन्दकिशोर पर-पीड़न का मरीज है। वह जयन्ती के सामने अपनी तथा शान्ति की प्रेम कहानी कहता है, जिससे जयन्ती में ईर्ष्या या दुःख का भाव जागृत हो।[६] जयन्ती को अपमानित करता है, उसकी

---

१. इलाचन्द्र जोशी - सन्यासी, पृ० ७७
२. ,, पृ० १२६
३. ,, पृ० २०१, २१५
४. ,, पृ० ३८६, ३६५
५. ,, पृ० ३५२
६. ,, पृ० ३८४

अवहेलना करता है, जिससे वह दु:खी हो । परपीड़न की गति का अन्त जयन्ती की आत्महत्या में होता है ।[१]

वृन्दावन लाल वर्मा के 'अचल मेरा कोई' में दम्पती का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है । कुन्ती अचल के प्रति आकर्षित थी परन्तु उसका विवाह सुधाकर से होता है । कुन्ती अपनी वासना को दमित कर अचेतन में डाल देती है और सुधाकर के जोशीले प्रेम तथा वैभव में रह अपनी वासनात्मक प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने लगती है[२]। कुन्ती की वासना उसे कमनीय कलेवर और नृत्य का सहारा लेकर सुधाकर तथा अन्य पुरुषों को मोहित करने का चाल रखती है । सुधाकर स्त्रियों के शील-गुणों का पक्षपाती है ।[३]परन्तु वह विवाह करता है कुन्ती से । कुन्ती की नृत्यकला पर वह रीझता है परन्तु उसे अपने तक ही सीमित रखना चाहता है । सुधाकर का 'इगो' तो स्वीकार करता है कि स्त्री स्वतंत्र है परन्तु 'इड' पुरुष के प्रभुत्व का पक्षपाती है । कुन्ती का अचल से मिलना तथा सुधाकर की इच्छा के विरुद्ध सभा में नाचना, सुधाकर का विरोध करना आदि से सुधाकर के मन में कुन्ती के चरित्र पर शंका उत्पन्न हो जाती है ।[४] सुधाकर के 'इड' और 'इगो' में संघर्ष होता है । कुन्ती के पूछने पर कि सुधाकर को उसका नृत्य कैसा लगा सुधाकर का मूल में 'रंडियों जैसा' उत्तर निकलना उसकी 'इड' की विजय का प्रमाण है ।[५] अन्त में सुधाकर का अचेतन चेतन पर हावी हो जाता है । उसका सुसभ्य व्यवहार अपनी कुंठाओं को यथार्थ रूप में प्रकट करता है । वह प्रकट रूप से कुंती के चरित्र पर सन्देह करता है जिसका भयानक परिणाम कुन्ती की आत्महत्या होता है ।[६]

---

१. इलाचन्द्र जोशी, 'सन्यासी, पृ० ४१०

२. वृन्दावनलाल वर्मा 'अचल मेरा कोई', पृ० १६५

३. ,, पृ० ३६

४. ,, पृ० २१८, २७३

५. ,, पृ० २२०

६. ,, पृ० २७७

'गिरती दीवारें' का नायक चेतन हीनग्रन्थि का शिकार है । चेतन के व्यक्तित्व में हीनताबोध के कारण पाशविकता अथवा दुर्दमनीयता का नहीं वरन् संकोच का भाव उपस्थित होता है । संकोची प्रकृति के कारण ही न तो वह एम०ए० कर पाया और न ही अच्छी सर्विस, यहाँ तक कि उसे पत्नी के रूप में सुन्दर स्त्री की कामना थी परन्तु उसे मिलती है चंदा जैसी 'गुलगुथनी' लड़की ।

साली नीला के प्रथम दर्शन में ही चेतन के हृदय में वासना उत्पन्न होती है । समाज भय से वह वासना का दमन करना चाहता है । प्रारम्भ में उसकी वासना नीला के दर्शन-सुख से ही सन्तुष्ट होती है । क्रमशः वासना विकसित होती है । चेतन का इगो नीला के प्रति वासनात्मक दृष्टिकोण को रोकने का प्रयत्न करता है, क्योंकि वह अपनी पत्नी चंदा के प्रति एकनिष्ठ होना चाहता है[१] परन्तु उसका इड नीला के रूप का लालच देकर उसे वासनात्मक सम्बन्ध के लिए प्रेरित करता है । विवाह के अवसर पर वह नीला के समक्ष अपने प्रेमोद्गार रखने में समर्थ भी हो जाता है, परन्तु नीला का ठंढापन उसे शीघ्र ठंडा भी कर देता है । चंदा के सामने चेतन का इगो अपने अपराध को स्वीकार कर पवित्र होना चाहता है । चेतन स्वीकार करता है कि वह एक साधारण कमज़ोर प्रकृति का आदमी है ।[२]

अनचाही पत्नी के दरबार में रहने वाले तथा साली नीला के प्रति आकर्षित चेतन के 'इगो' तथा 'इड' के अन्तर्द्वन्द्व को लेखक ने एक पत्र के माध्यम से व्यक्त किया है जिसे चेतन अपने अभिन्न मित्र को लिख रहा है ।[३] चेतन के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हीनग्रन्थि से ग्रसित होने के पश्चात् भी चेतन के व्यवहार में अभद्रता नहीं आती । विचारों का संघर्ष उसके मस्तिष्क को मथता है परन्तु हृदय की शान्ति उसे चंदा की गोद में ही प्राप्त होती है ।

डा० धर्मवीर भारती द्वारा रचित 'गुनाहों का देवता' की सुधा को भी हम उपर्युक्त असाधारणता के वर्ग में रख सकते हैं । समाज के बन्धनों के कारण दमित

---

१. उपेन्द्रनाथ अश्क 'गिरती दीवारें', पृ० २८६
२. ,, पृ० ३०६
३. ,, पृ० २८६

वासना सुधा को 'आत्मपीड़न' का शिकार बनाती है । सुधा चन्दर के आग्रह पर कैलाश से विवाह करती है, परन्तु उसी साथ ही उसकी चंचलता, उल्लास और शांति ने उससे विदा माँग ली । सुधा का अहं अपने और चन्दर के सम्बन्धों को वासनात्मक स्तर पर स्वीकार नहीं करता । सुधा कहती है " मैं और चन्दर से विवाह करूँगी ? इतनी घिनौनी बात तो मैंने कभी नहीं सुनी ।"[१] चन्दर द्वारा उपदेशित जीवन में अलगाव दुःख और पीड़ा आदमी को महान बना सकती है "[२] सिद्धान्त को स्वीकार कर ही वह कैलाश से विवाह के लिए तैयार होती है । उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि सुधा का चेतन चंदर के प्रति वासनात्मक सम्बन्ध को अस्वीकार करता है परन्तु अचेतन में वासनात्मक प्रेम है अन्यथा जीवन में अलगाव से दुःख पीड़ा उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

कैलाश से विवाह सुधा के अचेतन के विरुद्ध होता है । अवांछनीय जीवन जीने की अपेक्षा वह मृत्यु का वरण करना चाहती है । विवाह के पश्चात् जप-तप द्वारा शरीर को कष्ट पहुँचाना, स्वाभाविक साहचर्य को 'मूल्य चुकाना' समझना, अनाशन का कष्ट सहना आदि आत्मपीड़न के उदाहरण हैं । मृत्यु की इच्छा सुधा में प्रबलतम रूप में है यही कारण है कि वह अपने को बचा नहीं पाती ।[३]

राजेन्द्र यादव का १९५८ में प्रकाशित 'कुलटा' एक लघु उपन्यास है । 'कुलटा' मनोवैज्ञानिक विचारधाराओं के उसी मोड़ पर है जहां पर प्रेमचन्द का 'सेवासदन' स्थित था । सेवासदन की 'सुमन' यदि मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की 'दमित वासना' को प्रतिबिम्बित करती है तो 'कुलटा' की मिसेज तेजपाल रतिभाव से असन्तुष्ट नारी के असंयमित जीवन को प्रकट करती है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में विवाहित पत्नी दमित वासना के कारण आत्मपीड़न तथा आत्महत्या का शिकार बनी परन्तु कोई ठोस कदम नहीं उठा सकी । 'कुलटा' की मिसेज तेजपाल रतिभाव के भंग होने पर पति को छोड़कर एक प्यानो बजाने वाले के साथ भाग जाती है । मेजर

---

१. धर्मवीर भारती - गुनाहों का देवता , पृ० १६४
२. ,, पृ० १५३
३. ,, पृ० ३७६

तेजपाल के जीवन की पृष्ठभूमि में राजसी परिवार है । प्रिंस आफ वेल्स में उनकी शिक्षा हुई तथा फौज में नौकरी । तीनों स्थितियों ने उन्हें कट्टर नियन्त्रणावादी बना दिया । श्रीमती तेजपाल उन्मुक्त वातावरण में पली स्वतंत्र विचार वाली तथा समाज के व्यंग्यों को धूल के समान झाड़ देने वाली महिला हैं । मेजर तेजपाल श्रीमती तेजपाल के ऊपर रौब जमाने का प्रयत्न करते, 'उनकी उपस्थिति में चाहे कितनी ही झुकी रहती हों, मगर जब भी तेजपाल कुछ कहते, वे कुछ ऐसी उपेक्षा से देखतीं, मानों किसी अपरिचित सिपाही की बेकार बातें सुन रही हों ।'[1]

वायलिन बजाने वाले के साथ भागने का मुख्य मनोवैज्ञानिक कारण है मेजर तेजपाल का रौबीला तथा अफसराना व्यवहार जो रतिक्रीड़ा के समय में भी अफसर ही रहना चाहते हैं । मिसेज तेजपाल को पुरुषत्व की प्राप्ति तो होती है पर उनका रतिभाव सन्तुष्ट नहीं हो पाता । मिसेज तेजपाल के अचेतन में अफसरों के प्रति घृणा[2] बैठ जाती है और वह अफसरों के नियंत्रित जीवन के विपरीत जीवन जीने वाले वायलिन-वादक के साथ भाग जाती हैं । दूसरी ओर मेजर तेजपाल पत्नी द्वारा लगाए गए 'नामर्द' के आरोप को अभिभार्थ लेते हैं । नारी द्वारा उनके पुरुषत्व को इस प्रकार दिया गया चैलेन्ज उनमें भयानक प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है । मेजर तेजपाल असन्तुलित हो जाते हैं । उन्मादग्रस्त अवस्था में वे परेड से भागते हैं, रास्ते में मिली स्त्री पर बलात्कार करते हैं, नर्सों को देखकर अश्लील हरकतें करते हैं ।[3] अन्त में वे विक्षिप्त हो जाते हैं । 'नामर्द' शब्द की भीषण प्रतिक्रिया का एकमात्र उदाहरण मेजर तेजपाल हैं ।

<u>समसामयिक उपन्यासों में मूलप्रवृत्यात्मक जीवन का समावेश</u> --

१९६० के पश्चात् जो उपन्यास लिखे गए हैं उनके पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की भावभूमि पूर्व परम्परा से थोड़ी अलग हटी हुई है । आधुनिकतम समाज में प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र रहना चाहता है, स्वतंत्र भोग करना चाहता है तथा सम्बन्ध-

---

१. राजेन्द्र यादव - कुलटा, पृ० ३२
२. ,, पृ० ७६
३. ,, पृ० १२३

हीन जीवन जीना चाहता है । वैयक्तिकता के दृष्टिकोण ने दाम्पत्यजीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया । दाम्पत्य-जीवन का आधार परस्परता की भावना है । परस्परता के अभाव में सम्बन्धों में शिथिलता , बिखराव, जीवन में ऊब, घुटन तथा व्यभिचार, से दो दम्पती का मानसिक विश्लेषण आज के उपन्यास का सशक्त कथ्य है ।

'अजय की डायरी' में डा० देवराज ने पति-पत्नी के मध्य उत्पन्न तनावों के कारण-रूप में दमित वासना, तज्जनित उच्छृंखलता, असंयम और असंयम से असन्तुलित होने वाली नैतिक बुद्धि को चित्रित किया है । अजय में काम के संवेग का प्रभुत्व है । बिना विशेष परिचय के पाठक ... ... को विवाह के लिये चुन लेना, विवाह के पश्चात् 'हैमा' से प्रेम करना तथा आवेश में हैमा से 'लेट मी हैव ए किस फर्स्ट' का अनुरोध करना,[1] अमेरिका में अपने शारीरिक तनाव को दूर करने के लिए क्रय द्वारा युवती शरीर की प्राप्ति तथा सन्तुष्टि का भाव आदि अजय की प्रबल कामेच्छा 'Lust' तथा व्यभिचार 'Adultery' संवेग के द्योतक हैं । अनैतिक रूप से शारीरिक तुष्टि के समय अजय के 'इड' और 'इगो' में संघर्ष चलता है । अन्तर्द्वन्द्व में इड, इगो पर विजयी होता है । 'इड' अनैतिक तुष्टि के लिए तर्क देता है -
'शरीर और मन एक है, और अलग-अलग भी । मन को निर्लिप्त रखते हुए भी शरीर को दिया जा सकता है । मनुष्य स्वयं अपने व्यक्तित्व के एक भाग को 'वस्तु' की तरह दूसरे के हवाले कर सकता है, कुछ देर के उपयोग के लिए ।'[2]

उपर्युक्त मानसिक विश्लेषण में नवीनतम परिस्थितियों में स्थिर रहने के लिए दाम्पत्य-जीवन-दर्शन की अत्याधुनिक व्याख्या हुई है । पति-पत्नी शारीरिक सन्तुष्टि के लिए मन(शायद उसे पवित्र रखना अधिक आवश्यक है ) को शरीर से अलग कर के ~~शरीर से अलग कर के~~ शरीर को कुछ देर के लिए तीसरे व्यक्ति को समर्पित कर सकते हैं ।

अजय अमेरिका के मुक्तभोग, स्वतंत्र जीवन तथा 'डेटिंग पद्धति' से प्रभावित होता है । वह कल्पना करता है कि भारत में भी अमेरिका की तरह मुक्त जीवन

---

१. डा० देवराज - अजय की डायरी , पृ० १७५, २२५
२. डा० देवराज - अजय की डायरी, पृ० ३१६

को सामाजिक मान्यता मिल जाये। भारत लौटने के पश्चात् जब सत्य वह सुनता है कि उसकी पत्नी शीला, उसकी अनुपस्थिति में स्वच्छन्द भोग के दर्शन के अनुसार चली और एक किसी अन्य का गर्भ उठाए घूम रही है, तो उसका निष्काम सम्भोग का सिद्धान्त काफूर हो जाता है। नवीनतम समाज की यही विवशता है कि हम अपने लिए स्वतंत्रता चाहते हैं परन्तु हमारा इगो दूसरे पक्ष के लिए स्वतंत्रता देना नहीं चाहता।

'अँधेरे बन्द कमरे' के हरबंस और नीलिमा के दाम्पत्य-जीवन में उत्पन्न होने वाली दरार का कारण आधुनिक युग का स्वच्छन्द बन्धनहीन जीवन ही है। हरबंस नीलिमा से प्रेम-विवाह करता है। हरबंस का चेतन नीलिमा के प्रति अपने प्रेम की दृढ़ता को स्वीकार करता है, परन्तु अचेतन शुक्ला से प्रेम तथा नीलिमा से घृणा करता है। विदेश से शुक्ला के लिए वर्थडे कार्ड भेजना तथा नीलिमा के वर्थडे को भूल जाना, भूल में नीलिमा को सविता कहजाना आदि ऐसी भूलें हैं जो नीलिमा के वर्तमान रूप के लिए घृणा-भाव व्यक्त करती हैं।

नीलिमा को आधुनिक बनाने का एकमात्र कारण हरबंस है। हरबंस अहं-वादी है और नारी के प्रति मध्यकालीन बोध से घिरा हुआ है, वह पूरा शासन चाहता है परन्तु शैली मूल्यों की स्वीकारता है।[1] नीलिमा पर हरबंस नियंत्रण स्थापित करके उसके जीवन को अपने तक ही सीमित करना चाहता है। पत्नी के रूप में वह नीलिमा को नैतिक नियमों में बंध कर रहना सिखाना चाहता है, दस साल पहले के रूप को प्राप्त करना चाहता है जो शायद वर्तमान स्थिति के दस साल बाद भी नहीं मिल सकता।[2] निराशा हरबंस को आत्मपीड़न का शिकार बनाती है। वह मृत्यु की कामना करता है "मैं वर्षों से अपने अन्दर तिल-तिल करके गल रहा हूँ। मुझे कई बार लगता है कि मेरे लिए एक ही उपाय है और वह यह है कि अपने जीवन का अन्त कर दूँ।" परन्तु वह मर भी नहीं पाता।[3]

---

१. इन्द्रनाथ मदान - 'आज का हिन्दी उपन्यास', पृ० ६४
२. मोहन राकेश - अन्धेरे बन्द कमरे, पृ० ५२२
३. ,, ,, पृ० २११

नीलिमा उन्मुक्त व्यक्तित्व की है । विवाह से पूर्व वह प्रेयसी है । विवाह के पश्चात् अपने अन्य सम्बन्धों को न तो वह छिपाती है और न सुषमा और हरबंस के सम्बन्ध को ईर्ष्या की दृष्टि से देखती है । उसका अहं प्रबल है और वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत है, इसलिये वह हरबंस की मात्र भूख का सामान बन कर नहीं रहना चाहती ।"[1] मनोविश्लेषक हरबंस को राय देता है कि हरबंस तथा नीलिमा अपनी जिन्दगी को बदल कर जियें उनके हृदय में बैठी धारणा 'हमारे पास एक दूसरे के साथ जिन्दगी गुजारने के सिवा कोई चारा नहीं है "[2] — परस्पर तनाव से निर्मित उलझनों, कुण्ठाओं और अनचाहा जीवन जीने की विवशता व्यक्त करती है, जो वर्तमान युग के दाम्पत्य-जीवन की प्रमुख समस्या है ।

शरीर-विज्ञान के पंडित आचार्य चतुरसेन ने 'पत्थर युग के दो बुत' उपन्यास में पति पत्नी के मध्य उत्पन्न तनावों पर मनोवैज्ञानिक विधि से प्रकाश डाला है । 'सभी झगड़े झंझटों की जड़ तन नहीं मन की भूख है, काम की भूख , यौन—क्षुधा " है ।[3]

राय प्रबल वासना-ग्रस्त पुरुष है जो एक नारी से सन्तुष्ट नहीं हो पाता । राय के 'इगो' को 'इड' ने प्रभावित कर रखा है । राय पत्नी के अतिरिक्त कुंवारी विधवा विवाहिता अनेक स्त्रियों से सम्पर्क रखता है । राय बहुतों को दुत्कारता है, बहुतों को अपमानित करता है तथा बहुतों की जवानी का लुत्फ उठा कर पत्नी के प्रति वफादार होने की घोषणा भी करता है ।[4] पत्नी के प्रति वफादारी एक मनोवैज्ञानिक पहेली है । राय पहेली को हल करते हुए कहता है कि आधुनिक युग के पति गधे हैं, वे पत्नी को दाल-रोटी की तरह खाना चाहते हैं । पत्नी जिस रति-भाव की भूखी होती है उसे वे दे नहीं पाते । उनके दाम्पत्य-जीवन के असन्तोष में मूल

---

१. मोहन राकेश, अन्धेरे बन्द कमरे, पृ० ५१०
२. ,, पृ० १५१
३. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पत्थरयुग के दो बुत, पृ० ५२
४. ,, ,, पृ० २८

भाव रति-भंग है ।[१] सुनील, असन्तुष्ट रेखा को भी वह अपनी प्रबल कामाग्नि का शिकार बनाता है जिसके परिणामस्वरूप वह दत्त की गोली का शिकार बनता है ।

सुनील स्वस्थ और प्रतिष्ठावान पुरुष है । रेखा सुनील के पवित्र प्रेम को ठुकराकर राय जैसे लम्पट व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित कर लेती है । इसका मुख्य कारण कथाकार ने रति-भाव का भंग होना बताया है । रति-भंग से असन्तुष्ट नारी की सर्जना यशपाल ने 'कुल्टा' में की है । रतिभंग ही 'पत्थरयुग के दो बुत' की मुख्य समस्या है । 'जहाँ तक सैक्स का सम्बन्ध था, रेखा अपने पति से सन्तुष्ट थी । उसमें विकार आया रति भाव पर । स्त्री देह सहवास के साथ जिस विलास की आवश्यकता का अनुभव करती है वह दत्त से पूरी नहीं हुई । दत्त इस सम्बन्ध में अनाड़ी और असावधान व्यक्ति है ।'[२] रेखा में दत्त की स्वेच्छाचारिता के प्रति क्रोध और बाद में विरति उत्पन्न हो जाती है । दत्त की रति क्रियाएँ उसे अमानुषिक व्यवहार लगते हैं, वह और भी ठंडी पड़ जाती है । धीरे-धीरे रेखा में दत्त के प्रति घृणा बढ़ने लगती है ।[३] राय से सम्पर्क गहरे हो जाते हैं । समर्पण की स्थिति में रेखा के द्वन्द और इच्छा का संघर्ष लेखक ने इन शब्दों में व्यक्त किया है -"उससे दूसरे दिन राय आए । अभी चिराग नहीं जले थे और दत्त के आने का अभी समय नहीं हुआ था । मैं सोफे पर पड़ी तड़प रही थी । मेरे रक्त की प्रत्येक बूंद में राय ऊधम मचा रहे थे । राय और दत्त दोनों की मानस-मूर्तियाँ जैसे मुझे पाने को द्वन्द्व कर रही थीं । मैं दत्त को पीछे धकेलती थी और राय में समाती जा रही थी । राय आये, झपटते हुए, जैसे चीता आता है, नि:शब्द और उन्होंने तड़ातड़ चुम्बन पर चुम्बन मेरे होठों पर, आँखों पर, मस्तक पर, कपोलों पर और कन्धों पर जड़ने आरम्भ कर दिये । मुझे ऐसा लगा कि न जाने कब से युग-युग से, जन्मजन्मान्तरों से मैं इस आक्रमण की प्रतीक्षा कर रही थी । मैं एक ऐसे सुख में खो गई कि जिसका अपने जीवन में मैंने आज तक अनुभव नहीं किया था । मेरे नेत्र बन्द हो गए और मैंने आपा खो दिया ।"[४]

---

१. आचार्य चतुरसैन - पत्थर युग के दो बुत, पृ० २६

२. ,, ,, पृ० १००

३. ,, ,, पृ० १६

,, ३४,३५

उपर्युक्त मानसिक विश्लेषण मैं 'व्यभिचार' का संकेत है। अपने जोड़े से असन्तुष्ट पति-पत्नी को किसी अन्य व्यक्ति के सहवास मैं अधिक सन्तोष मिलता है, जो उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

सुनीलदत्त अपनी पत्नी रेखा के प्रति एकनिष्ठ पति है। रेखा को अपने प्रति विरक्त देखकर वह असन्तुलित हो जाता है। रेखा और राय के सम्बन्धों के प्रति उसका 'इड' शंका उत्पन्न करता है परन्तु 'इगो' तर्क द्वारा दबा कर अपने प्रेम-भाव को स्थापित रखता है।[1] रेखा को सन्तुष्ट करने के लिए दत्त काम-सम्बन्धी पुस्तकें भी पढ़ता है। दत्त जब रेखा और राय के सम्बन्धों की सत्यता जान लेता है तो उसका प्रेमी हृदय रेखा को मार नहीं सकता, क्योंकि वह रेखा से प्रेम करता है, रेखा को रोक कर अपना भी नहीं सकता, क्योंकि रेखा जूठी हो चुकी है, ऐसी स्थिति मैं प्रवृत्तियों का ध्रुवीकरण कर पहले आत्म-हत्या की तरफ उन्मुख होता है।[2] बाद मैं आवेशजन्य स्थिति मैं वह राय की हत्या करता है। राय ने दत्त की प्रिय वस्तु रेखा का अपमान किया था,[3] इसलिए रेखा से नहीं वरन् राय से दत्त घृणा करने लगता है। घृणित पात्र जब बार-बार घृणा के कारण को हमारे सम्मुख लाता है तो हमारे अन्दर पात्र के प्रति घृणा के स्थान पर क्रोध उत्पन्न होता है।[4] क्रोध की चरमस्थिति मैं व्यक्ति क्रोध के कारण को समाप्त कर देना चाहता है। इसीलिए दत्त द्वारा राय की हत्या होती है।

नरेश मेहता का 'दो एकान्त' वृक्षवृत्ति विवेक तथा मेघवृत्ति वानीरा के दाम्पत्य-जीवन की समरसता के अन्तस् मैं बहती हुई विषमता की कथा है। मूलतः ये विवेक और वानीरा विरोधी हैं। वानीरा प्रत्येक बार विवेक के वृक्ष को चलना सिखाना चाहती है और विवेक हर बार वानीरा के मेघ की जड़ें जमाना चाहता है[5]। विरोधी व्यक्तित्व विवश, अवश और हताश हो दो एकान्तों मैं जीते हैं यही इस

---

१. आचार्य चतुरसेन - पत्थरयुग के दो बुत, पृ० ६४
२. ,, ,, पृ० १८६
३. ,, ,, पृ० १८५
४. 'यदि घृणा का विषय जानबूझकर हमें घृणा या दुःख पहुंचाने के अभिप्राय से हमारे सामने उपस्थित होता है तो हमारा ध्यान उस घृणा के विषय से हटकर उसकी उपस्थिति के कारण की ओर हो जाता है और हम क्रोध-साधन मैं तत्पर
— रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, भाग २, पृ०२६

उपन्यास की मूल संवेदना है ।

विवेक वानीरा के दाम्पत्य-जीवन की प्रारम्भिक स्थिति जैनेन्द्र के उपन्यासों की भाँति ही, कान्त समर्पित और कोमल पति के व्यक्तित्व से अतृप्त 'सोने के डैनों के सहारे आकाश में तैरने की कल्पना करने वाली'[१] पत्नी की कहानी है । विवेक भी वानीरा और क्लाइव के बीच बनते हुए अनाहूत सम्बन्धों को प्रेरणा देता है, क्योंकि पत्नी को सन्तुष्ट न रख सकने की विवशता से वह स्वयं परिचित है । विवेक की बीमारी, कलकत्ते में विवेक का इलाज कराना, क्लाइव और वानीरा का डलहौजी जाने का प्रस्ताव, विवेक जिसे 'विवश'[२] फीकी सी प्रसन्नता से स्वीकार करता है, वह उसके वानीरा के प्रति उदार मनत्व और ममत्व में उलझे उसके विवश मनस की प्रतिक्रिया है । विवेक न तो प्रेम को संवेगात्मक स्थिति पर अभिव्यक्त करके उसे कलुषित बनाना चाहता है, न ही वानीरा के प्रति अपनी ममता को त्याग सकता है, यही उसकी विवशता है ।

विवेक पूर्णतः जैनेन्द्र का कान्त तथा श्रीकान्त नहीं बन पाता क्यों कि अन्दर वह पत्नी के लिये मध्यकालीन भावबोध से घिरा है । असाधारण स्थितियों में विवेक की ग्रन्थियों का पता चलता है । अपनी प्रकृति के विरुद्ध विवेक मेजर आनन्द से इतिहास पर बहस करता है । वानीरा के समक्ष मेजर आनन्द को नीचा दिखाने के लिये ही वह चिल्ला-चिल्ला कर धारा प्रवाह बोलता जाता है । प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न विवेक में प्रसुप्त हीनताग्रन्थि को स्पष्ट करता है ।[३] क्लाइव के विवेक तथा वानीरा को घर तक छोड़ आने के अनुरोध को ठुकराने में तथा 'अभी हम अपने लिए भी शेष हैं' के द्वारा विवेक के अचेतन द्वारा क्लाइव का किया गया अपमान तथा वानीरा की परपुरुषों में बढ़ती हुई आसक्ति के लिए भर्त्सना प्रकट होती है ।[४]

---

१. नरेश मेहता, दो एकान्त, पृ० २७

२. ,, ,, पृ० ६२

३. ,, ,, पृ० १२३

४. ,, ,, पृ० १२६

वानीरा की उच्छृंखलता को वह 'सुखदा' के कान्त की तरह प्रसन्नता की शान्ति से नहीं वरन् विवशता की शान्ति से सहन करता है। वानीरा के पतन को बाह्य रूप से वह निर्विकार होकर सहता है परन्तु उसका मौन अन्तर्द्वन्द्व स्पष्ट करता है कि वानीरा का पतन कब कहाँ और कैसे हुआ, इन सारी परिस्थितियों से वह भिज्ञ है।[1] सब जानते हुए भी, वानीरा को बन्धनहीन छोड़ने का कारण विवेक की उदात्त धारणाएँ हैं -'पति-पत्नी के बीच एक सदाशयता होती है, मानते हुए चलना पड़ता है।'[2] यदि विवेक वानीरा के चरित्र पर शंका करके नियंत्रण करता तो सदाशयता का नियम भंग होता। वानीरा द्वारा किए गए दाम्पत्य-जीवन के नियमभंग को विवेक का हृदय स्वीकार नहीं कर पाता। 'ठहरो हमारे बीच अब पति-पत्नी का विश्वास शेष नहीं है'- में विवेक के वानीरा के प्रति समाप्त-प्राय प्रेम की अभिव्यक्ति है, तथा 'तुम्हारी सुरक्षा का दायित्व मैंने एक दिन लिया था, जहाँ एक दायित्व है, उसमें तुम मुझे...... ' में टूटते सम्बन्धों के प्रति विवेक के विवश-मोह की अभिव्यक्ति है।[3]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' ऐसे दम्पति के मनोवैज्ञानिक पक्ष को विश्लेषित करता है, जो वर्तमान में आपस में सन्तुष्ट तथा एक ही चादर के नीचे सोने वाले हैं परन्तु जिनके अचेतन में पूर्व-प्रेम की वासनाएँ दमित हो गई हैं। पात्रों की मन:स्थितियों का बाह्य एवं भीतरी इच्छाओं का प्रगटीकरण सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक विधा द्वारा पाठकों के सम्मुख किया गया है। अचेतन की ग्रन्थियाँ स्वप्न में खुलती हैं। विभा का देखा हुआ स्वप्न मोहन के साथ दूर-दूर तक घूमना, मोहन के प्रेम में बंधकर वर्तमान जीवन को भूल जाने की इच्छा करना, मोहन का प्रसन्न होकर विभा को अपनी गाड़ी में बिठाकर घर ले जाने का आग्रह तथा विभा का चाह कर भी न जा सकने की विवशता आदि विभा की वर्तमान स्थिति, अचेतन में प्रसुप्त इच्छाएँ तथा उसके व्यतीत जीवन के प्रति मोह को व्यक्त करते हैं। विभा

---

१. नरेश मेहता, दो एकान्त, पृ० १६०
२. ,, पृ० १५७
३. ,, पृ० १७३-१७४

को मोहन से जो मानसिक तुष्टि प्राप्त हुई है उसके समक्ष वह राजेश द्वारा प्राप्त होने वाली शारीरिक तुष्टि को तुच्छ समझती है । वर्तमान जीवन में वह पति के साथ रहती है परन्तु पति को छोड़ कर वह मोहन के साथ जाना चाहती है । मोहन के साथ न जा सकने की विवशता, सामाजिक बन्धन के फलस्वरूप है ।

दूसरा पक्ष राजेश का है जो विभा की बगल में सोया है । स्वप्न में राजेश गोरी लड़की के साथ अपने आपको क्रीड़ारत देखता है । विभा को किनारे पर खड़ा देखकर जलक्रीड़ा करते हुए दोनों हँसते हैं । राजेश विभा के मृत शरीर को भंवर में फंसा देखता है । सम्पूर्ण स्वप्न के विश्लेषण के बाद पता चलता है कि वर्तमान में राजेश विभा का पति है इसलिए चेतन विभा के प्रति आराधित को स्वीकार करता है परन्तु अचेतन में सोई वासना गोरी लड़की के प्रति आकर्षण तथा विभा के प्रति घृणा का भाव रखती है । विभा के मृत शरीर को भंवर में देखने का अर्थ है कि राजेश का अचेतन विभा से ऊबा हुआ है और वह विभा की मृत्यु की कामना करता है । फ्रायड के स्वप्न-सिद्धान्त का इतना सबल उदाहरण 'शेखर : एक जीवनी' के पश्चात् 'सोया हुआ जल' में ही प्राप्त होता है ।

'रेखा' में भगवतीचरण वर्मा ने रेखा की 'अतृप्त वासना' का नग्न चित्रण किया है । संस्कार और प्राकृतिक भूख के मध्य डांवाडोल होती हुई रेखा की नैतिक बुद्धि तथा शारीरिक भूख की संस्कारों पर विजय, सम्पूर्ण उपन्यास में वर्णित हुई है । परिस्थितियों का सहारा पाकर रेखा की दमित वासनाओं का हावी होना तथा नैतिक चेतना का लुप्त होते जाना, रेखा के सोमेश्वर के पुरुषत्व के समक्ष किए गए समर्पण में व्यक्त होता है ।' एकाएक सोमेश्वर ने कसकर रेखा को आलिंगन में जकड़ लिया है । रेखा घबड़ाई ' यह क्या कर रहे हैं आप, मुझे छोड़िए, मैं कहती हूं मुझे छोड़िए, यह बड़ा गलत काम है ।' रेखा केवल कह रही थी यह सब , जहां तक शरीर का सम्बन्ध है, वह असीम सुख का अनुभव कर रहा था, वह शरीर जैसे सोमेश्वर से पृथक् होने के स्थान पर उससे लिपटा चला जा रहा था.... एक बेहोशी सी छाती चली जा रही थी उसके ऊपर आत्मा की बेहोशी लेकिन वह अनुभव कर रही थी कि उसका शरीर पूरी तरह होश में है ।[१]....

---

१. भगवतीचरण वर्मा, रेखा, पृ० १०६

पान के पश्चात् रेखा का 'दुर्गो' पुन: सचेत होता है और रेखा 'ग्लानि' में घुटने लगती है । अपने देवता, अपने आराध्य के साथ किए गए विश्वासघात के लिए उसे अपने से 'घृणा' होती है ।[1] पतन के पश्चात् रेखा की मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक ने 'भावना और बुद्धि' का द्वन्द्व चित्रित किया है ।[2] वस्तुत: वर्णित अन्तर्द्वन्द्व दुर्गो और इड का है । दुर्गो नैतिक नियमों के विरुद्ध किए गए कार्य के प्रति अपने को अपराधी स्वीकार करता है —'कितने भले थे उसके पति, कितना विश्वास था उनका उसके ऊपर । और उनको उसने धोखा दिया, किस तरह वह उनसे अपनी बात कहे, किस तरह वह उनसे क्षमा मांगे ? और अपने पति से विश्वासघात की बात कहकर बहुत सम्भव है उसे शांति मिल जाये'.... आत्मभर्त्सना की और उन्मुख दुर्गो को 'इड' सूक्ष्म रूप से समझाता है ।'उसे अपने अन्दर प्रायश्चित की ज्वाला में तपना चाहिए । इसमें प्रोफेसर को घसीटना प्रोफेसर के प्रति अन्याय होगा । अपने इस कलंक को उसे अपने अन्दर एक गहरा भेद बना कर रखना होगा । हमेशा, हमेशा के लिए ।'[3] इड उपर्युक्त शब्दों में प्रायश्चित का नया मार्ग दिखाता है । 'इड' की प्रारम्भिक विजय रेखा के 'दुर्गो' पर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेती है और उसे विश्वास-घात के मार्ग पर हमेशा के लिए मोड़ देती है ।

'देहगाथा' में राजकमल चौधरी ने पति के अनपेक्षित विवाह के कारण असन्तुष्ट मन की गाथा का चित्रण किया है । पति के उलझे हुए भावों का गुम्फन देहगाथा में प्राप्त होता है । देवकान्त जिसे मनोविज्ञान का भी ज्ञान है , जो स्वीकार करता है कि पत्नी पार्वती अतृप्त है, पार्वती भादों की उन्माद नदी है जिसका बांध टूट चुका है परन्तु वह पत्नी की तृप्ति का इच्छुक नहीं है, क्योंकि उसका मन स्वयं अतृप्त है । पत्नी के प्रौढ़ रूप के प्रति देवकान्त के अचेतन में बैठी अव्यक्त घृणा,[4] पत्नी पार्वती के व्यवहार में अपने प्रति 'घृणा' के भाव को देखती है । अपना मानसिक

---

१. जब कोई मनुष्य समाज में प्रचलित नैतिक नियमों के प्रतिकूल आचरण कर बैठता है तो उसमें आत्मभर्त्सना की भावना उत्पन्न होजाती है अर्थात् नैतिकता मनुष्य को अपने पाप के लिये प्रायश्चित करने के लिए हृदय में प्रेरणा उत्पन्न करती है ।
-- लालजी शुक्ल, आधुनिक मनोविज्ञान, पृ० ३६

२. भगवतीचरण वर्मा रेखा, पृ० ११०

३. ,, पृ० ११२,११३

४. राजकमल चौधरी, देहगाथा, पृ० २७

विश्लेषण करते हुए देवकान्त कहता है -'हमारे शरीर के साथ गहरी या खोखली आत्मा का मिलन शायद घृणा का भाव पैदा करता है। मगर आत्मा की गहराई में घृणा के सिवा और क्या हो सकता है? हो सकता है कि घृणा के अलावा प्रेम भी वहाँ हो मगर यह प्रेम मुझे नहीं मिलता। मुझे सिर्फ घृणा मिलती है[1]'।

देवकान्त के मन में हीनता-ग्रन्थि का विकास होता है क्योंकि वह आर्थिक दृष्टि से अशक्त तथा घर-जमाई की स्थिति में रहने वाला पति है। घर-जमाई बनने से अपने ऊपर किए गए नियन्त्रणों को वह विवशता से स्वीकार करता है,[2] पर उसका अहं बार-बार विद्रोह करता है जिसका प्रकटीकरण पार्वती के अहं को चोट पहुँचाकर, इच्छा-विरुद्ध कार्य करके तथा शराब पीकर वह करता है।[3] फिर भी देवकान्त विवश है, ससुराल के बन्धन में है। अपने ऊपर लगाए जा रहे आरोपों का खुल कर विरोध भी नहीं कर सकता। पत्नी के क्रोध, पति के प्रति अव्यक्त घृणा तथा पति की विवशता का प्रकटीकरण छोटी सी घटना से हो जाता है। पार्वती बताती है कि देवकान्त के ड्रिंक करने से बच्चों ( भतीजे-भतीजियों ) के दिमाग पर गलत असर पड़ता है। देवकान्त विरोध में शान्त स्वर में कहता है कि जिन्हें पार्वती बच्चा समझती है वे वास्तव में बच्चे नहीं हैं। स्केटिंग रिंक में अपने दोस्तों के साथ बियर तथा पोर्ट्स साइडर लेने वाले, मम्मी और पापा को फाहशा मज़ाक सुनाने वाले बच्चे नहीं हो सकते।[4] पार्वती का 'अहं' पति के विरोध को सहन नहीं कर पाता। पत्नी होने के नाते वह क्रोध के आवेश को प्रकट नहीं कर सकती। अवश क्रोध में भर कर 'काफी की खाली प्यालियाँ उठाने लगती है। एक प्याली ट्रे से उछल कर फर्श पर गिरती है, और फिर गिर कर टूट जाती है।' पार्वती की पति के प्रति घृणा, क्रोध में कहे गए 'यू आर ब्रूट' शब्दों में तथा तेजी से कमरे से निकल जाने की क्रिया में व्यक्त होती है। देवकान्त की विवशता 'मैं मुस्कराने लगा हूँ क्योंकि मेरा गुस्सा

---

१. राजकमल चौधरी - देहगाथा, पृ० ४०

२. ,, पृ० २३

३. ,, पृ० ३४, ६०

४. ,, पृ० ४६

ाढ़ने लगा है[१]--में व्यक्त होती है । घर जमाई होने के कारण वह खुले रूप में क्रोध भी अभिव्यक्त नहीं कर सकता ।

'न आने वाला कल' में पति के जीवन में उत्पन्न तटस्थता तथा ऊब का चित्रण मोहन राकेश ने किया है । विवाह के पश्चात् विवाह एक भूल लगने लगता है, विवाह पर पछतावा होता है, ऐसे अस्वस्थ दम्पति का चित्रण 'न आने वाला कल' में हुआ है । व्यक्ति के जीवन में आने वाली थकान, थकान से उत्पन्न जीवन के प्रति तटस्थता तथा जीवन के प्रति ऊब 'न आने वाला कल' का मुख्य भाव है ।[२] पति-पत्नी के मध्य शारीरिक सम्बन्ध रागात्मक भाव-बोध न देकर वितृष्णा का भाव उत्पन्न करते हैं । दाम्पत्य-जीवन में उत्पन्न तनाव और ऊब का चित्रण लेखक इन शब्दों में करता है ।'नींद आने तक हम दो पजनजियों की तरह दम साधे पड़े रहते थे । शायद दोनों को यह आशा रहती थी कि कभी किसी दिन कुछ ऐसा होगा जिससे वह गतिरोध टूट जायगा और उस आशा तथा तनाव की स्थिति में ही दोनों सो जाते ।' 'यदि ऐसा कुछ होता भी जिससे गतिरोध टूटने की सम्भावना होती तो वह अतिरिक्त घुटन और उदासी' का कारण बन जाता । दाम्पत्य-सम्बन्ध'अनचाहे सफर में किसी अनचाही जगह खाना खा लेने के बाद' जैसा 'अप्रिय लगता । सुबह दोनों की आंखें पहले से ज्यादा कसी होतीं थीं ।'[३]

'नदी और सीपियां' में आधुनिक परिवेश में जीने वाले दम्पती की पारम्परिक संस्कार-बद्ध मनोवृत्ति का चित्रण'शानी' ने किया है । स्वर्णा और हेमन्त परस्पर प्रेम तथा प्रबल आसक्ति के कारण दुःख और ईर्ष्या का शिकार होते हैं । पत्नी से पवित्रता की इच्छा रखने वाला हेमन्त विवाह की'पहली रात में ही'निराश हो जाता है ।[४] पत्नी पर'सन्देह' करते हुए भी वह जीवन को अभिशप्त नहीं बनाना चाहता इसलिए सन्तोष का मुखौटा पहन लेता है । हेमन्त के मन में निर-

---

१. राजकमल चौधरी, देहगाथा, पृ० ५०

२. मोहन राकेश, न आने वाला कल , पृ० १६ .

३. ,, ,, पृ० २५

४. शानी, नदी और सीपियां, पृ० ५६६

न्तर चलता हुआ भावनात्मक द्वन्द्व, हेमन्त के कार्य-व्यापार में प्रकट होता है। स्वर्णा को अपमानित कर, दु:खी कर हेमन्त अपने अशान्त मन का बदला लेना चाहता है,[१] परन्तु स्वर्णा के प्रति प्रबल-आसक्ति होने के कारण स्वर्णा को दु:खी देखकर वह शान्ति भी नहीं प्राप्त कर पाता। आरम्भ से अंत तक स्वर्णा को दु:ख पहुंचाने में लांछित करने में हेमन्त के सम्पूर्ण और पवित्र रूप से समर्पित मन के टूटने की भग्नाशा निहित है।[२] अन्त में हेमन्त का चेतन नया ताना बाना बुनता है जिसमें दम्पती परस्पर ईमानदारी का जीवन व्यतीत कर सकें। ईमानदार बनने के लिए आवश्यक है कि वे दोनों अपने विवाह-पूर्व-सम्बन्धों को खोल दें। स्वर्णा की विवशता यह है कि वह अनिच्छा से हुए बलात्कार के साथ के सम्पर्क को स्वीकार कर पूर्णत: नग्न हो अपराधिनी नहीं बनना चाहती। स्वर्णा का अहं अपने आसपास भावुकता का जाल रचता है परन्तु हेमन्त सन्तुष्ट नहीं हो पाता और निराश हो जीवन से पलायन करता है।

निष्कर्ष –

१९१८ से १९७० तक के उपन्यासों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में तीन स्तर भेद प्राप्त होते हैं। प्रेमचन्दकालीन उपन्यासकारों ने दम्पती के मनोविज्ञान को आदर्श-प्रधान दृष्टिकोण से वर्णित किया है। मानव के विषम जीवन का वर्णन विस्तृत परिप्रेक्ष्य में उठाने के कारण प्रेमचन्दकालीन उपन्यासकार मनुष्य की प्रवृत्तियों का यथातथ्य चित्रण कर पाए हैं, उन्मुक्त, सामाजिक तथा आदर्शवादी स्वस्थ मानस का उनके उपन्यासों ने निर्माण किया है। दम्पती के मध्य पनपने वाले तनाव, घृणा, ईर्ष्या आदि भावों का चित्रण हुआ है परन्तु उनमें सम्बन्धों की अस्वीकारोक्ति नहीं सम्बन्धों की दृढ़ता है। क्योंकि प्रेमचन्द युगीन दम्पती क्षणों में विभक्त होकर जीना नहीं जानते। अनैतिक आचरण और अनैतिक भावों का परिष्कार कर साहित्यकार अपने आदर्श की छाप लगाने का मोह नहीं रोक पाते।

मध्यकाल में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय के पात्रों की रचना फ्रायडी विचारधारा की पुष्टि के लिये हुई है। अन्तर्मन में उलझा कथाकार दाम्पत्यजीवन

---

१. शानी, नदी और सीपियां, पृ० ५६

की पवित्रता को नष्ट करने के लिए नई वायु के प्रवेश में तत्पर है । अनैतिक इच्छाओं के अचेतन में दमित हो जाने से उत्पन्न होने वाला कुंठा, पलायन, तटस्थता आदि का चित्रण दाम्पत्य-जीवन के परिप्रेक्ष्य में किया गया है ।

आधुनिक उपन्यास का मनुष्य क्षणों को जीता चलता है । जैनेन्द्रकालीन उपन्यास पर अनैतिक भावनाओं के दमन से उत्पन्न मानव की असाधारणता के प्रश्न को लेकर चला परन्तु आधुनिक उपन्यासकार दमित वासनाओं के उन्मुक्त और उच्छृंखलता पूर्ण प्रकटीकरण, मुक्तभोग, सम्बन्धहीन जीवन आदि के द्वारा दमित की गई नैतिक भावनाओं से उत्पन्न दाम्पत्यजीवन की जटिलता को चित्रित करता है । यदि मनुष्य शारीरिक सम्बन्धों को मात्र संवेदना के स्तर पर भोग कर हट जाना चाहता है तो दाम्पत्यजीवन में एकरसता तथा ऊब उत्पन्न होती है जिससे मनुष्य में त्याग, प्रेम आदि उदात्त भावों का नितान्त अभाव हो जाता है और दाम्पत्य-सम्बन्ध बोझ प्रतीत होता है । यदि आधुनिक स्वच्छन्द भोग के जीवन में दम्पती भावनात्मक स्तर पर, प्रेम और आसक्ति के स्तर पर जीना चाहते हैं तो उनके मध्य पहला परम्परागत प्रश्न उठता है 'ईमानदारी' का । 'ईमानदारी' के अभाव में पति-पत्नी भावनात्मक स्तर पर सन्तुष्ट नहीं हो पाते जिसका प्रभाव एक दूसरे से पलायन में व्यक्त होता है । आधुनिक दाम्पत्य-जीवन की मार्मिकता, जहाँ पति-पत्नी घोर अनैतिकता के कारण जीवन से ऊबे हैं, पलायन कर रहे हैं और मानसिक शांति की खोज में पथभ्रष्ट हो रहे हैं, का चित्रण आधुनिक उपन्यासकार कर रहा है । 'ऊब' आज के भ्रमित , कुण्ठित तथा अस्थिर दाम्पत्य जीवन का मुख्यभाव है, जिसका स्पष्ट चित्रण आधुनिक उपन्यासों में है ।

## षष्ठ अध्याय

## हिन्दी-उपन्यासों में दाम्पत्य-जीवन के संदर्भ में 'चरित्र'

१. दम्पती में एकनिष्ठा की भावना

(क) पत्नी में पातिव्रत्य की भावना

अ. स्वाभाविक पातिव्रत्य

ब. आरोपित पातिव्रत्य

(ख) पति में एक पत्नीव्रत की भावना

अ. स्वाभाविक एक पत्नीव्रत.

ब. परिस्थिति जन्य एक पत्नीव्रत

२. पत्नी के चरित्र का ह्रास

(क) अभुक्त वासना और स्वच्छन्द शारीरिक सम्बन्ध

(ख) पति की प्रतिद्वन्द्विता तथा चरित्र-पतन

३. पति के चरित्र में स्वच्छन्दता

(क) पति के चरित्र का स्खलन परिस्थितिजन्य

(ख) सम्भोग की विविधता में रुचि

निष्कर्ष।

प्रचलित अर्थ में यदि चरित्र को लिया जाये तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि चरित्र से किसी भी व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व का बोध नहीं होता है वरन् उसके व्यक्तित्त्व के एक विशेष अंग का पता चलता है, जिसका सम्बन्ध नैतिकता से है । दाम्पत्य-जीवन के संदर्भ में चरित्र एक विशेष सीमा में घिर जाता है, जो पति-पत्नी के मात्र शारीरिक सम्बन्धों के औचित्य पर प्रकाश डालता है ।

चरित्र का प्रश्न दाम्पत्य-संदर्भ में और विशेषत: पत्नी के संदर्भ में अधिक उठता है, इसका एक मुख्य कारण सन्तान है । पितृत्व के निश्चितीकरण के कारण समाज में पत्नी के शारीरिक सम्बन्धों पर नियन्त्रण और चरित्र की पवित्रता के प्रति आग्रह प्राप्त होता है । "नैतिक कसौटी सिद्धान्त-रूप में पुरुषों के लिये भी वैसी ही बनाई गई है जैसी कि स्त्रियों के लिये थी । हां, यह बात दूसरी है कि व्यवहार में इसे पुरुषों पर लागू करने की कठिनाई के कारण, स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की त्रुटियों के प्रति सदा अधिक सहिष्णुता बरती गई ।"[1] मनुस्मृति में प्राप्त वर्णन से भी स्पष्ट होता है कि चरित्र के विषयमें पत्नी की अपेक्षा पति को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी । पुरुष अन्य स्त्रियों से सम्बन्ध रख सकता है परन्तु उसका पर-पत्नी से स्थापित शारीरिक सम्बन्ध बलात्कार के सदृश्य है ।[2]

समाजशास्त्रियों द्वारा दी गई छूट और लगाये गए बन्धन के पश्चात् भी चरित्र नितांत व्यक्तिगत वस्तु रहा है । पति-पत्नी के जीवन में यदि शारीरिक सम्बन्धों में विविधता की रुचि प्राप्त होती है, तो उतनी ही दृढ़ता से एकनिष्ठा की भावना भी पति-पत्नी के मध्य परिलक्षित होती है ।

हिन्दी-उपन्यासों में भिन्न-भिन्न प्रकृति के पति-पत्नी के चारित्रिक पक्षों को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है । इस चेष्टा में कहीं दम्पती की संयमित एकनिष्ठा, कहीं भावुक श्रद्धा और कहीं चरित्र की उच्छृंखलता अभिव्यक्त हुई है ।

---

१. बर्ट्रेंड रसैल- विवाह और नैतिकता (हिन्दी अनुवाद) पृ० २०६,२०७

२. मनुस्मृति — ३६४।८।४४४

१. एकनिष्ठा की भावना-

पति-पत्नी में एकनिष्ठा की भावना दाम्पत्य-जीवन के उदात्त और नैतिक रूप को प्रस्तुत करती है। स्त्री और पुरुष में समान रूप से एकनिष्ठा की भावना प्राप्त होती है। सामाजिक नियम और परिस्थितियाँ उनकी एकनिष्ठा की भावना को संचालित करते हैं। सामाजिक नियम पुरुष के प्रति सहिष्णु और स्त्री के प्रति कठोर रहे हैं, इसलिये पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में एकनिष्ठा की भावना अधिक पाई जाती है। पति-पत्नी की एकनिष्ठा को हम पत्नी के पातिव्रत्य में और पति के एक पत्नीव्रत में प्राप्त करते हैं।

क. पत्नी में पातिव्रत्य की भावना

परम्परा से सतीत्त्व की महिमा से परिचित कराई गई नारी के संस्कारों ही में पातिव्रत्य घुल गया है। धर्म-अधर्म, लोक-परलोक, स्वर्ग-नरक आदि के भय ने नारी को इतना त्रस्त कर दिया है कि वह स्वयं अपने विषय में सोच ही नहीं पाती है। परिवार और पति ही उसके जीवन का दायरा है। उसी के उत्थान में वह निज को मिटाती जाती है। आचरण की पवित्रता पर, विशेष रूप से सम्भोग-सम्बन्धों में, नारी का अटूट विश्वास है, इसलिये पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष का स्पर्श भी उसके लिये असहनीय है। चरित्र की पवित्रता की भावना ने एक ओर यदि नारी को रूढ़िवादी बनाया तो दूसरी ओर उसके निर्बल शरीर में आत्मविश्वास की भावना जागृत करने में भी महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

अ. स्वाभाविक पातिव्रत्य

प्रेमचन्द के उपन्यासों में पारम्परिक पतिव्रता पत्नियों के चित्रणों का बाहुल्य है। आदर्श की ओर उन्मुख प्रेमचन्द यदि कहीं परिस्थितियों में पड़ी हुई पत्नी को पतित होते हुए चित्रित कर भी गए हैं, तो पतन की चरम सीमा पर पहुंचने से पहले ही पत्नी को बचा कर चरित्र की कसौटी पर खरा उतार देते हैं। पत्नी के उदात्त और एकनिष्ठ आचरण पर प्रेमचन्द ने विशेष बल दिया है।

'गोदान' की धनिया, गोविन्दी और सिलिया आत्मविश्वास से पूर्ण पतिव्रता पत्नियों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। पति-प्रेम का सुख अनुभव करने वाली धनिया होरी के साथ कंधे-से-कंधा लगाकर संघर्ष करती है। होरी ही धनिया का देवता

है ,धनिया की निष्ठा है और धनिया का जीवन है । होरी से अलग न तो धनिया का अस्तित्व है न व्यक्तित्व । धनिया होरी के जीवन की पूर्णता है, वह समाज से लड़ती है, निर्धनता से लड़ती है, यहां तक कि होरी से भी लड़ती है परन्तु धनिया के हृदय से होरी के लिये मात्र आशीर्वाद ही निकलता है । 'विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण है, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही' है ।[१] पति के अमंगल की कल्पना भी उसके लिये मृत्यु से भयावह हो जाती है । जीवन भर होरी की छाया की भांति लगी धनिया होरी की मृत्यु पर निस्सहाय हो जाती है । होरी की गऊदान की इच्छा धनिया के हृदय में कसक बनकर उभरती है । भूखी-प्यासी धनिया घर में बची २० आने की सम्पत्ति लाकर होरी के मृत हाथ पर रख देती है और होरी की मृत्यु के साथ ही स्वयं पछाड़ खा कर गिर जाती है ।[२] यही है धनिया का पत्नीत्व जिसका विकास और अन्त पति की छाया की भांति होता है ।

पातिव्रत्य और समर्पण की चरम स्थिति सुशिक्षिता गोविन्दी और अछूत सिलिया में परिलक्षित होती है । नारी की सेवा, दृढ़ता और त्याग का जो रूप प्रेमचन्द का आदर्श है वह गोविन्दी औरसिलिया में सांगोपांग प्राप्त होता है । गोविन्दी खन्ना द्वारा दुरदुराई जाती है । पति के दुर्बल चरित्र तथा खन्ना और मालती के सम्बन्ध से भी गोविन्दी अनभिज्ञ नहीं है । खन्ना द्वारा अपमानित किये जाने पर भी गोविन्दी खन्ना से अलग अपने अस्तित्व की कल्पना नहीं कर पाती है । दलित औरअपमानित जीवन व्यतीत करते हुए भी गोविन्दी खन्ना की लौंडी है । खन्ना उसके सर्वस्व हैं । उनसे लड़ेगी,जलेगी पर रहेगी उन्हीं की ।[३] प्रेमचन्द की धारणा है कि नारी के त्याग-प्रधान जीवन के समक्ष पशुवृत्ति का पुरुष भी झुक जाता है । गोविन्दी का त्याग खन्ना के आपत्तिकाल में खन्ना के लिए सहारा बनता है । सिलिया का त्याग मातादीन के अहं को नष्ट करके

---

१. प्रेमचन्द, गोदान, पृ० ८
२. ,, पृ० ३४४
३. ,, पृ० १८०

उसे सिलिया के चरणों में लाकर गिरा देता है । सिलिया मातादीन की रखैल है, मातादीन ब्राह्मण है, सिलिया पासी है । सिलिया जाति से अवश्य पासी है परन्तु हृदय से वह मातादीन के प्रति एकनिष्ठ है । मातादीन सिलिया को दासी अथवा रखैल से अधिक अपने जीवन में महत्त्व नहीं देता है । सिलिया भी अपने दासी रूप में सन्तुष्ट है । सिलिया के माता-पिता मातादीन को सिलिया से विवाह करने के लिए बाध्य करते हैं । पण्डित जी का धर्म विवाह के नाम से खण्डित होने लगता है । अपमानित माता-पिता मातादीन के मुंह में सुअर की हड्डी डालकर उसका धर्म भ्रष्ट कर देते हैं । सिलिया को माता-पिता के कृत्य से ग्लानि होती है और उसका समर्पित पत्नीत्व बोल उठता है -" मेरे पीछे पंडित को भी तुमने भिरस्ट कर दिया। उसका धरम लेकर तुम्हें क्या मिला ? अब तो वह भी मुझे न पूछेगा ।"[1] लेकिन, 'पूछे या न पूछे' सिलिया के लिये कोई अन्तर नहीं पड़ता है, 'वह चाहे भूखा रखे, चाहे मार डाले पर उसका साथ' वह नहीं छोड़ सकती है ।[2] सिलिया अपने निश्चय पर दृढ़ है । वह कहती है -"उसकी साँसत करा के छोड़ दूं ? मर जाऊंगी पर हरजाई न बनूंगी । एक बार जिसने बांह पकड़ ली उसी की रहूंगी ।"[3] यही है भारतीय नारी की भावुक एकनिष्ठा, जिसे एक बार वह अपना तन और मन देती है उसी पर अपना सम्पूर्ण जीवन न्योछावर कर देती है ।

'प्रेमाश्रम' की विद्यावती में पति के प्रति अटूट श्रद्धा है, परन्तु उसकी श्रद्धा में अनुराग नहीं धर्म का भय है । पति की निन्दा सुनना भी उसके लिए असह्य है । संस्कारों में जकड़ी नारी विद्या जब अपने पिता से अपने पति ज्ञानशंकर के लोलुप चरित्र का विश्लेषण सुनती है तब वह पापभय से घबरा जाती है । सदैव चुप रहने वाली विद्यावती भी पिता का विरोध करती है -" जिस पुरुष की स्त्री हूं उस पर सन्देह करके अपना परलोक नहीं बिगाड़ सकती । वह आपके कथनानुसार कुचरित्र ही सही, दुरात्मा सही, कुमार्गी सही, परन्तु मेरे लिये पूज्य और देव-तुल्य हैं ।"[4]

---

१. प्रेमचन्द - गोदान, पृ० २४०
२. ,, पृ० २४०
३. ,, पृ० २४०
४. ,, पृ० २६६

'कुण्डली चक्र' की रतन भुजबल से बंधी है क्योंकि वह भुजबल की विवाहिता है। भुजबल से रतन को किसी भी प्रकार का सुख नहीं मिलता है। वह भुजबल की रसिक तथा छलिया प्रवृत्ति से भी परिचित है, फिर भी संस्कारों में जकड़ा रतन का पत्नीत्त्व भुजबल का अनिष्ट नहीं चाह सकता है। ललितसेन भुजबल और पूना के विवाह को रुकवाने के लिये जाना चाहता है। रतन भाई के विचारों को समझ कर उसका विरोध करती है - 'मैं भी अपने बाप की बेटी और भाई की बहन हूं, यह आप जानते हैं? ..... यदि किसी की जान पर आ पड़ी तो आप मुझे मरा हुआ पावेंगे। इसमें किसी तरह का सन्देह न करना।'[१]

उपर्युक्त शब्दों में रतन का भुजबल के प्रति प्रेम नहीं प्रकट होता वरन तिरस्कृता नारी का कर्तव्य और दर्प मुखरित होता है। पत्नी बस इतना ही जानती है कि पति की अवहेलना और अपमान करना पाप है। पति को अपमानित करने से पहले वह स्वयं मर जाना उचित समझती है।

'यह पथ बन्धु था' की सरो और 'प्रेमाश्रम' की श्रद्धा पति द्वारा निस्सहाय छोड़ी गई पत्नियां हैं। परित्यक्ता होते हुये भी वे अनस्यूता हैं और समर्पिता हैं। पति का गृहत्याग ही उनके पातिव्रत्य की कसौटी है। प्रेमशंकर श्रद्धा को छोड़ कर विदेश चले जाते हैं। श्रद्धा के मन में एक बार भी ऐसी भावना नहीं आती कि प्रेमशंकर ने उसके साथ अन्याय अथवा विश्वासघात किया है। श्रद्धा यह कल्पना ही नहीं कर पाती कि उसका पति उसे निराधार छोड़ कर जा सकता है।[२] विदेश से लौटे हुए पति से श्रद्धा धर्म-उल्लंघन के भय से मिलती नहीं है, परन्तु वह पति से विनय करती है कि पति अपने सिद्धान्तों को त्याग कर श्रद्धा के लिये प्रायश्चित कर ले। श्रद्धा को अपने पत्नीत्व पर पूर्ण विश्वास है। प्रत्येक क्षण वह पति के लिये उत्सर्ग करने को तैयार रहती है। उसके लिए धन, आभूषण सब पति-प्रेम के समक्ष हेय हैं। पति के लिये शृंगार करना ही नारी की शोभा है। यदि प्रेम शंकर समाज के लिये वैभव त्याग सकते हैं तो श्रद्धा पति के लिये सम्पत्ति का त्याग कर सकती है।[३] प्रेमशंकर

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा 'कुण्डली चक्र', पृ० १६३

२. प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, पृ० १३४

३. ,, पृ० १२१

का त्यागपूर्ण जीवन समाज-सेवा और जन साधारण की प्रेमशंकर के प्रति अटूट श्रद्धा देख कर, श्रद्धा का धर्मभीरु हृदय द्रवित हो उठता है । वह सोचती है कि जिस व्यक्ति के लिए इतना विशाल जन-समूह जयघोष कर रहा है क्या उसके लिये भी प्रायश्चित के पाखण्ड की आवश्यकता शेष रह जाती है ? बिना प्रायश्चित के ही श्रद्धा प्रेमशंकर को अपना लेती है । [१]

'यह पथ बन्धु था ' के श्रीधर घर छोड़कर परदेश चले जाते हैं । परित्यक्ता सरो का समाज में और परिवार में अपमान होता है। घर में सरो का जीवन दासी की तरह व्यतीत होने लगता है । समाज उसके सतीत्त्व पर सन्देह करता है, फिर भी सरो पति को दोषी नहीं ठहरा सकती और श्रीधर के सम्पूर्ण दोष अपने ऊपर ओढ़ लेती है । श्रीधर के अन्याय की सरो कल्पना भी नहीं कर सकती । श्रीधर उसे छोड़ कर चले जाते हैं, पर उसे भी वह अपना दुर्भाग्य मान कर सहन कर लेती है । सरो साधारण स्त्री है, उसमें विशेष योग्यता नहीं है, फिर भी विशिष्ट है, क्योंकि वह आदर्श समर्पिता पत्नी है और उसके अन्दर परिस्थिति को सहन करने की अद्वितीय क्षमता है । जीवन के झंझावातों से संघर्ष करती हुई सरो पचीस वर्षों तक उस दिशा को जोहती रहती है जिस ओर श्रीधर गये थे । बिना श्रीधर के यदि उसे मुक्ति मिलनी सम्भव होती तो इतना जीर्णशीर्ण कलेवर लेकर आपत्तियों को झेलते हुए वह कभी भी जीवित नहीं रह सकती थी । पचीस वर्षों पश्चात् श्रीधर के लौटने पर, बिना किसी उपालम्भ के वह उन्हें वरदान की तरह सहेज लेती है । द्रवित होकर सरो कहती है -'आप आ गये मेरे शतपुण्य आ गये । पुण्य पहनकर भगवान के यहाँ प्रतीक्षा करूंगी नाथ ।' [२] पति प्रेम की चरम सीमा सरो में परिलक्षित होती है । वह सब कुछ सह सकती है, अपनी प्रताड़ना, लांछना, अपमान सह सकती है परन्तु अपने सौभाग्य का अपमान नहीं सह सकती है । [३]

---

~~१. प्रेमचन्द , प्रेमाश्रम, पृ० १२१~~

१. ,, पृ० ३७६

२. नरेश मेहता ' यह पथ बन्धु था ' , पृ० ३१४,३१५

३ ,, ,, पृ० ३१५

'कर्मभूमि' की सुखदा 'गबन' की जालपा और 'बूंद और समुद्र' की कल्याणी पतिव्रता पत्नियाँ हैं। पति ही उनके जीवन का सर्वस्व है, पति के आस-पास ही उनके जीवन का वृत्त बनता है, पति से अलग उनके जीवन की कोई धारणा नहीं है, कोई अस्तित्व नहीं है, यदि उनके दाम्पत्य-जीवन में कहीं कुछ असामान्य है तो इतना ही कि पति की कोरी काल्पनिकता से उनके यथार्थवादी जीवन का समन्वय नहीं हो पाता है।

'कर्मभूमि' में स्नेह और वैभव के बीच विकसित हुई सुखदा विवाहित होती है, अमर जैसे कल्पनाशील युवक से। अमर के पास हठ और कोरी कल्पना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अमर की अपेक्षा सुखदा का व्यक्तित्व अधिक स्पष्ट और कुण्ठाओं से रहित है। सुखदा के दर्पपूर्ण व्यक्तित्व से घबरा कर अमर सकीना से प्रेम करने लगता है। सुखदा का स्वाभिमान आहत हो जाता है। वही सुखदा जो अमर के अहं को रखने के लिये घर के विलासी जीवन को त्याग कर संघर्षपूर्ण कठोर जीवन व्यतीत करना स्वीकार कर लेती है, अमर के नैतिक पतन से हुए अपने पत्नीत्व का अपमान सहन नहीं कर पाती और अमर के प्रति घनीभूत घृणा लिये हुए विद्रोही हो जाती है। वह कहती है-'उन्होंने मेरे साथ विश्वासघात किया है। मैं ऐसे कमीने आदमी की खुशामद नहीं कर सकती। अगर आज मैं किसी मर्द के साथ भाग जाऊं तो तुम समझती हो, वह मुझे मनाने जायेंगे ? वह शायद मेरी गर्दन काटने जांय। मैं औरत हूं और औरत का दिल इतना कड़ा नहीं होता, लेकिन उनकी खुशामद तो मैं मरते दम तक नहीं कर सकती।'[१] सुखदा के इस कथन में नारी का जागृत होता हुआ आत्मसम्मान अभिव्यक्त होता है। पत्नी पति के प्रति एकनिष्ठ है और साथ ही पति से भी एकनिष्ठा की मांग करती है। सुखदा के लिए पति के साथ लांछित और अपमानित जीवन जीने से अधिक अच्छा एकाकी जीवन व्यतीत कर लेना है। सुखदा को अपनी शक्ति पर और अपने चरित्र पर विश्वास है। पति से अलग रह कर भी वह पतिव्रता रह सकती है क्योंकि - 'यदि स्त्री किसी पर न मरने लगे तो पुरुष स्त्री को लांछित नहीं कर सकता है।'[२] विद्रोही सुखदा

---

१. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ० १९६

२. ,, पृ० २१६

अमर के सम्मुख विलाप नहीं करती वरन् अपनी शक्ति को जागृत कर समाज-सेवा की ओर उन्मुख हो जाती है । सुखदा का त्याग और सेवापूर्ण व्यक्तित्त्व पुन: अमर को झुकने के लिये विवश कर देता है । पति का सामीप्य ही सुखदा के लिये सब कुछ था ।[१]

'गबन' की जालपा पति की प्रेमिका कम और पथ प्रदर्शक अधिक है । पथभ्रष्ट रमाकान्त को जालपा अपने त्यागमय जीवन से सत्पथ पर चलने के लिये विवश करती है । रमाकान्त की झूठी डींगें जालपा के नारी सुलभ व्यक्तित्त्व को जागृत कर देती है और जालपा आभूषणों तथा आडम्बर पूर्ण जीवन के प्रति आकर्षित हो जाती है । रमाकान्त द्वारा किये गए गबन के वृत्तान्त को सुनकर उसे अपनी लोभवृत्ति और रमाकान्त के झूठे व्यक्तित्त्व के प्रति ग्लानि होती है । रमाकान्त गबन करके घर छोड़ कर भाग जाता है । रमाकान्त की कमज़ोरियों से जालपा परिचित है, उनसे घृणा भी करती है पर साथ ही पति की सच्चरित्रता पर उसको पूर्ण विश्वास है । पति के अन्तर्जगत् पर पत्नी के अधिकार की भावना जालपा के कथन से प्रकट होती है जब वह रतन के कथन—' मैं तो समझती हूं, किसी से आँखें लड़ गयीं । दस पाँच दिन में आप पता लग जायगा । यह बात सच न निकले, तो जो कहो, दूं ?' का उत्तर देते हुए कहती है — नहीं , रतन , मैं इस पर ज़रा भी विश्वास नहीं करती । यह बुराई उनमें नहीं है, और चाहे जितनी बुराइयां हों । मुझे उन पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं है ।'[२]

पति को गलत मार्ग पर देख कर उससे घृणा करना और उसका बहिष्कार कर देना मात्र ही जालपा का कर्तव्य नहीं है, पति के अपराधों के लिए वह स्वयं प्रायश्चित् भी करती है । रमाकान्त क्रान्तिकारियों के विरुद्ध झूठी गवाही देने जाता है तो जालपा रमाकान्त की भर्त्सना करती है और रमाकान्त के कारण दु:खी होने

---

१. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ० ३६२.

२. ,, गबन, पृ० १४६

वाले क्रान्तिकारियों के परिवारों की सेवा करके वह पति के पापों का प्रायश्चित्त करती है ।[१] न तो जालपा क्रान्तिकारियों के परिवार का कष्ट देख सकती है और न ही वह अपने पति को आग में फोंक सकती है । वह खुद मर सकती है पर रमाकान्त का अनिष्ट नहीं कर सकती, यही जालपा के पत्नीत्त्व की सफलता है ।[२]

'बूंद और समुद्र' की कल्याणी का व्यक्तित्त्व 'कर्मभूमि' की गर्वीली सुखदा और 'गबन' की पथप्रदर्शक जालपा से नितान्त भिन्न है । कल्याणी साधारण, अपढ़, कर्तव्यरत और एकनिष्ठ पत्नी है, परन्तु वह निरीह नहीं है । कल्याणी में पति के प्रति एकनिष्ठा है पर पति के सिद्धान्तों में उसे विश्वास नहीं है । कल्याणी महिपाल को उसकी सम्पूर्ण कमजोरियों के साथ अपनाती है । महिपाल के स्वाभिमान पर चोट आने से पहले ही कल्याणी महिपाल के साथ ननिहाल का सुख छोड़ कर संघर्ष पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए निकल पड़ती है और अपने सुख को परिवार के सुख में निहित कर देती है ।[३] कल्याणी अपने सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ है । अतिरिक्त दृढ़ता ही उसके चरित्र का दोष बन जाती है । महिपाल कल्याणी के एकनिष्ठ जीवन के प्रति श्रद्धाभाव रखता है परन्तु उसकी व्यवहार-परक बुद्धि के कारण उसे अयोग्य भी मानता है और डा० शीला स्विंग के सहवास में अपने जीवन की पूर्णता ढूंढ़ता है । महिपाल और शीला के सम्बन्धों में कल्याणी को अपने पत्नीत्त्व का अपमान लगता है इसलिये वह महिपाल की भर्त्सना करतती है ।[४] महिपाल कल्याणी का स्पष्ट अपमान करने के उद्देश्य से शीला के यहां स्थाई रूप से रहने के लिए चला जाता है । कल्याणी का स्वाभिमान घायल होता है, परन्तु परिवार के कल्याण के लिए वह शांत मन से सबकुछ सहन करके महिपाल को क्षमा कर देती है, यहीं कल्याणी के चरित्र की

---

१. प्रेमचन्द -'गबन', पृ० २५८, २८०, ३०६

२. ,, पृ०३०८

३. अमृतलाल नागर 'बूंद और समुद्र', पृ० १२१, ५६

४. ,, ,, पृ० १३६, १७४

महानता है ।[१]

(ब) पातिव्रत्य :- आरोपित -

'काया कल्प' की रोहिणी पति से उपेक्षित होने के पश्चात् जीवन भर तड़पती है । रोहिणी के माध्यम से प्रेमचन्द ने उपेक्षित पत्नियों की मानसिक स्थिति स्पष्ट की है । पति अपनी शारीरिक और मानसिक तृप्ति के लिए दूसरी पत्नी ले आता है परन्तु क्या समाज और भोगी पुरुष स्वयं अपनी पहली पत्नी को शारीरिक सम्बन्धों के लिए उतनी ही स्वतंत्रता दे सकता है ? सामाजिक नियमों और पारिवारिक मर्यादाओं को ढोती हुई रोहिणी जीवन भर वैधव्य का दु:ख भोगती है और परित्यक्त जीवन की व्रीड़ा को सहन करती है । रोहिणी पतिव्रता है परन्तु परित्याग का दु:ख उसे विक्षिप्त कर देता है । वह अपनी समस्त इन्द्रियों से पति को कोसती है । अन्त में टूट जाती है, फिर भी उसके संस्कार उसे नहीं छोड़ते । जिस पति ने जीवन भर के लिये उसे अपमानित करके त्याग दिया था उसी के पास वह क्षमायाचना के लिये जाती है । रोहिणी का एक वाक्य -"सीता बनाने के लिए राम जैसा पुरुष चाहिए"- पत्नियों से पवित्र आचरण की इच्छा रखने वाले समाज और पति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के लिए एक चुनौती है ।[२]

पत्नियों पर समाज की सम्पूर्ण नैतिकता का बोझ डाल कर पुरुषवादी समाज अपनी स्वेच्छाचारिता का परिचय देता है क्योंकि -'पुरुष का दोष दोष नहीं वह पुरुषार्थ है, लेकिन स्त्री' की पवित्रता के लिये युगों से परीक्षाएं ली गई हैं ।[३] जीवन-सुख से दूर रोहिणी जैसी अनेक पत्नियां पातिव्रत्य को आधार बनाकर टूटती रहीं, बिखरती रहीं, सत्यता की आंच में तप कर खरा उतरने के लिये सम्पूर्ण जीवन उत्सर्ग करती रहीं, परन्तु पुरुष और समाज उनसे और अधिक पवित्रता की मांग करता रहा है ।

---

१. अमृतलाल नागर , बूंद और समुद्र, पृ० १८०

२. प्रेमचन्द्र, कायाकल्प, पृ० २७६

३. जैनेन्द्र, कल्याणी, पृ० १४

शारीरिक स्तर पर पातिव्रत्य का निर्वाह करने के लिए विवश पत्नियों में 'झूठा सच' की बन्तो का चित्रण अत्यन्त मार्मिक स्तर पर हुआ है। परिस्थितियों से जूझती हुई, समय की मार खाई, भूखी-प्यासी बन्तो दौड़ कर परिवार में मिलना चाहती है, परन्तु पति जिसका पुरुषत्त्व पत्नी पर बलात्कार करने वाले पुरुष के लिये नपुंसक हो गया था, परिस्थितियों का दोष पत्नी पर थोप देता है। तिरस्कृता बन्तो सतीत्त्व की परीक्षा में सफल होने के लिये पति की देहरी पर ही आत्महत्या कर लेती है।[१] आत्महत्या के पश्चात् उसी पत्नी के सिर जो अपवित्र हो चुकी थी सतीत्त्व का सेहरा बांधा जाता है।

बंटवारे के पश्चात् समाज ने जिन अपहृता स्त्रियों को अपनाया है उनका जीवन भी विशेष सम्मानपूर्ण ढंग से व्यतीत नहीं हुआ है। उन्हें जीवन भर मानसिक तनावों के मध्य रहते हुए अति संयमित जीवन व्यतीत करना पड़ा है। 'एक और मुख्य मंत्री' में गुलाब एक अपहृता कन्या है जिसके साथ अरविन्द विवाह करता है। अरविन्द प्रतिक्षण गुलाब को उसके व्यतीत जीवन की याद दिलाकर वर्तमान में पवित्र रहने का उपदेश दिया करता है। समाज में अपवित्र स्त्रियों के लिए सम्मानपूर्ण स्थान नहीं है, इसलिये अपवित्र स्त्री को पत्नीत्त्व का गौरव देने वाला पति पत्नी के लिये देवतुल्य हो जाता है। गुलाब के लिये अरविन्द देवता के समान है जिसने उसका उद्धार किया है। पति का सुख ही गुलाब का सुख है। अरविन्द को डायबटीज़ होती है तो गुलाब भी चीनी का त्याग कर देती है। जिस स्वाद को उसका पति नहीं लेता उसका वह कैसे अनुभव कर सकती है।[२] गुलाब के पति-प्रेम तथा त्याग के पीछे वस्तुत: त्याग न होकर क्रीतदासी की स्थिति अधिक है। उसे न अपने लिये सोचने का अधिकार है न पति के जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकार है। पति के चरित्र में दोषों को देख कर भी वह अनदेखा कर देती है क्योंकि पति के चरित्र पर शंका करके वह पतिभक्ति की भावना को खण्डित नहीं करना चाहती है। गुलाब अपने विगत के कारण अपने को अत्यन्त हीन दृष्टि से देखती है और सम्पूर्ण जीवन सतीत्त्व की कसौटी पर खरा उतारने का प्रयत्न करती है।[३] वस्तुत: गुलाब का जीवन उद्धार की गई नारियों के दासत्त्व की कथा है।

---

१. यशपाल , झूठा सच, भाग २, पृ० १३८

२. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र , 'एक और मुख्य मंत्री , पृ० ४०६

३. ,, ,, पृ० ७१

ख. एक पत्नीव्रत की भावना
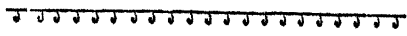
पुरुष की वासनावृत्ति यदि पुरुष के चरित्र को पतनोन्मुख करती है तो पुरुष का अर्जित संयम उसके व्यक्तित्व को निखार देता है । स्त्रियों की भांति पुरुषों में भी चरित्र की दृढ़ता होती है और एकनिष्ठ प्रेम को जीवन में महत्त्व देकर वे अपने जीवन को अधिक प्रतिभा-सम्पन्न बनाते हैं । पत्नी के प्रति पुरुष की एकनिष्ठा कभी स्वाभाविक होती है और कभी परिस्थितिवश होती है ।

अ. स्वाभाविक एक पत्नीव्रत

'प्रेमाश्रम' उपन्यास के प्रेमशंकर के व्यक्तित्त्व में संयम और भावुकता का सम्मिश्रण है । विदेश का आकर्षण यदि एक बार उन्हें अपना देश छोड़ने के लिए विवश कर सकता है तो पत्नी-प्रेम उन्हें पुन: देश में लौटा कर ला सकता है । विदेश जा कर भी प्रेमशंकर श्रद्धा को नहीं भूल पाते और देश लौटने पर जब श्रद्धा ही धर्मभय से उनकी अवहेलना करती है तो वे उनका स्नेही हृदय दु:खी हो जाता है, परन्तु प्रेमशंकर निराश नहीं होते हैं स्थिति की गम्भीरता को वे समझ जाते हैं तथा श्रद्धा के प्रति उनका अनुराग और बढ़ जाता है क्योंकि अब भी वे स्त्रियों की श्रद्धा, पतिभक्ति, लज्जाशीलता और प्रेमानुराग पर मोहित थे ।'[१] पत्नी के प्रति उनके आकर्षण की तीव्रता उन विशेष स्थितियों में और भी प्रकट होती है जब वे श्रद्धा को आत्महत्या करने से बचाते हैं और अपने सिद्धान्तों को छोड़ कर प्रायश्चित्त करने के लिये अपने आप को तैयार करते हैं ।[२] प्रेमशंकर आदर्श समर्पित पति हैं ।

'यह पथ बन्धु था' के श्रीधर आदर्शवादी युवक हैं । इन्दु दीदी के सम्पर्क में रह कर उनका भाव-प्रवण हृदय और अधिक भावुक हो जाता है । सम्पूर्ण जीवन कष्टों को सहना और चुप रहना ही उनकी प्रकृति है । यदि कहा जाये कि श्रीधर वस्तुजगत् से हट कर काल्पनिक जीवन में खोये रहते थे तो अनुचित न होगा ।

---

१. प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' पृ० १०८

२. ,, पृ० २१५,२१६

श्रीधर परिवार के अन्दर अपनी और अपनी पत्नी की स्थिति को भली-भांति जानते हुए भी शान्त रहते हैं । उनके हृदय में उथल-पुथल होती है पर उनका शान्त व्यक्तित्त्व बाहर कुछ भी व्यक्त नहीं होने देता, यही श्रीधर के चरित्र का सौन्दर्य है[१]। अपने सिद्धान्तों के प्रति श्रीधर सजग हैं और सिद्धान्तों के पीछे ही मास्टरी की नौकरी से इस्तीफा भी देते हैं । पत्नी और सन्तान का भविष्य श्रीधर के समक्ष प्रश्न बन कर आता है परन्तु श्रीधर के लिए बुद्ध और विवेकानन्द आदर्श थे ऐसी स्थिति में वे परिवार की सीमाओं में कहां बंध सकते थे । परिवार छोड़ने के पश्चात् भी वे सरो को नहीं भूल पाते क्योंकि उनके जीवन का लक्ष्य सत्य और सरो थी जिसके लिये उन्होंने निरन्तर संघर्ष किया है । २५ वर्षों पश्चात् लौटने पर जब वे जर-जर-गात सरो को देखते हैं तो उनका अन्तर्मन चीख उठता है - 'सरो, तुम जिस पति को पूजती रही, बुलाती रही हो वह जीवन के सारे पासे हार कर क्षत-विक्षत होकर लौटा है ।'[२] सरो की उपेक्षा श्रीधर को जीवन भर सालती रही यद्यपि यह उपेक्षा परिस्थितिवश थी । पश्चात्ताप से द्रवीभूत हो श्रीधर कहते हैं -'सच मानो सरो ! अनुरवन सालता रहा कि यह मेरी निर्ममता है जो एक दिन अनकहे घर से निकल पड़ा, उसके बाद दिन-के-बाद-दिन और इस तरह बरसों बीतने लगे बस, विवश ही होता चला गया । सच, कहीं उपेक्षा जैसा कोई भाव नहीं था ।'[३] सरो ही उनके जीवन-संघर्ष की शक्ति है । जिसके जीवन का सम्पूर्ण विगत संघर्षों के मध्यव्यतीत हुआ हो, सरो की मृत्यु उसके जीवन को भी समाप्त कर देती है । सरो के बिना श्रीधर का जीवन केन्द्र-विहीन हो जाता है ।[४]

'पत्थर युग के दो बुत' का पति सुनीलदत्त पत्नी रेखा को हृदय से चाहने वाला सच्चरित्र पति है । सुनील में यदि कोई दोष है तो इतना ही कि वह शराब पीता है । रेखा से सुनील का मदिरापान सहन नहीं होता । शराब रेखा और सुनील

---

१. नरेश मेहता - यह पथ बन्धु था', पृ० ३५
२. ,, ,, पृ० ३११
३. ,, ,, पृ० ३१३
४. ,, ,, पृ० ३२२,३२३

के जीवन में अन्तराल उत्पन्न कर देती है । मानसिक तनाव की स्थिति में राय रेखा के जीवन प्रवेश करते हैं और रेखा पर मानसिक तथा शारीरिक रूप से पूर्ण अधिकार कर लेते हैं । दत्त रेखा के प्रेम में अपने प्रति उदासीनता का अनुभव करता है परन्तु रेखा के चरित्र पर वह अविश्वास नहीं कर पाता, यह दत्त के अपने चरित्र की दृढ़ता है जो वह रेखा को भी अन्ततक दोषहीन ही मानता रहता है ।

रेखा और राय का अनैतिक सम्बन्ध दत्त को अशान्त कर जाता है । वह रेखा को मार नहीं सकता क्योंकि रेखा से उसने प्रेम किया है । रेखा को सुखी देखना ही उसके जीवन की एक मात्र इच्छा है । रेखा के सुख के लिए वह त्याग के चरम रूप की कल्पना कर लेता है । वह निश्चय करता है कि राय और रेखा का विवाह सम्पन्न कराके आत्महत्या कर लेगा । सुनीलदत्त राय द्वारा किये गए रेखा के अपमान को सहन नहीं कर पाता और राय की हत्या कर देता है ।

सुनीलदत्त रेखा को अपनी एकनिष्ठा और असीम प्रेम के कारण प्रताड़ित नहीं कर पाता फिर भी पति का प्रतिशोधी हृदय पत्नी द्वारा किये गये विश्वास-घात का बदला ले लेता है । दत्त स्वयं स्वीकार करता है -'रेखा के लिए यह सजा काफी है । जो मैंने नहीं - उसके नारी जीवन ने दी है । परन्तु, रेखा के लिए मैंने जो सबसे बड़ी सज़ा दी है, वह यह है कि मैं रेखा से अब भी उतना ही प्यार करता हूं जितना सदा से करता रहा हूं और उसे केवल अपनी धन-सम्पत्ति और प्रतिष्ठा ही नहीं, अपना वह असाधारण प्यार भी जो अछूता और उसी के लिए था- उसे दिये जा रहा हूं जिसका अनिर्वचनीय आनन्द उसने अनुभव किया, परन्तु अब वह उसके जीवन के अन्त तक असह्य दुस्सह दर्द बना रहेगा ।'[१]

'दो एकान्त' का विवेक वानीरा से असीम प्रेम करता है । वानीरा की इच्छा में ही अपनी इच्छा का विलय कर देना उसके समर्पित पतित्त्व की चरमसीमा है । वानीरा के आग्रह पर विवेक पुरी से डिब्रूगढ़ और डिब्रूगढ़ से इलाहाबाद तक की निरर्थक दौड़ लगाता है । वानीरा का अन्य पुरुषों से सम्बन्ध स्थापित करना, अत्यन्त

---

१. चतुर सेन शास्त्री, 'पत्थर युग के दो बुत, पृ० १६०

सामाजिक होते जाना और अपने प्रति वानीरा के उपेक्षा भाव का स्पष्ट अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् भी विवेक शान्त और तटस्थ बना रहता है । पत्नी द्वारा उपेक्षित होने के पश्चात् मन में उठने वाले अन्तर्द्वन्द्व का वह किंचित आभास भी बाहर नहीं होने देता यही विवेक के भावुक चरित्र की दृढ़ता है ।[१] डिब्रूगढ़ की जमी हुई प्रैक्टिस छोड़ कर वानीरा की खुशी के लिए वह इलाहाबाद में प्रैक्टिस जमाने का अथक परिश्रम करता है । जीविकोपार्जन की व्यवस्था से परिश्रमित विवेक जब वानीरा के पवित्र सामीप्य में अपनी थकान मिटाने आता है उस समय वानीरा और मेजर आनन्द के अनुचित सम्बन्धों को जानकर स्तब्ध रह जाता है ।[२] विवेक वानीरा को प्रताड़ित नहीं कर पाता क्योंकि उसने वानीरा से एकनिष्ठ प्यार किया है । भग्न हृदय विवेक जीवन के सम्पूर्ण उल्लास को छोड़ कर अपने आप में सिमट आता है । मुखर रूप से प्रताड़ित न होते हुए भी वानीरा विवेक के मौन से प्रताड़ित हो जाती है । विवेक द्वारा परिस्थिति को सहन कर घुटते हुए चुप रह जाना ही वानीरा के कृत्य का कठोर दण्ड है, जिसमें वानीरा दग्ध होते हुए जीवित रहती है ।[३]

**ब परिस्थिति जन्य एक पत्नीव्रत**

प्रेमचन्द के उपन्यासों में पति का परिस्थिति जन्य एक पत्नीव्रत मिलता है । इसका मुख्य कारण कथाकार का नैतिकता के प्रति विशेष आग्रह हो सकता है । 'सेवासदन' का सदन एक ऐसा पति है जो पत्नी शान्ता से प्रेम करता है और उसके प्रेम का आकर्षण इतना तीव्र है कि अन्य स्त्रियों को वासना युक्त दृष्टि से वह देख भी नहीं सकता है । 'नदी के तट पर वह नित्य स्त्रियों को देखा करता था पर , कभी उसके मन में कुभाव न पैदा होते थे । सदन इसे अपना चरित्र- बल

---

१. नरेश मेहता , दो एकान्त, पृ० १०७
२. ,, ,, पृ०१६५
३. ,, ,, पृ० १७५

समझता था ।[1] यद्यपि प्रेमचन्द ने पुरुष चरित्र की अस्थिरता को स्पष्ट ~~करते~~ रूप में अंकित किया है पर साथ ही वे पुरुष के चरित्र को पतित होने से पहले ही बचाने का प्रयत्न भी करते हैं । गर्भिणी पत्नी शान्ता के पास जाने में और बैठने में सदन को ऊब लगने लगती है और घर में कामतृप्ति न होते देखकर वह दालमंडी की ओर भी जाता है, इस तथ्य को सदन स्वयं स्वीकार करता है ।[2] परन्तु दालमंडी पहले ही उजड़ चुकी है और वेश्याएं वहां से हटा दी गई हैं । 'उसका मन खिन्न हो गया, लेकिन एक ही क्षण में उसे एक विचित्र आनन्द का अनुभव हुआ । उसने अपनी काम-प्रवृत्ति पर विजय पा ली, मानो वह किसी सिपाही के हाथ से छूट गया ।'[3] वस्तुत: सदन अपनी काम-प्रवृत्ति पर विजय नहीं पाता वरन् परिस्थिति उसे काम भावना को दमित करने के लिए बाध्य कर देती है और शारीरिक रूप से सदन के चरित्र का स्खलन नहीं हो पाता है ।

'गबन' का रमाकान्त दुर्बल व्यक्तित्व का व्यक्ति है । चारित्रिक दोष उसमें नहीं है यह जालपा जानती है और स्वीकार भी करती है । जालपा से अलग रहना और ज़ोहरा, ~~के सानिध्य में व्यतीत क्षण~~ जो एक वेश्या है, का सानिध्य रमाकान्त की चारित्रिक दृढ़ता को डगमगा देता है । ज़ोहरा के सानिध्य में व्यतीत क्षणों में रमाकान्त की

---

१. प्रेमचन्द - सेवा सदन, पृ० ३५७

२. लेकिन जब गर्भिणी शान्ता के प्रसूत का समय निकट आया और वह बहुधा अपने कमरे में बन्द मन्द, मलिन, शिथिल पड़ी रहने लगी तो सदन को मालूम हुआ कि 'मैं बहुत धोखे में था । जिसे मैं चरित्र बल समझता था, वह वास्तव में मेरी तृष्णाओं के सन्तुष्ट होने का फल मात्र था ।'........ उसकी विलास तृष्णा ने मन को फिर चंचल करना शुरू किया, कुवासनाएं उठने लगीं । वह युवती मल्लाहिनों से हंसी करता गंगा-तट पर जाता तो नहाने वाली स्त्रियों को कुदृष्टि से देखता । यहां तक कि एक दिन इस वासना से विरक्त होकर वह दालमण्डी की ओर चला ।........ काम-भोग की प्रबल इच्छा उसे बढ़ाये लिये जाती थी । उसका ज्ञान और विवेक इस समय आवेग से नीचे दब गया । —प्रेमचन्द - सेवासदन, पृ० ३५७-३५८.

३. प्रेमचन्द, सेवा सदन, पृ० ३५८

मानसिक स्थिति का चित्रण[१] रमाकान्त की दुर्बलता को अभिव्यक्त करता है । परन्तु इससे पहले कि रमाकान्त ज़ोहरा के साथ शारीरिक स्तर पर सम्बन्ध स्थापित करे जालपा पुन: अपने तेजस्वी रूप में उन दोनों के मध्य आ खड़ी होती है और रमाकान्त को परिस्थितियां पतित होने से पहले ही बचा लेती हैं ।

'तितली' में प्रसाद ने पुरुष-हृदय में नारी की चंचलता के प्रति सहज रूप से उत्पन्न होने वाले आकर्षण को उभारा है । प्रारम्भ में मधुबन के व्यक्तित्व में जो दृढ़ता प्रसाद ने चित्रित की है वस्तुत: वह पुरुषत्त्व के आदर्श रूप की प्रतीक है । तितली पत्नी है साथ ही उसमें प्रभुत्व की प्रधानता है । मधुबन तितली के प्रति श्रद्धा भाव रखते हुए भी मैना के चंचल रूप के प्रति आकर्षित हो जाता है ।[२] इसका स्पष्ट कारण है कि मैना वैश्या है और पुरुष को आकर्षित करने के जो गुण वैश्या में प्राप्त होते हैं उनका गृहिणी में अभावहोता है । मधुबन तितली से ऊब कर मैना के समीप पहुंचने का प्रयत्न करता है । परिस्थितियां मधुबन को मैना से दूर ले जाती हैं और पुन: जब मधुबन लौटता है तो मैना की मृत्यु हो जाती है । परिणामत: चाहते हुए भी मधुबन मैना का सहवास प्राप्त नहीं कर पाता और परिस्थितियां उसके चरित्र को कलंकित होने से पहले बचा लेती हैं ।

## २. पत्नी के चरित्र का ह्रास

संस्कारों और सामाजिक बन्धनों के कारण पत्नी अपने चरित्र की पवित्रता को बनाये रखने का यथासाध्य प्रयत्न करती है । फिर भी किन्ही विशेष स्थितियों

---

१. 'रमा के मन में कई दिनों तक संग्राम चलता रहा । जालपा के साथ उसका जीवन कितना नीरस, कितना कठिन हो जायेगा । वह पग-पग पर अपना धर्म और सत्य लेकर खड़ी हो जायेगी और उसका जीवन एक दीर्घतपस्या, एक स्थायी साधना बनकर रह जायगा । सात्त्विक जीवन कभी उसका आदर्श नहीं रहा । साधारण मनुष्यों की भांति वह विलास करना चाहता था । जालपा की ओर से हट कर उसका विलासयुक्त मन प्रबल वेग से ज़ोहरा की ओर खिंचा । उसको व्रत-धारिणी वैश्याओं के उदाहरण याद आने लगे । उसके साथ ही चंचल वृत्ति की गृहिणियों की मिसालें भी आ पहुंचीं ।'

—प्रेमचन्द, गबन, पृ० २६२

२. प्रसाद —'तितली', पृ० १७२

में उसके चरित्र का पतन हो जाता है जिसके लिए कभी घर का वातावरण, कभी पति और कभी स्वयं उसकी अतृप्त वासनाएं उत्तरदायी होती हैं ।

(क) अभुक्त वासना और स्वच्छन्द शारीरिक सम्बन्ध

पति से पुरुषत्त्व की प्राप्ति न होने पर पत्नी का अतृप्त मन तृप्ति के लिये सबल आधार की इच्छा रखता है । जैनेन्द्र की 'सुखदा' तेजस्विनी पत्नी है, विनम्र पति सुखदा के नारीत्त्व को तृप्त नहीं कर पाता है । सुखदा के पूर्व जीवन में कोई भी पुरुष नहीं है फिर भी एक काल्पनिक पुरुष की छाया, जिससे कान्त का व्यक्तित्त्व नितांत भिन्न है, सुखदा को घेरे रहती है । आर्थिक तथा शारीरक पक्ष से असन्तुष्ट सुखदा कान्त को प्रत्येक कदम पर अपमानित करती है । वह कान्त को इष्ट, अनिष्ट सभी कुछ सुनाती है । सुखदा पुरुष के समर्पित नहीं आक्रामक रूप से सन्तुष्ट होने वाली नारी है । उसका नारीत्त्व पराजित होता है लाल के हठी दृढ़ औरकर्मठ व्यक्तित्त्व के सामीप्य में ।

दो एकान्त की वानीरा का प्रारम्भिक दाम्पत्य-जीवन सरस और मधुर व्यतीत होता है । वानीरा में किसी भी प्रकार के अन्य पुरुष की कल्पना नहीं है परन्तु विवेक का आत्मिक समर्पण उसके अहं को बढ़ावा देता है । क्लाइड वानीरा और विवेक के मध्य आता है । विवेक के परिवार में क्लाइड का आना प्रारम्भ में एक मित्र की स्थिति तक ही सीमित रहता है. परन्तु कालान्तर में क्लाइड का व्यक्तित्त्व वानीरा को पूर्णतः प्रभावित कर लेता है । क्लाइड से प्रभावित वानीरा पुरी छोड़ कर डिब्रूगढ़ पहुंचती है । क्लाइड के प्रयत्न, क्लाइड द्वारा की गयी वानीरा की प्रशंसा, एकान्त में वानीरा का स्पर्शादि वानीरा में सोयी हुई वासना को जगा देते हैं ।[१] वानीरा का क्लाइड के व्यक्तित्त्व के प्रति आकर्षित होने का एक मुख्य कारण विवेक की स्थिति भी है । वानीरा का सारा समय विवेक की प्रतीक्षा करते बीतता है । विवेक यह जानते हुए कि वानीरा के सान्निध्य में भी उसका समय व्यतीत होना चाहिए वानीरा के साथ अपना समय नहीं दे पाता है ।

---

१. नरेश मेहता, दो एकान्त , पृ० १०७

वानीरा का अधिक समय क्लाइड के सान्निध्य में व्यतीत होता है । ऐसी स्थिति में खुलेमन और खुले हाथ वाले शिकारी क्लाइड के छ: फुट लम्बे व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसका स्वयं समर्पित हो जाना भी अस्वाभाविक नहीं है । शाम, एकान्त, क्लाइड का साथ और मानसिक स्थिति वानीरा के अन्दर घुमड़ते भावों को व्यक्त करने के लिए विवश कर देते हैं – 'पता नहीं कब और कहां पढ़ा था कि जब दो व्यक्ति प्रेम करते हैं तब आकाश में एक तारा जन्म ग्रहण करता है - क्या इस समय भी कोई तारा जन्म ग्रहण कर रहा है क्लाइड ?[1]'

क्लाइड के पश्चात् वानीरा मैजर आनन्द की ओर आकर्षित होती है । मैजर आनन्द के व्यक्तित्त्व में वही है जो विवेक के व्यक्तित्त्व में नहीं है ।' उसकी न केवल बातों में ही बल्कि हंसी तक में सामने वाले को अकेले कर जाने की क्षमता थी । सामने वाले को वह लेता अवश्य था पर स्वयं को उसे कितना सौंपता था, इसका निर्णय चाहते हुए भी वानीरा नहीं कर सकी ।[2] रैस्ट हाउस की रात्रि के एकान्त में वानीरा मैजर आनन्द द्वारा कहे गए वाक्य' इतना सौभाग्य क्यों कभी हो सकता है ? 'के 'अतिरिक्त अर्थ' को समझती हुई निस्पृह खड़े हुए उस शलाका पुरुष को देखती रही ।' आनन्द आकाश में फैले जिस काल-पुरुष को दिखाना चाहता था उसे 'वह देख सकी या नहीं पर उसके मन ने जिसे शलाका पुरुष स्वीकारा था उसे वह आद्यान्त देख सकी । कैसे वह अवश हुई, कैसे आनन्द उसे कमरे तक लाया और वह यह भी कुल इतना जान सकी कि उसने अपने को सौंपा नहीं वरन् ग्रहीता हुई,[3] क्योंकि आनन्द के पीछे जो अंधेरा था उसमें हठात् विवेक खड़ा दिखा था ।[4] वानीरा अपने जीवन में से आनन्द को हटाना चाहती है क्योंकि 'जिस घर को डिब्रूगढ़ आकर संवारा है उसे वह विनष्ट नहीं करना चाहती है' पर यह भी वानीरा की एक विवशता है कि जिस समय विचारों में वह विवेक के पास होना चाहती है उस समय आनन्द सामने आ खड़ा होता है ।[5] वानीरा के जीवन की विडम्बना यही है

---

१. नरेश मेहता, दो एकान्त, पृ० ११२
२. ,, ,, पृ० ६०
३. ,, ,, पृ० १०४
४. ,, ,, पृ० १०८
५. ,, ,, पृ० १०८

कि न तो वह विवेक को छोड़ सकती है, क्योंकि विवेक उसके जीवन के प्रति उत्तरदायी है और न ही वह आनन्द से सम्बन्ध तोड़ सकती है क्योंकि आनन्द उसके एकान्त का साथी है और वासना की तृप्ति है ।

अभुक्त वासना के कारण मर्यादित कुलवधू का अनैतिक सम्बन्धों के प्रति उन्मुख होने का एक प्रभावपूर्ण चित्रण भगवती प्रसाद बाजपेयी ने 'एक प्रश्न' उपन्यास में किया है । लीला की स्थिति उस 'विवश नारी-सी है जो ऊपर से वधू है लेकिन भीतर से विधवा है ।'[१] कमलेश अतिथि के रूप में लीला के घर में रहता है । प्रबोध बाबू एक धनाढ्य व्यापारी हैं । लीला के पास घर की देख-रेख के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं है । प्रबोध बाबू की व्यावहारिक बातें लीला के विलास-प्रिय मन को सन्तुष्ट नहीं कर पातीं । प्रबोध के प्रति उसके भीतर ही भीतर एक 'वितृष्णा-सी जग उठती है क्योंकि 'रूपसौन्दर्य की चर्चा प्रबोध बाबू की बातचीत का विषय ही नहीं बनती है कभी ।[२] लीला के अतृप्त जीवन में आता है कमलेश ,जो विधुर है साथ ही कवि भी है । घर का एकान्त कमलेश का सान्निध्य और भावुकता के साथ ही कमलेश के व्यक्तित्व का उखड़ा-उखड़ा पन लीला को उसके प्रति समर्पिता बना देता है । कमलेश लीला के भाव को समझता है और वह लीला को समझाता भी है --'बुराई-भलाई की बात मैं नहीं कहता, लेकिन भाई साहब के साथ एक विश्वासघात का आरम्भ तो हम कर ही रहे हैं ।'[३] परन्तु लीला पर कमलेश के नीति उपदेशों का प्रभाव नहीं पड़ता वह अपनी वासना तृप्ति के लिये पति से छल करने के लिए तत्पर है 'उह चिन्ता मत करो उनको कुछ भी मालूम नहीं होगा ।'[४] शराब का नशा लीला की नैतिक चेतना, पारिवारिक उत्तरदायित्व की भावना और पति के प्रति उसके कर्तव्यों की चेतना को विलुप्त करता जाता है वह तो बस इतना ही सोच पाती है -- पहले मैं हूं, मेरा मन है, मन की तृप्ति और शान्ति , मेरा परिपूर्ण जागरित अस्तित्व उसके बाद और कुछ ।[५] वासना की लहर में वह इतना ही

---

१. भगवतीप्रसाद वाजपेयी, 'एक प्रश्न' , पृ० ७३,८८
२. ,, ,, ,, पृ० ६६
३. ,, ,, ,, पृ० ८७
४. ,, ,, ,, ,,
५. ,, ,, ,, पृ० ८८

जान पाती है कि जो मार्ग वह अपना रही है वस्तुत: वही सही है । अभुक्त वासना के कारण पतित होने वाली नारी के प्रति कथाकार की सहानुभूति है जो कमलेश के विचारों में परिलक्षित होती है ।"[१]

'रेखा' उपन्यास में पत्नी के वासनात्मक जीवन के विविध पक्षों को भगवती चरणवर्मा ने उभारा है । उपन्यास में देवकी , रेखा, और रत्ना कुलीन परिवार की पत्नियां हैं । देवकी ने अपने जीवन में दो पुरुषों को स्थान दे रखा है एक तो उसका पति दाताराम दूसरा प्रोफसर प्रभाशंकर है । देवकी प्रभाशंकर के पत्नी-पक्ष की पूर्णता भी है क्योंकि देवकी के जीवन में आजाने के पश्चात् प्रभाशंकर को विवाह की आवश्यकता अनुभव नहीं होती है ।[२] देवकी के पतन का एक मुख्य कारण उसका निर्बल व्यक्तित्त्व वाला पति है तो दूसरा कारण प्रभाशंकर की आर्थिक क्षमता भी है । देवकी के पतित चरित्र में भी एक विशेषता है कि वह अपने परिवार और पति के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण निर्वाह करती जाती है ।

रेखा सुन्दर योग्य सुशिक्षित नारी है । रेखा धनी-वर्ग की कन्या और धनी पति की पत्नी है । धन उसके पतन का कारण नहीं है । रेखा जिस वातावरण में जीवन व्यतीत करती है उसमें चरित्र की शुद्धता विशेष अर्थ भी नहीं रखती । उसके अतिरिक्त युवकों का साथ और उसका अनुपम सौन्दर्य स्वयं उसके लिए पतन का कारण बन जाते हैं । सोमेश्वर, निरंजन, शशिकान्त, यशवन्त सिंह और योगेन्द्रनाथ मिश्र उसके जीवन में आते हैं । सोमेश्वर के साथ हुए प्रथम सहवास में वह अनुभव करती है कि उसने अपने देवता-तुल्य पति को धोखा दिया है परन्तु उसके पश्चात् उसकी शारीरिक भूख आत्मा की चैतन्यता को जड़ बना देती है ।[३] पर-पुरुष से सम्भोग रेखा के लिए साधारण बात हो जाती है यहां तक कि अपरिचित यशवन्त सिंह के सुडौल शरीर से प्रभावित होकर सरलता से उसके भी आमंत्रण को वह स्वीकार कर लेती है ।[४] अन्त में रेखा की नारी योगेन्द्रनाथ मिश्र के प्रति शरीर और आत्मा

---

१. भगवतीप्रसाद वाजपेयी 'एक प्रश्न' , पृ १७५
२. भगवतीचरण वर्मा , रेखा, पृ० २२
३. ,, ,, पृ० १०६
४. ,, पृ० २११

से समर्पित होती है ।[१] योगेन्द्रनाथ को रेखा अपने जीवन में उस प्रकार अनुभव ~~करती~~ नहीं कर पाती जिस प्रकार अन्य पुरुष आए और चले गए थे । योगेन्द्रनाथ से शारीरिक के साथ ही मानसिक स्तर पर जुड़ जाने के कारण ही उसके दाम्पत्य जीवन की शान्ति भंग होती है । शारीरिक स्तर पर अन्य पुरुषों से सम्बन्ध स्थापित करने के साथ ही रेखा के अन्दर प्रभाशंकर के प्रति अत्यन्त कोमल भाव भी है पति की बीमारी में गालियां सहते हुए भी वह पति की सेवा करती है ।[२] भले ही पति से उसे शारीरिक सन्तोष न मिला हो परन्तु पत्नी का आदरपूर्ण स्थान तो मिला ही था । प्रभाशंकर के प्रति रेखा में ममता है । यह ममत्व ही उसके हृदय का कोमल पक्ष है जो विद्रोहिणी होते हुए भी उसे विद्रोह नहीं करने देता ।

रत्ना अत्यन्त धनी परिवार की आधुनिक प्रौढ़ा है जो युवती होने का दम्भ रखती है । चावला साहब उसके पति है । वासना के क्षेत्र में रत्ना पुरुषों की भांति ही स्वतंत्र है । परिवार, समाज और धर्म उसके लिए अमहत्वपूर्ण हैं । रत्ना की स्वतंत्रता सीमा का उल्लंघन कर जाती है । शीरी का भावी पति निरंजन रत्ना का भावी दामाद है । रत्ना अपनी वासनात्मक दृष्टि का प्रभाव निरंजन पर भी डालती है ।[३] रत्ना रेखा की प्रतिद्वन्द्विता में प्रभाशंकर से भी सम्बन्ध स्थापित करती है ।[४] सम्पन्न और अत्याधुनिक वर्ग के नैतिक पतन का चरम केन्द्र रत्ना है , जहां शारीरिक भूख की प्रबलता के समक्ष सम्बन्धों की पवित्रता भी अर्थहीन हो जाती है ।

देवकी रेखा और रत्ना का चरित्र भले ही समाज के एक विशेष वर्ग का कटुसत्य हो परन्तु नैतिकता की दृष्टि से अवांछनीय है । उपन्यास में कथाकार ने जिन नारी पात्रों को उठाया है सभी के चरित्रगत पतित पक्ष को ही उभारा है ।

---

१. भगवतीचरण वर्मा, रेखा पृ० २६०
२. ,, पृ० ३४२,३४७
३. ,, पृ० १५६
४. ,, पृ० १७१

नारी का पतित रूप भी सत्य है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक नारी पतित ही हो । देवकी, रेखा और रत्ना को देखते हुए समाज समाज की प्रत्येक नारी का चरित्र प्रश्न बन जाता है , परन्तु यह भी सत्य है कि बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों ने और नैतिक मूल्यों ने पत्नी को पति के प्रति एकनिष्ठ नहीं रखा है और न ही पत्नी अब एकनिष्ठ रहने के लिए अपने आप को बाध्य समझती है, फिर उपन्यास में उस वर्ग को चित्रित किया गया है जहां सब कुछ विपुलता से प्राप्त होता है, जहां शराब, डान्स और मनबहलाव के अन्य साधन पैसा खर्च करने का माध्यम मात्र हैं वहां चरित्र की शुद्धता अपना कोई अर्थ नहीं रखती है ।

ख. पति की प्रतिद्वन्द्विता तथा चरित्र-पतन

नव-जागरण के साथ ही स्त्री में पुरुष के प्रति स्पर्धा की भावना जागृत हुई है । यद्यपि संस्कार पत्नी को पति के प्रति एकनिष्ठ रखते हैं तथापि परिस्थितियां पत्नी के चरित्र को कहां तक मोड़ सकती हैं यह पूर्व विवेचन से स्पष्ट होता है । आर्थिक रूप से परतन्त्र नारी के लिये एक आश्रय की आवश्यकता होती है, इस आवश्यकता ने नारी पत्नी को पति के प्रति एकनिष्ठ रहने के लिए विवश किया । आश्रय-प्रधान सभ्यता में पति पत्नी का स्वामी होता है और पत्नी पति की 'मिल्कियत' होती है । इस व्यवस्था में पत्नी की चारित्रिक दृढ़ता आत्मजन्य न होकर नियमों में बंधी होती है । नैतिकता का प्रश्न तब मुख्य रूप से उभरता है जब पत्नी आर्थिक रूप से स्वतंत्र होती है और प्रत्येक क्षेत्र में समानाधिकार रखती है । पति पत्नी की एकनिष्ठा और अनन्यता ऐसी स्थिति में शर्त बन जाती है । पुरुष यदि अपनी साहचर्येच्छा के लिए विभिन्न नारियों का सम्पर्क चाहता है तो पत्नी भी स्वेच्छाचारिणी हो जाती है । पति द्वारा पत्नी की उपेक्षा तथा पति की स्वेच्छाचारिता पत्नी में प्रतिस्पर्धा की भावना को जागृत करती है ।

यशपाल के 'दिव्या' उपन्यास में नारी का विद्रोही रूप स्पष्ट हुआ है । पृथुसेन उच्चपदस्थ अधिकारी है । दिव्या उसकी पूर्व प्रेमिका है और सीरो पत्नी है । सामन्ती वातावरण में पत्नी के चरित्र का स्खलन होना स्वाभाविक है । पति

पृथुसेन चरित्रहीन होते हुए भी पत्नी की उच्छृंखलता सहन नहीं कर पाता है। पृथुसेन सीरो को प्रताड़ित करता है। सीरो पति के अधिकार को सहन नहीं कर पाती और वह रोकर पृथुसेन का विरोध करती है। इस पर भी पति का दमन असहनीय जान पड़ने पर उसने क्रुद्ध सर्पिणी की भांति फन उठा कर फुंकार दिया - मैं तुम्हारी क्रीतदासी नहीं हूं। तुम मेरे आश्रित हो मैं तुम्हारी आश्रित नहीं हूं। मैं तुम्हारे पिंजरे में बद्ध सारिका नहीं हूं, केवल तुम्हारी अंगसेवा के लिए दासी नहीं हूं। तुम वेश्याओं से विलास नहीं करते ? कितनी दासियां तुम्हारी पर्यंक सेवा के लिये हैं ? भोग के भिन्न-भिन्न सुखों और रसों के लिये तुम्हें कितनी नारियां चाहिए ? मेरे लिए भी संसार में केवल तुम ही एक पुरुष नहीं हो, तुम जैसे अनेक तुमसे श्रेष्ठ अनेक।'[१]

सीरो अधिकारों के प्रति सजग नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। नई परम्पराओं और मान्यताओं के साथ नैतिकता और पातिव्रत्य प्रश्नचिह्न बनते जा रहे हैं। पुरुष के प्रति स्पर्धा की भावना सक्षम नारियों में ही नहीं घर में बन्द नारियों में भी होती है। प्रेमचन्द ने पति से सच्चरित्रता की मांग करने वाली नारी के मनोभावों को पहचाना। 'सेवासदन' की सुमन भोली से घृणा करती है क्योंकि भोली वेश्या है।[२] कुछ दिनों बाद वह देखती है कि समाज के उच्चस्तर के लोगों के साथ ही गजाधर भी वेश्या का गाना मुग्ध भाव से सुन रहा है। सुमन का पत्नीत्त्व आकण्ठ दग्ध हो जाता है। उसके हृदय में एक ही भावना बैठती है कि भोली आर्थिक रूप से सन्तुष्ट है इसलिये समाज उसका आदर करता है और वह आश्रिता है इसलिये गजाधर जैसा पति भी उसका अनादर करता है।[३] एक दिन जब सुमन वकील साहब के यहां से भोली का गाना सुनकर देर से लौटती है तो गजाधर सुमन को घर से बाहर निकाल देता है। सुमन की आंखें खुल जाती हैं। जिस गृहिणी-

---

१. यशपाल, दिव्या, पृ० १७७

२. प्रेमचन्द, सेवासदन, पृ० २३

३. ,, पृ० ५१

रूप पर वह गर्व करती थी वह खण्डित हो जाता है, जिस दाम्पत्य-जीवन को वह पुरुष अटूट समझती थी वस्तुत: वह क्षणभंगुर सिद्ध होता है । अपमानित गृहिणी/की स्पर्धा में वैश्या के द्वार पर जाकर खड़ी हो जाती है ।[१] सुमन के अन्दर प्रारम्भ से ही स्पर्धा की भावना है । पति द्वारा निष्कासित किये जाने के पश्चात् वह समझती है कि गृहिणी नहीं वरन् वैश्या ही आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर पुरुष को झुका सकती है । पति यदि वैश्याओं के पास जाता है तो वह स्वयं वैश्या बन सकती है ।

'पत्थर युग के दो बुत' की माया दृढ़ व्यक्तित्व की पत्नी है । राय के प्रति वफादार रहते हुए भी माया अतृप्त है, इसका मुख्य कारण राय की बेवफाई है । वह स्वयं स्वीकार करती है — 'मुझे ढेर सा प्यार चाहिए था । राय की तलछट मेरे काम की न थी । मुझे उससे नफरत हो गयी । मुझे चाहिए गर्मगर्म प्यार एकदम ताज़ा एकदम अछूता ।[२] माया राय से सम्पूर्ण बाह्य सम्बन्धों को त्याग कर एकनिष्ठ होने का अनुरोध करती है परन्तु राय उसके अनुरोध की अवहेलना कर जाता है ।[३] प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर माया राय के ही अधीनस्थ कर्मचारी वर्मा से सम्बन्ध स्थापित करती है । माया जानती है कि 'राय पति की हैसियत से और पुरुष की हैसियत से भी एक अच्छे व्यक्ति हैं । दोनों के ही उपयुक्त गुण हैं उनमें ,परन्तु वे आदर्श नहीं है । उनके साथ एक रूढ़िवादी पत्नी का निर्वाह हो सकता था जिसका अपना कोई व्यक्तित्व न हो, पर मुझ जैसी औरत का नहीं जो अपने व्यक्तित्व और उसके मूल्य को जानती है ।'[४] यही कारण है कि राय की बेवफाई का बदला माया भी बेवफाई से लेती है ।

माया के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह एक निष्ठावान पत्नी है । आदर्श जीवन की वह पक्षपाती है । राय की स्पर्धा में वह वर्मा से सम्बन्ध

---

१. प्रेमचन्द, सेवासदन, पृ० ५६

२. आचार्य चतुरसेन 'पत्थरयुग के दो बुत , पृ० ४६

३. ,, ,, पृ० ६६

४. ,, ,, पृ० ७६

अवश्य स्थापित करती है, परन्तु वर्मा के साथ भी उसका सम्बन्ध वासनात्मक स्तर से हट कर आत्मिक स्तर पर आ जाता है । यही कारण है कि वह राय को तलाक देकर वर्मा से पुन: विवाह-सूत्र में बंधती है और अन्दर-ही-अन्दर निर्णय लेती है जो शर्त पर ही आधारित है -'मैं जैसे राय के प्रति एक निष्ठ रही उनके (वर्मा) के प्रति भी रहूंगी जब तक कि वे मेरे प्रति एकनिष्ठ हैं ।[1]

पुरुष के चरित्र में स्वच्छन्दता -

पुरुष के चरित्र में स्वच्छन्दता विशेष स्थान रखती है । पुरुष स्वतंत्र प्रकृति का होता है । पारिवारिक क्षेत्र में पुरुष स्वयं को शासक के स्थान पर मान कर निरंकुश हो जाता है, यह निरंकुशता ही उसके पतन का मुख्य कारण होती है । प्रेमचन्द के उपन्यास 'कायाकल्प' और इलाचन्द जोशी के उपन्यास 'सन्यासी' में पुरुष की निरंकुश प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है । 'कायाकल्प' में पति-पत्नी के वार्तालाप में पति की निरंकुशता उभर कर आती है ।[2] 'सन्यासी' में कथाकार ने नन्दकिशोर के शब्दों के द्वारा उसके भैया-भाभी के दाम्पत्य-जीवन में भाई के चरित्र की निरंकुशता का वर्णन करवाया है । 'उनकी (भाभी की ) बातों से मालूम हुआ कि भैया अपने सम्बन्ध की किसी 'पर्सनल' बात में किसी की दस्तन्दाज़ी सहन नहीं कर सकते । यदि भाभी जी उनकी 'प्राइवेट' बातों में हस्तक्षेप करने की चेष्टा करें या किसी विशेष बात का विरोध करें अथवा कोई उपदेश दें, तो भैया पहले तो हंसी में उनकी बात उड़ा देने की चेष्टा करेंगे और यदि उन्होंने ज़िद की तो उनसे बोलचाल बन्द कर देंगे ।' ऐसी स्थिति में यदि पत्नी परिवार में शान्ति चाहती हैं तो उसके पास एक ही रास्ता रह जाता है कि पति जो कुछ करे पत्नी उसकी हां-में-हां मिलाये ।[3]

मद्यपान, वेश्यागमन और विवाहेतर सम्बन्ध ऐसे प्रश्न हैं जो पुरुष के चरित्र के साथ जुड़ जाते हैं । वासनात्मक प्रवृत्ति के साथ ही कभी परिस्थिति भी

---

१- चतुरसेन शास्त्री - पत्थर युग के दो बुत - पृ: ६८

२. निर्मला- अच्छा बस मुंह बन्द करो, बड़े धर्मात्मा बनकर आये हो । रिश्वतें ले-लेकर हड़पते हो, तो कर्म नहीं जाता, शराबें उड़ाते हो, तो मुंह में कालिख नहीं लगती, झूठ के पहाड़ खड़े करते हो तो पाप नहीं लगता । लड़का एक अनाथिनी की रक्षा करने जाता है, तो नाक कटती है । तुमने कौन सा कुकर्म नहीं किया ? अब देवता बनने चले हो ।' ( आगे क्रमश: जारी )

ऐसी होती है जिससे प्रभावित होकर पुरुष मद्यपान,वेश्यागमन और विवाहेतर सम्बन्धों की ओर उन्मुख होता है ।

पति के चरित्र का स्खलन परिस्थिति जन्य

'एक और मुख्य मंत्री' की समस्या नितान्त शारीरिक है । शची अपने राज-कार्यों में व्यस्त रहती है और पति कालेज से लौटने के पश्चात् खाली समय कोअध्ययन से भर देना चाहता है । पति को अपने रिक्त समय की पूर्ति के लिये पत्नी की आवश्यकता होती है,उस समय पत्नी को अपने पास न पाने पर पति' एक अजीब रिक्तता से भर जाता है । तबीयत से ज्यादा उसका मन खराब रहता है ।[१] शची अपने आपको अपराधी अनुभव करती है । वह जानती है कि महेन्द्र उसका पति है । उसके जिस्म का एकाधिकारी । और हफ्तों उससे बातचीत भी नहीं कर सकती है । फिर भी शची विवश है । उसे राजनीति में गृहस्थी सम्हालने का अवकाश नहीं मिलता है ।[२] एक घर में रहने के पश्चात् भी पति को अपनी रिक्तता की पूर्ति के लिए हफ्तों पत्नी नहीं प्राप्त होती तो वह 'एकदम तटस्थ' सा जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करता है ।[३] परन्तु यह भी तथ्य है कि 'आदमी यौन पीड़ित होकर पागल हो सकता है, विक्षुब्ध हो सकता है, तनावों से घिर कर अपराध कर सकता है, प्रेतात्मा की तरह रात-रात भर जाग सकता है ।' इसका प्रभाव महेन्द्र के जीवन पर

---

पिछले पृष्ठ का अवशेष -

निर्मला के मुख से मुंशी जी ने ऐसे कठोर शब्दों को कभी नहीं सुने थे । वह तो शील,स्नेह और पतिभक्ति की मूर्ति थी, आज क्रोध और तिरस्कार का रूप धारण किये हुए थी । उनकी शासक वृत्तियाँ उत्तेजित हो गयीं । डांटकर बोले-'सुनो जी मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ बातें तो नहीं सुनी मैंने अपने अफसरों की, जो मेरे भाग्य के विधाता थे तुम किस खेत की मूली हो । जबान तालू से खींच लूंगा । समझ गई ?' -प्रेमचन्द 'कायाकल्प', पृ० १६३

२. इलाचन्द जोशी 'सन्यासी', पृ० ८४

---

१. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र -'एक और मुख्य मंत्री' , पृ० १५०,१५१

२. ,, ,, ,, पृ० १५१

३. ,, ,, ,, पृ० १८०

पड़ता है और जीते हुए भी वह अपने परिवेश और सम्बन्धों से अलग हटता जाता है[१]। स्नायुविक तनाव की स्थिति में उसके जीवन में आती है रजनीगन्धा जिसके समर्पण में महेन्द्र को नारीत्व प्राप्त होता है । रजनीगंधा का सम्पर्क महेन्द्र को हठी और उच्छृं-खल बना देता है । महेन्द्र जानबूझकर पत्नी का अपमान करने लगता है । अपने और रजनीगन्धा के अवैध सम्बन्ध का राज खुल जाने पर वह और अधिक निर्लज्ज बन जाता है । फिर नारी-शरीर महेन्द्र के लिए प्रेम का नहीं वासना-तृप्ति का साधन मात्र रह जाता है ।"महेन्द्र किसी लड़की को अपने जाल में फंसाता और भोग कर उसे भूल जाता ।"[२] यौन-भूख के लिए वह अपने स्तर का ध्यान भी नहीं रखता और पत्नी द्वारा विरोध किये जाने पर वह पति की निरंकुशता के साथ उत्तर दे देता है -आप प्रान्त की मुख्यमंत्री हैं, मेरी नहीं । मेरी तो आप बीवी ही रहेंगी, श्रीमती महेन्द्र ।[३] महेन्द्र का उत्तर आज की समृद्धि और ख्याति के शिखर पर पहुंचने वाली पत्नी की स्थिति को स्पष्ट कर देता है कि सम्पूर्ण बाह्य स्थितियों के पश्चात् भी पत्नी घर में मात्र पारम्परिक रूप से पत्नी ही है और पति की उच्छृंखलता को सहन करने के लिए विवश भी है ।

राजकमल चौधरी का "देहगाथा" सम्पूर्णत: अनमेल विवाह की ही गाथा है । पति देवकान्त और पत्नी पार्वती विपरीत स्थितियों में पले विपरीत प्रकृति के स्त्री पुरुष हैं । देवकान्त आर्थिक अभाव के मध्य पला है और पार्वती सम्पन्न घराने की कन्या है । इसके अतिरिक्त पार्वती आयु में भी देवकान्त से बड़ी है ।[४] देवकान्त घर जमाई होने के कारण हीनता-ग्रन्थि से ग्रसित होता है और पार्वती आयु में बड़ी होने के कारण हीनता-ग्रन्थि का शिकार होती है ।[५] पति-पत्नी की

---

१. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र "एक और मुख्यमंत्री" , पृ० २६४
२. ,, ,, पृ० ३४०
३. ,, ,, पृ० ३४२
४. राजकमल चौधरी "देहगाथा" , पृ० २२
५. ,, ,, पृ० २२,३३,३४

प्रकृति में आद्यान्त वैषम्य है । देवकान्त जिस समय साहित्य, संगीत और शराब की बातें करना चाहता है, पार्वती सत्संग और उपदेश सुनना पसन्द करती है ।[१] जिस समय देवकान्त के पुरुष को नारी देह की आवश्यकता होती है उस समय पत्नी पार्वती स्वामी जी का अद्वैत-दर्शन पर भाषण सुन रही होती है ।[२] खाली बैठा पति कल्पना के ताने-बाने बुनता है --"प्रश्नों और चिन्ताओं के कंटीले तारों में घिर कर, अक्सर जैसे अभीबहुत उलझ जाता हूं और ऐसी हर उलझन में किसी की साफ धुली चादर सी शक्ल आंखों में अक्स बन कर उभर आती है । जानता हूं, यह शशि की तस्वीर है । मीनल की शकुन्तला की तस्वीर है, पार्वती की तस्वीर है । यह दर असल किसी भी एक स्त्री की तस्वीर है जो अपने प्रकृत - गुण के अनुरूप आकर्षण में अपना अस्तित्व सिद्ध करती है ।[३] ऐसी स्थिति में पत्नी को सामने न पाने पर पति का किसी भी स्त्री के प्रति आकर्षित हो जाना अस्वाभाविक नहीं है ।

देवकान्त में पार्वती के प्रति विकर्षण उत्पन्न होने का मुख्य कारण पार्वती की धार्मिकता है । पार्वती को सोसाइटी अच्छी नहीं लगती और देवकान्त को सन्यासियों का प्रवचन और पुराणों की दन्तकथाओं , पूजापाठ यज्ञ अनुष्ठानों में उलझी रहने वाली महिला के काकुल में गिरफ्तार होने की इच्छा नहीं होती है[४]। पति की पत्नी को समग्र रूप से प्राप्त करने की इच्छा, पत्नी को अपने में ही प्रतिष्ठित देखने की इच्छा. देवकान्त के इन शब्दों में व्यक्त होती है --"पार्वती मेरे साथ क्यों नहीं रहती, मेरी तरह क्यों नहीं रहती । पार्वती सन्यासियों और पुजारियों से क्यों घिरी रहती है ? पार्वती लिटरेचर और आर्ट की बात क्यों नहीं कर पाती ?[५] अपने को पार्वती द्वारा उपेक्षित अनुभव करने के कारण ही देवकान्त

---

१. राजकमल चौधरी, देहगाथा, पृ० १२
२. ,, ,, पृ० २५
३. ,, ,, पृ० १४
४. ,, ,, पृ० ३३
५. ,, ,, पृ० ८३

मीनल की ओर आकर्षित होता है, जो देवकान्त के लिए चिन्तित रहती है, देवकान्त के साथ भागने के लिये तैयार है, देवकान्त की विवशता जानती है जो पाश्चात्य संगीत, साहित्य और शराब के सम्बन्ध में बात कर सकती है । सबसे प्रमुख विशेषता उसके व्यक्तित्व की है कि उसके पास 'मोम सा पिघलता आर्द्र-उष्ण तन, सम्पुट ओंठ, बाहों में शिरीष की गन्ध और अंग-अंग में अक्षत लज्जा है ।'[1] पत्नी से अतृप्त पति सम्बन्धों की नैतिकता और मर्यादाओं का उल्लंघन कर देता है । वासना की तीव्रता में उसे साफ सुथरी पहाड़ी 'आया' वासन्ती और पार्वती में कोई अन्तर नहीं दीखता और वह बासन्ती की बाहें थाम कर उसे आलिंगन में ले लेता है ।[2] पार्वती की भतीजी मीनल की सहानुभूति का अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न भी उसके चारित्रिक स्खलन का प्रमाण है ।[3]

'धूमकेतु: एक श्रुति' में इच्छाशंकर का प्रारम्भिक जीवन स्पष्ट करता है कि वह एक सच्चरित्र युवक है । परिस्थितियां संकोची इच्छाशंकर को और अधिक संकोची बनाती जाती हैं । दो पत्नियों की मृत्यु और तीसरा विवाह, सब कुछ वे तटस्थ भाव से सहन करते हैं । इसी निस्संगता की स्थिति में उनकी भेंट होती है । कालिन्दी वेश्या से जो वेश्या होते हुए भी साधारण नारी है। इच्छाशंकर कालिन्दी से शारीरिक स्तर पर न जुड़ कर आत्मिक स्तर पर जुड़ जाते हैं । कालिन्दी का भावनात्मक स्तर पर मिलन ही इच्छाशंकर के जीवन का कलंक बनता है ।[4] समाज में फैलती हुई उनकी बदनामी उनके दाम्पत्य-जीवन को प्रभावित करती है । पत्नी द्वारा अपने चरित्र की कटु आलोचना 'मैं यह बात क्यों न कहूं ? तिजोरी से हजारों रुपये निकाल कर बाजारू औरत को देते शर्म नहीं आती ?' सुनकर इच्छाशंकर में पति की उच्छृंखलता जागृत होती है और वे पत्नी की नैतिकता की मांग को अपने पशुबल से दबा देना चाहता है ।[5]

---

१. राजकमल चौधरी 'देहगाथा', पृ० २७

२. ,, ,, पृ० ८७

३. ,, ,, पृ० ९१

४. नरेश मेहता , धूमकेतु: एक श्रुति , पृ० २८६

५. ,, ,, पृ० २९०

पति द्वारा प्रताड़ित पत्नी अपने अपमान को सहन नहीं कर पाती और विक्षिप्त हो जाती है । पत्नी की विक्षिप्तता इच्छा शंकर को और दु:खित करती है और वे नशे में अपने मन की शान्ति ढूंढने का प्रयत्न करते हैं । लोकनिन्दा के भय से उन्होंने कालिन्दी के यहां जाना छोड़ दिया था परन्तु असहनीय दु:ख उन्हें परिवार से और दूर हटा ले जाता है तथा वेश्या के कोठे पर वे अपने टूटे मन की शान्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं ।[१]

सम्भोग की विविधता में रुचि

पुरुष की सम्भोग की विविधता में रुचि उसके चारित्रिक पतन का मुख्य और प्रबल कारण होती है । अपने चरित्र को शुद्ध रखने का आग्रह पुरुष में कम प्राप्त होता है । नारी-देह का आकर्षण और परिस्थितियां तो उसकी सोयी हुयी इच्छाओं को जगाने मात्र के लिये होती हैं । प्रेमचन्द ने पुरुष के चरित्र की निर्बलता को स्पष्ट करने के लिये 'गोदान' में मथुरा और सिलिया के प्रसंग की अवतारणा की है । मथुरा नवविवाहिता पत्नी सोना से संतुष्ट है फिर भी अन्धेरे में अवसर पाकर वह सिलिया का हाथ पकड़ लेता है और अपना प्रेम प्रकट करने लगता है । पुरुष की कामुक प्रवृत्ति को व्याख्यापित करते हुए प्रेमचन्द कहते हैं कि 'मथुरा चरित्र का हीन नहीं था परन्तु रात्रि एकान्त और नवीन नारी शरीर का आकर्षण मथुरा को कामुक बना देता है ।'[२]

प्रेमचन्द के बाद के उपन्यासकारों ने पुरुष की सम्भोग की विविधता की रुचि को आवरण विहीन करके सामने रखा है । यथार्थवादी उपन्यासकार का आदर्श के प्रति विशेष आग्रह नहीं होता है । समाज में घटने वाली घटनाओं का कटुसत्य कहने में उसे संकोच नहीं होता ।

राजेन्द्र यादव का 'एक इंच मुस्कान' असफल प्रेमी पति के दुखान्त जीवन की कहानी है । अमर पत्नी रंजना तथा प्रेयसी अमला के मध्य बंटा हुआ व्यक्ति है ।

---

१. नरेश मेहता 'धूमकेतु: एक श्रुति' , पृ० २६१,२६३

२. प्रेमचन्द-गोदान पृ० २८५

विवाह से पूर्व ही धनाढ्य अमला अमर के जीवन में आती है और अमर के साहित्य सृजन की प्रेरणा बनती है । लेखक ने भूमिका में लिखा है — 'निश्चय ही अमर खण्डित व्यक्तित्व प्राणी है और उसका आन्तरिक व्यक्ति दो भागों में बंटा है । प्रेम-विवाह, सुख-सुविधा के परम्परागत संस्कार कभी-कभी उन्हें प्राप्त करने की चाह अर्थात् एक मानवीय नैतिकता का बोध दूसरी ओर स्रष्टा व्यक्तित्व की उच्चतर मुक्ति-कामना । एक के प्रति वह उपेक्षा धारण नहीं कर सकता, तो दूसरे की पुकार को भुलाना उसके वश के बाहर है ।' अमर के जीवन की यही विडम्बना है । अपनी पत्नी रंजना तथा साहित्य प्रेरणा अमला के प्रति वह त्रिशंकु बनकर रह जाता है । न तो वह सफल साहित्यकार बन पाता है और न सफल पति ही रह पाता है । अमला के आकर्षण में वह पत्नी के अधिकारों की उपेक्षा भी कर जाता है और पत्नी से छल कपट भी प्रारम्भ कर देता है । पत्नी से छल करना ही उसके चारित्रिक पतन का प्रारम्भ है ।

अमर में सत्य को स्वीकार करने की शक्ति नहीं है । वह पत्नी रंजना से प्रेम अवश्य करता है परन्तु प्रेम में बंधना नहीं चाहता है ।[१] रंजना अमर और अमला को जिस स्थिति में देखती है उसमें कोई भी पत्नी अपने पति को देख कर सहज ही ईर्ष्या से उन्मत्त हो जायेगी ।[२] रंजना के समक्ष अमर अपने और अमला के यौनाकर्षण विहीन सख्य-भाव को स्पष्ट करना चाहता है परन्तु रंजना के अपमानित पत्नीत्व को संतोष नहीं मिलता है । पारिवारिक निष्ठा और पति-पत्नी की समझदारी की भावना को ध्यान में रखा जाये तो यह प्रश्न उठता है कि क्या अमर रंजना को किसी अन्य पुरुष के साथ उसी स्थिति में जिसमें रंजना ने अमर और अमला को देखा था, देखकर भी उसके सम्बन्धों को उसी सहिष्णुता से लेगा जिसकी वह पत्नी से अपेक्षा रखता है ?

अमर का अमला से अनैतिक सम्बन्ध नहीं है यह कथाकार ने स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । प्रश्न उठता है कि क्या अमर का भाव अमला के प्रति मित्र-भाव

---

१. राजेन्द्र यादव - मन्नू भण्डारी - 'एक इंच मुस्कान', पृ० ६३

२. ,, ,, ,, पृ० १६३, २१४

तक ही सीमित था । अमला का स्त्री स्वरूप, जो वासनाओं को तृप्त करता है, उसके विचारों का केन्द्र नहीं बना ? अपने को असन्तुलित करने और पत्नी रंजना को क्षण-क्षण करके दग्ध करते जानेका पूर्ण दोष साहित्यकार की आड़ में छुपे अमर के कामुक व्यक्तित्व पर आता है ।

अमर और अमला के शारीरिक सम्बन्धों के प्रश्न का उत्तर 'बूंद और समुद्र' का महिपाल है । महिपाल का प्रारम्भिक जीवन माता की संरक्षता में कुटिलताओं और छल छद्म के मध्य व्यतीत हुआ है ।[1] महिपाल आदर्शवादी परन्तु कुण्ठित व्यक्तित्व का पति है । वह बुद्धिजीवी अवश्य है परन्तु इस बुद्धिजीवी के खोल में वह असफल सांसारिक के व्यक्तित्व को छुपाये हुए है । कल्याणी एकनिष्ठ और धर्म-भीरु पत्नी है । धर्मभीरुता ही कल्याणी को बड़े परिवार के प्रति उत्तरदायी बनाये रखती है । कल्याणी की धर्मभीरुता और कर्तव्यनिष्ठा महिपाल की दृष्टि में दोष बन जाती है । महिपाल का साहित्यकारव्यक्तित्व कल्याणी के पास तृप्त नहीं हो पाता है ।[2]

मानसिक उलझनों और तनावों के मध्य ही महिपाल का सम्बन्ध डा० शीला स्विंग से होता है । शीला स्विंग अविवाहित, सन्तान से घृणा करने वाली आर्थिक रूप से स्वतंत्र और मुक्त रूप से प्रेम का उपभोग करने वाली नारी है । शीला महिपाल के साहित्य की प्रेरणा बनती है । प्रेरणा-परक सम्बन्ध पति-पत्नी रूप में परिणत हो जाता है और महिपाल का एक-पत्नीव्रत टूट जाता है ।[3]

पुरुष के सम्बन्धों की नैतिकता और अनैतिकता का प्रश्न मुख्य रूप से दाम्पत्य-जीवन के संदर्भ में ही उठता है । शीला स्विंग से महिपाल का सम्बन्ध उचित है क्योंकि वह महिपाल के रचनात्मक पक्ष की पूर्ति है महिपाल स्वयं उसे प्रेरणा रूप में स्वीकार करता है ।[4] उपन्यास में वर्णित घटनाओं को देखने से

---

१. अमृतलाल नागर 'बूंद और समुद्र', पृ० ११६
२. ,, ,, पृ० १७८
३. ,, ,, पृ० १३७
४. ,, ,, पृ० ५२

स्पष्ट होता है कि महिपाल का शीला स्विंग से सम्बन्ध मात्र चार सालों से है। इस समय के मध्य महिपाल साहित्यकार के रूप में समाज को भी कुछ नहीं दे पाया है। शीला स्विंग के सम्बन्ध से पहले वह अधिक सफल साहित्यकार रह चुका है। शीला स्विंग के लिए ही वह सबसे पहले अपनी आत्मा की आवाज़ को कुचलता है। यह जानते हुए कि घर में मात्र पांच रुपये की राशि शेष है, जो अगले महीने की पहली तारीख तक के लिये भी पर्याप्त नहीं है, वह उन्हीं पांच रुपयों का उपहार खरीद कर शीला स्विंग को 'क्रिसमस डे' पर देता है।[1] महिपाल और शीला का सम्बन्ध उच्चस्तर का न होकर शरीरिक स्तर का है। शीला और महिपाल का वार्तालाप भी दो क्षण के लिए साहित्य के स्तर पर होता है बाद में शराब, कबाब और भोग तक ही सीमित रह जाता है।[2] दूसरी समस्या पति-पत्नी के सम्बन्धों में उत्पन्न होती है। कल्याणी अपढ़ है इसलिए महिपाल स्पष्ट रूप से शीला की तुलना में उसको अपमानित करता है और शीला से अपने सम्बन्धों को उचित करार करने का प्रयत्न भी करता है।[3] उसी स्तर पर कल्याणी आवश्यकता पड़ने पर गृहस्थी के लिए, अपने भाई से १०० रुपये मांगती है तो महिपाल अपना अपमान अनुभव करता है और प्रौढ़ा पत्नी की प्रताड़ना करता है।[4] प्रश्न समानाधिकार का है, जब पति पत्नी की निरक्षरता के कारण अन्य योग्य स्त्री से सम्पर्क स्थापित कर सकता है, तो पत्नी अर्थव्यवस्था में अयोग्य पति की उपेक्षा करके अन्य लोगों से अर्थ के लिए सम्बन्ध क्यों नहीं रख सकती ? क्योंकि महिपाल भी परिवार-पालन में उतना ही असफल है जितनी कल्याणी साहित्य-रचना में।

वस्तुत: महिपाल के चरित्र के स्खलन का मूल कारण पत्नी न होकर उसकी अपनी ही भोग में विविधता की रुचि है जिसको वह शीला स्विंग के सान्निध्य में तृप्त करता है।

---

१. अमृतलाल नागर 'बूंद और समुद्र' पृ० ५६
२. ,, ,, पृ० १३८, १३९, १४१
३. ,, ,, पृ० १७६
४. ,, ,, पृ० १८३

भगवतीप्रसाद बाजपेयी ने 'सपना बिक गया' में पुरुष की वासनात्मक प्रवृत्ति को और उभारकर चित्रित किया है। विवाहित पुरुषों को अन्य स्त्रियों द्वारा किए गए समर्पण में एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। दुष्यन्त एक ऐसा पति है जो पत्नी से प्रेम करता है। राका दुष्यन्त की प्रेमिका रह चुकी है और अब पत्नी है। शैल दुष्यन्त से प्रेम करती है परन्तु दुष्यन्त उसकी अवहेलना करता है। राका से विवाह करने के पश्चात् दुष्यन्त शैल के प्रति भी आकर्षित होता है और शैल के समर्पण को महत्वपूर्ण अनुभव करता है।[१] राका भी समर्पित पत्नी है और शैल से योग्य तथा सुन्दर भी है, इसे दुष्यन्त स्वयं स्वीकार करता है परन्तु शैल के समर्पण में उसे एक अपरिसीम गर्व का अनुभव होता है कि शैल मुझे कितना अपना समझती है।[२] पति के चरित्र का एक विशेष रूप इस उपन्यास में उभरता है कि पति अपनी प्रेमिका से सम्बन्ध रखते हुए भी पत्नी को नहीं भूलपाता है। दुष्यन्त स्वयं स्वीकार करता है 'इन परिस्थितियों में मुझे राका का ध्यान आ जाता था।[३]' यह पति के अन्दर बैठी नैतिक बोध की भावना है जो अनैतिक क्षणों में उभर कर चरित्र को संचालित करती है। पत्नी पर अपने प्रेम-सम्बन्धों का राज़ खुलजाने पर पति में अतिरिक्त उच्छृंखलता आ जाती है और वह पत्नी का अपमान भी कर देता है। दुष्यन्त कहता है -'शैल ने मुझे वह प्रेम दिया है जो मीरा ने गिरधर नागर को दिया था।[४] पति में परकीया अनुरक्ति की भावना चरमस्थिति पर होती है जिसे प्राप्त करने के पश्चात् वह पत्नी के एकनिष्ठ प्रेम की अवहेलना भी कर देता है भले ही वह अवहेलना स्थायी न हो।

पति के विवाहेतर सम्बन्धों, मद्यपान और वेश्यागमन की वासनात्मक स्तर पर, स्पष्ट स्वीकृति 'पत्थर युग के दो बुत', 'रेखा', 'जीजी जी', 'अमृत और विष', तथा 'दीवार और आंगन' उपन्यास में प्राप्त होती है।

---

१. भगवतीप्रसाद बाजपेयी, सपना बिक गया, पृ० २०५

२. ,, ,, पृ० २७७

३. ,, ,, पृ० ३०६

४. ,, ,, पृ० ३२८

'जीजी जी' में व्यभिचारी पति और एकनिष्ठ पत्नी के असफल दाम्पत्य-जीवन की समस्या को उभारा गया है । दीनानाथ दुराचारी घृणित बीमारियों से युक्त पुरुष है । प्रभा सुयोग्य, निष्ठावान स्त्री है उसका कथन है -'बुरे मर्दों से भागने से बेहतर है अच्छी औरत अपने को साबित कर उसे ठिकाने लाना ।'[१] दीनानाथ विवाह के पश्चात् भी वेश्यागमन, लम्पटता तथा मद्यपान नहीं छोड़ता । दीनानाथ को सन्तान की भी आवश्यकता नहीं है । उसे दाम्पत्य-जीवन की सरसता की भी आवश्यकता नहीं है यदि उसे कुछ आवश्यकता भी है तो मात्र इतनी ही कि एक स्त्री को बन्धन में रख कर उसके जीवन को नष्ट करना ।[२] शराब के नशे में वह गर्भिणी पत्नी को मारता है । पशुबल से उसके पत्नीत्व के गौरव को कम करने वाले दुराग्रह की पूर्ति का प्रयत्न भी करता है ।[३]

प्रभा के करुण जीवन से इसकी पुष्टि होती है कि पत्नी की योग्यता, सच्चरित्रता, और निष्ठा लम्पट पति की प्रवृत्तियों को बदलने में असमर्थ होती हैं ।

'दीवार और आंगन' में मुंशी जी एक मामूली सरकारी दफ्तर में क्लर्क हैं परन्तु हैं मस्तमौला । उनको फैशन, गोश्त, संगीत तथा शराब से बेहद प्रेम है । दुर्भाग्य से उन्हें पत्नी ऐसी मिलती है जो सुन्दर नहीं है । मुंशी जी पत्नी को छोड़ते तो नहीं हैं पर दूसरा ही मार्ग अपनाते हैं और 'अपनी निराशा की क्षति पूर्ति दूसरे ही ढंग से करते हैं । वह अपने दु:ख को शराब-कबाब, संगीत और वेश्याओं की गोद में भुलाने की चेष्टा करने लगते हैं ।'[४] बासन्ती अपने रूप की सीमा जानती है इसलिए पति का विरोध नहीं करती है परन्तु जब भी उसने विरोध किया है तो मुंशी जी का पति अपनी निरंकुशता के साथ प्रकट होकर गरजने लगता है ।[५] सम्पूर्ण

---

१. उग्र - 'जीजी जी', पृ० ४१

२. ,, ,, पृ० ५७

३. ,, ,, पृ० ११६

४. अमरकान्त 'दीवार और आंगन', पृ० ८

५. ,, ,, पृ० १२

सुविधाओं के होते हुए भी बासन्ती रिक्तता का अनुभव करती है —'जब अपना ही मर्द ठीक से न बोले तो स्वर्ग का सुख भी नरक के समान हो जाता है।'[१]

'अमृत और विष' के लाल साहब एक बड़े और बिगड़े हुए खानदान के लाल हैं। अपनी 'ऐयाश तबीयत के कारण वह ससुराल का धन फूंका करते हैं। उन्हें यह चिढ़ थी कि जो धन वे फूंक रहे हैं वह उनका न होकर उनकी पत्नी का है।[२]' रखैल रखना भी राजाओं की शान है। वहीदन वेश्या है और वह लाल - साहब के जीवन में रखैल बन कर आती है। लाल साहब पत्नी से छल करके वेश्या का घर भरने लगते हैं। ६० लाख की कोठी वहीदन के नाम से खरीदी और करीब ढाई लाख के गहने कपड़े आदि दिये।[३] पुरुष की विलासिता की तृप्ति पत्नी के पास नहीं हो पाती और वह वेश्या के पास जाता है। वहीदन बेगम 'जो मर्द की भूखी है और शराब-कोकीन की शौकीन है,[४]' वे लाल साहब के सामने जवान छोकरों को नौकर रख कर उनके साथ में बदकारी करती हैं' तथा लाल साहब 'उसकी नौकरानियों तक को नहीं छोड़ते।[५] शारीरिक सम्बन्धों की जो कुत्सित तृप्ति पति को वेश्या के यहां प्राप्त होती है उसका पत्नी के साहचर्य में अभाव होता है। विकृत वासना वाले पुरुष-रूप का प्रतिनिधित्व लाल साहब करते हैं।

'रेखा' उपन्यास में भगवती चरण वर्मा ने पुरुष की विविधता की वासना का एक और कुत्सित चित्र प्रस्तुत किया है। पति पत्नी को दुश्चरित्रता के लिए प्रताड़ित करता है, पर स्वयं अपने चरित्र पर नियन्त्रण नहीं कर पाता है। पत्नी की वासनात्मक भूख को शान्त करने में असमर्थ डा० प्रभाशंकर नई स्त्री-शरीर को देखकर सहवास के लिए उत्तेजित हो जाते हैं।[६] घर लौटने पर अपनी पत्नी से

---

१. अमरकान्त 'दीवार और आंगन, पृ० ३२६
२. अमृतलाल नागर, 'अमृत और विष', पृ० ४८७
३. ,, ,, पृ० ४८८
४. ,, ,, पृ० ३०३
५. ,, ,, पृ० ३०६
६. भगवतीचरण वर्मा 'रेखा', पृ० १७१

देर से लौटने के कारण-रूप में एक सुन्दर, छोटा सा बहाना भी बना देते हैं ।[१] इससे स्पष्ट होता है कि पति विवाहेतर सम्बन्धों को शारीरिक स्तर पर भोग कर तृप्त होता है और पत्नी को छल द्वारा सन्तुष्ट करके पुन: पत्नी से आकर जुड़ जाता है ।

'पत्थर युग के दो बुत' का राय नितान्त शरीर भोगी है । वह स्वयं स्वीकार करता है -'मैं एक लम्पट व्यक्ति हूं । सचमुच मैं लम्पट तो हूं ही । कितनी कुलबधुओं और कुमारियों का मैंने शील भंग किया है, पवित्रता नष्ट की है, विलास किया है, झूठे झांसे दिए हैं । आत्मभोग को मैंने प्रधानता दी है । स्त्री को भोग की सामग्री समझा है ।[२] माया राय की पत्नी है जो निष्ठावान और सच्चरित्र है । माया द्वारा की गई एकनिष्ठा की मांग को राय बहुत ही हल्के रूप में लेता है । उसकी दृष्टि में पत्नी यदि पति से वफादारी की मांग करे तो यह बात बहुत हल्की सी बल्कि सब प्रकार से हास्यास्पद-सी है ।[३] लम्पट होने के पश्चात् भी राय में माया के प्रति अतिरिक्त लगाव मिलता है क्योंकि अन्य-स्त्रियों की तुलना में, जो उसके सम्पर्क में आती हैं, वह माया को बड़ी योग्य, निष्ठा-वान पाता है । माया राय के अनैतिक सम्बन्धों से ऊब कर उसे तलाक देकर चली जाती है । राय को माया के चले जाने का दु:ख अवश्य है पर उससे बड़ा दु:ख उसे इस बात का है कि 'अब तो अदालत ने भी मेरे चरित्र पर दुश्चरित्रता की मुहर लगा दी । अब सम्भ्रान्त परिवार के लोग अन्तरंग रूप में घर में मेरा स्वागत करते कतराते हैं । सम्भ्रान्त महिलाएं मुझसे मिलने से बचना चाहती हैं ।[४] इतना होने के पश्चात् भी उसके लिये स्त्रियों की कमी नहीं है क्योंकि स्त्रियों को रिझाने की कला में वह पटु है । सम्भोग में विविधता की रुचि, उसके चरित्र का एक अंग है, जो

---

१. भगवती चरण वर्मा 'रेखा', पृ० १७२
२. आचार्य चतुरसेन, पत्थर युग के दो बुत, पृ० १५०
३. ,, ,, पृ० ६६
४. ,, ,, पृ० १५०

चरित्र से किसी भी प्रकार अलग नहीं की जा सकती है ।

निष्कर्ष

हिन्दी के उपन्यासकारों ने दाम्पत्य-जीवन के संदर्भ में स्त्री और पुरुष के चरित्र को नैतिकता तथा अनैतिकता की कसौटी पर कसा है । एक ओर एकनिष्ठा की भावना को पति और पत्नी के माध्यम से प्रस्तुत कर नैतिक दाम्पत्य-जीवन के आदर्श को प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर पत्नी के चरित्र का ह्रास तथा पति के चरित्र में स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति का चित्रण करके दाम्पत्य-जीवन के अनैतिक पक्ष को भी स्पष्ट किया है । 'पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक निष्ठावान और पारिवारिक दायित्वों के प्रति अधिक सचेत है तथा पुरुष अधिक स्वतंत्र और निरंकुश है '-- इस कथ्य को उपन्यासकारों ने पति पत्नी के व्यक्तिगत, सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन में उभरने वाले चरित्र के माध्यम से प्रतिपादित किया है । जहाँ कथाकार ने पतिपत्नी के चरित्र को साधारण मानवीय स्तर पर उठाया है वहीं वह कला की दृष्टि से भी अधिक सफल हुआ है और जहाँ चरित्र में आदर्श का समावेश किया वहाँ कथाकार सामाजिक उपादेयता की दृष्टि से अधिक सफल है परन्तु कला की दृष्टि से सफल नहीं हो पाया है ।

## सप्तम् अध्याय

## हिन्दी-उपन्यासों में चित्रित दाम्पत्य-जीवन का सांस्कृतिक-आधार पर मूल्यांकन

क. भारतीय संस्कृति — आध्यात्मिक दृष्टिकोण

१. आदर्श दाम्पत्य-जीवन की परिकल्पना
२. संयुक्त परिवार
३. विवाह एक संस्कार
४. पारिवारिक मर्यादाओं का पत्नियों द्वारा निर्वाह
५. सन्तान का पालन-पोषण
६. बहु-पत्नी प्रथा
७. जीवनयापन के मुख्य अंग —
    भोजन
    शयन
८. आमोद-प्रमोद के साधन —
    व्रत-त्योहार, सांस्कृतिक उत्सव
९. मृत्यु एक संस्कार
१०. दाम्पत्य-जीवन की पूर्णता

ख. पाश्चात्य संस्कृति-भौतिकतावादी दृष्टिकोण

१. कुटुम्ब पर पाश्चात्य प्रभाव
२. विवाह-प्रथा पर प्रभाव
३. पति-पत्नी में समानाधिकार का भाव
४. सन्तान की व्यवस्था
५. भोजन की व्यवस्था
६. आमोद-प्रमोद के साधन
७. भौतिक सुखों की वृद्धि में पत्नी एक साधन
८. स्वच्छन्द भोग
९. तलाक-प्रथा ।

निष्कर्ष

प्रत्येक देश की संस्कृति के पीछे विशेष आदर्श, सिद्धान्त, मनोभाव तथा कार्यक्रम छिपे रहते हैं, जिन्हें वहां का निवासी अपने मानसिक स्तर तथा ग्रहण-शक्ति के अनुसार अपनाता रहता है तथा उसके सांचे में ढलकर उसका जीवन तदनुरूप बन जाता है। इस प्रक्रिया के द्वारा देशगत विशेषताओं से अनुप्राणित आदर्श, आचार-विचार, मनोभाव, मान्यताएं तथा उनके संस्कार व्यक्तियों के जीवन में प्रविष्ट होकर वहां के समाज का निर्माण करते हैं।[1]

क. भारतीय संस्कृति-आध्यात्मिक दृष्टिकोण --

भारतीय संस्कृति अध्यात्म-प्रधान संस्कृति है। भारतीय संस्कृति में कर्म और धर्म एक साथ एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये चलते हैं। धर्म-कर्म का भेद नहीं किया जा सकता। 'विवाह' भारतीय संस्कृति में मात्र लौकिक कार्य नहीं, धार्मिक कार्य है। 'देवदत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः' को स्वीकार करने वाली भारतीय संस्कृति पति-पत्नी के लौकिक सम्बन्धों में अलौकिकता का समावेश करती है।[2] 'स्वयं परिवार की कल्पना यहां धर्माश्रित है, नितांत लौकिक और ऐहिक वह नहीं है। पति-पत्नी परस्पर सुविधा और सामाजिकता के विचार से अनुबद्ध नहीं हैं, बल्कि मानों यहां से आगे भी उस सम्बन्ध की व्याप्ति है। इस भांति ऐहिक पारलौकिक से ऐसे ~~प्रकार~~ जोड़ दिया गया है कि उसका आधार हिल नहीं पाता।'[3]

धार्मिकता-प्रधान हो जाने पर सम्बन्धों में दृढ़ता और प्रगाढ़ता उत्पन्न होती है। इसीलिए भारतीय मनीषी व्यवस्था देता है कि --

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः॥[4]

---

१. डा० मदनगोपाल गुप्त, मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, पृ० ४७
२. मनुस्मृति - ६५।६।४७८
३. जैनेन्द्र - समय और हम, पृ० २२५
४. मनुस्मृति - १०१।६।५७६

जीवन पर्यन्त अपार्थक्य की कल्पना भारतीय संस्कृति की मौलिकता है ।

भारतीय चतुराश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत गृहस्थाश्रम को सब आश्रमों का आधार स्वीकार किया गया है । गृहस्थाश्रम के द्वारा पति-पत्नी धर्म, अर्थ, काम , मोक्ष को प्राप्त करते हैं । धर्म सबका आधार है और अर्थ तथा काम. मोक्ष- प्राप्ति के सोपान हैं । धर्म-प्रधान भारतीय संस्कृति जीवन के सन्तुलित उपभोग पर बल देती है । सन्तुलित धर्म, सन्तुलित अर्थोपार्जन तथा सन्तुलित काम का भोग करते हुए व्यक्ति जीवन में चरम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति करता है ।

भारतीय आदर्श पति-पत्नी के पृथक्-पृथक् हित-स्वार्थों को महत्व नहीं देता । दाम्पत्य-जीवन की पूर्णता तद्रूप होने में है व्यक्तित्व के एकांतिक उत्थान में नहीं ।

१. आदर्श दाम्पत्य-जीवन की परिकल्पना -

हिन्दी उपन्यासों का प्रादुर्भाव ऐसे समय हुआ था जब कि पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भारतीय जनता पर पड़ रहा था । भारतीय प्राचीन परम्पराएं उखड़ने लगी थीं । भारतीयता पर से जनता की, विशेष कर स्त्रियों की, आस्था हटने लगी थी । उपन्यासकारों ने भारतीय जनता को पथभ्रष्ट होने से बचाने के लिए प्रयत्न किया और भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप का चित्रण किया । आदर्श दाम्पत्य-जीवन का चित्रण कर पति-पत्नी के गुणों और कर्तव्यों को आधुनिक समाज के परिप्रेक्ष्य में प्रतिपादित किया गया ।

आदर्श दाम्पत्य-जीवन के उत्कृष्ट उदाहरण के लिए 'प्रेमाश्रम' के प्रेमशंकर और श्रद्धा 'गोदान' के होरी-धनिया तथा 'बूंद और समुद्र' के सज्जन और वनकन्या जैसे पात्रों की रचना हुई । आदर्श पत्नियों के चित्रण में कथाकार ने अथक परिश्रम किया है । कथाकार जानते हैं कि दाम्पत्य-जीवन का आधार नारी है । 'हमारा जीवन हमारा घर है । वहीं हमारी सृष्टि होती है, वहीं हमारा पालन होता है, वहीं जीवन के सारे व्यापार होते हैं ।[१] हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास

---

१. प्रेमचन्द ,गोदान, पृ० १५५

नहीं रहा । उन्होंने सेवा के अधिकार से सदैव गृहस्थी का संचालन किया है । कथाकारों ने स्वीकार किया है कि स्त्री-पुरुष की जीवन-नौका की कर्णधार है । यदि उसने असावधानी की तो नौका डूब सकती है ।[२]

धर्म-प्रधान संस्कृति में जन्मजन्मान्तर के साथ की भावना पति-पत्नी के जीवन में प्रगाढ़ता उत्पन्न करती है । भारतीय पत्नी की पति के प्रति भावनाएँ गोदान की रूपा के जीवन में अभिव्यक्ति पाती हैं । 'रूपा के लिए वह पति था, उसके जवान अधेड़ या बूढ़े होने से उसकी नारी भावना में कोई अन्तर न आ सकता था । उसकी यह भावना पति के रंग, रूप या उम्र पर आश्रित न थी, उसकी बुनियाद उससे बहुत गहरी थी ।[३]

पत्नी के जीवन में धर्म-प्रधानता का एक उत्कृष्ट उदाहरण चमारिन सिलिया है । सिलिया पत्नी के धर्म का निर्वाह करती है पति करे अथवा न करे : क्योंकि, 'अपना-अपना धरम अपने-अपने साथ है ।'[४] यदि मातादीन पति होकर अपना धर्म पालन नहीं करता तो इसका यह अभिप्राय नहीं है कि सिलिया भी अपना धरम छोड़ दे । अधिकार के स्थान पर कर्त्तव्य का आग्रह पति-पत्नी के सम्बन्धों में स्थायित्व उत्पन्न करता है ।

पति से पृथक पत्नी की कल्पना भारतीय परम्परा में हो ही नहीं सकती । पत्नी अपने को मिटा कर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है । 'देह पुरुष की होती है पर आत्मा स्त्री की होती है ।'[५]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि भारतीय पत्नी पति की प्रेरणा शक्ति है जो जीवन में सहगामिनी बन कर उसे अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा तमस से सत की ओर ले जाती है । भारतीय पत्नी का आदर्श रूप 'बूंद' और समुद्र' की

---

१. प्रेमचन्द, गोदान, पृ० १५५
२. ,, पृ० १५७
३. ,, पृ० ३३६
४. ,, पृ० २४७
५. ,, पृ० १४०

वनकन्या में प्राप्त होता है ।

पति को देवता मानने की प्रवृत्ति भी भारतीय पत्नियों में प्राप्त होती है । पातिव्रत्य पत्नी का महानगुण है और पतिव्रता पत्नियों के लिए पति देवता के समान पूज्य होता है ।[१] पत्नी की 'बेजबानी' 'निरीहता' और आत्मोत्सर्ग ही उसके पत्नीत्व की पूर्णता है । जीवन का सम्पूर्ण सुख-दु:ख साथ-साथ भोगने के पश्चात् जीवन के सर्वस्व को अपनी गोद में लिये हुए यदि धनिया का करुण चित्रण हुआ है[२] तो पति-परित्यक्ता महालक्ष्मी की निरीहता का चित्रण भी हुआ है। 'मैं आप की पत्नी नहीं हूं ठीक है पर आप तो मेरे पति हैं, स्वामी हैं सबकुछ हैं' शब्दों में महालक्ष्मी का समर्पित पत्नीत्व बोलता है ।[३] 'गोदान' की गोविन्दी को खन्ना मारता है, धिक्कारता है, उसका अपमान करता है फिर भी खन्ना गोविन्दी के सर्वस्व हैं । 'वह उनकी लौंडी है ।'[४] 'यह पथ बन्धु था' की सरो का समर्पण श्रद्धा और भक्ति की चरम स्थिति पर पहुंचा हुआ है । सरो सम्पूर्ण कष्ट सह सकती है परन्तु अपने आराध्य, अपने सुहाग का अपमान नहीं सह सकती ।[५] पति को देवता मानने की शिक्षा कन्याओं को मातृपक्ष से संस्कार रूप में प्राप्त होती है । 'रंगभूमि' की इन्दु का राजा महेन्द्र के विचारों से मेल नहीं बैठता फिर भी रानी जाह्नवी इन्दु को शिक्षा देती हैं,-'अगर तुझे उनकी बातें पसन्द नहीं आतीं तो कोशिश कर कि पसन्द आयें । वह तेरे पतिदेव हैं, तेरे लिए उनकी सेवा से उत्तम कोई पथ नहीं है ।'[६]

पति को देवता मानने वाली पत्नी यदि पति की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर देती है तो पत्नी की मर्यादा की रक्षा का भार भी पति के ऊपर होता है । भारतीय समाज में स्त्री स्वतंत्र नहीं है । उसकी मर्यादा के तीन रक्षक

---

१. मनुस्मृति, १५४।५।२७८

२. प्रेमचन्द , गोदान , पृ० ३४३

३. भगवतीचरण वर्मा, टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृ० २०६

४. प्रेमचन्द, गोदान, पृ० १८०

५. नरेश मेहता, यह पथ बन्धु था , पृ० ३१५

६. प्रेमचन्द - रंगभूमि, पृ० ४०३

हैं पिता, पति, और पुत्र । पति के कर्तव्यों की पूर्णता विपन्न मनोहर में देखी जा सकती है । गौस खाँ द्वारा अपमानित विलासी 'उन पुरुषों से अपने अपमान की कथा कहने चल दी जो उसकी मानमर्यादा के रक्षक थे ।..... बलराज ने देखा माता की आँखें झुकी हुई हैं और मुख पर मर्माघात की आभा झलक रही है ।.... कुछ और पूछने की हिम्मत न पड़ी । आँखें रक्तावर्ण हो गईं ।'[1]

परन्तु पति ने मन में कुछ और ही दृढ़ निश्चय कर लिया था ।...... मनोहर ने बलराज से कहा -'अच्छा अब राम का नाम लेकर तैयार हो जाओ ।.... अपनी मरजाद की रक्षा करना मरदों का काम है । ऐसे अत्याचारों का हम और क्या जवाब दे सकते हैं और बेइज्जत हो कर जीने से मर जाना अच्छा है ।'[2] पति के कर्तव्यपालन पक्ष का उज्ज्वलतम रूप है जो मनोहर में कृत संकल्प हो उठा है । पत्नी का अपमान पति के पौरुष का अपमान है । मनोहर अपने अपमान का प्रतिशोध गौसखाँ की हत्या करके लेता है ।

२. संयुक्त परिवार -

संयुक्त परिवार हिन्दुओं का विशिष्ट लक्षण माना जाता है । कुटुम्ब का वयोवृद्ध घर का मुखिया होता है, अन्य प्राणी कुटुम्ब के अंग होते हैं जो अपना-अपना कर्तव्य सुचारु रूप से करते जाते हैं । भारतीय संस्कृति धर्म-प्रधान है इसलिए अधिकार की जगह कर्तव्य को यहाँ महत्त्व दिया गया है । हिन्दी-उपन्यासकारों ने सम्मिलित परिवार के चित्रण किये हैं । कभी कथाकार पारिवारिकता की धज्जियाँ उड़ाता है , कभी पारिवारिक जनों की गुत्थियाँ सुलझाता है और कहीं आदर्श परिवार की सर्जना करता है । 'सारा आकाश' में संयुक्त रहते हुए भी यदि हित-स्वार्थों में लगे दम्पतियों का चित्रण हुआ है तो 'गिरती दीवारें' में खंडित होती हुई पारिवारिकता में भी अखंडित तत्त्व को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है । 'गोदान' और 'यह पथबन्धु था' में वृद्ध दम्पती की परिवार के प्रति चिन्ता

---

१. प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, पृ० १८६, १६०

२. ,, पृ० १६३

और मोह की अभिव्यक्ति हुई है । दाम्पत्य-चित्रण में कथाकार यदि विघटन के कारणों का चित्रण करता है तो ऐसे आदर्श दम्पती की रचना भी करता है जो अपने स्वत्वों को मिटा कर पारिवारिक मर्यादाओं का निर्वाह करते हैं । स्वार्थ-रहित, पारिवारिकता के प्रति समर्पित, मर्यादाओं के प्रति आग्रहवादी दम्पती भारतीय आदर्श को रूपायित करते हैं ।

गोदान के होरी और धनिया विपन्नता के सागर में गोते लगाते हुए भी परिवार के प्रति चिन्तित हैं । परिवार-अपने शरीर से उत्पन्न प्रजाजन का नहीं, अपने रक्त सम्बन्धियों-का। बड़ा भाई होने के नाते होरी का कर्त्तव्य है माता-पिता के पश्चात् अपने छोटे भाइयों का पालन-पोषण करें । धनिया सहज ही घर की स्वामिनी बन कर माता का स्थान ग्रहण कर लेती है । अपना सुख धनिया नहीं भोगती परन्तु देवर देवरानियों की चिन्ता में मरती है । स्वयं भूखी सो रहती है परन्तु घर भर को खिलाना उसका कर्त्तव्य था ।[१] यही है धनिया की पारिवारिक भावना जो अपने ममत्व के नीचे मातृविहीन देवरों को ढांक लेती है ।

होरी में परिवार के प्रति कर्त्तव्य की भावना और भी गहरी है । हीरा गाय को माहुर देकर भाग जाता है । परन्तु होरी हीरा के परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्य-पालन से नहीं चूकता । वह जानता है -'अपना भी तो कुछ धरम है । हीरा ने नालायकी की तो बाल-बच्चों को संभालने वाला तो कोई चाहिए ही था । कौन था मेरे सिवा ?'[२]

'यह पथ बन्धु था' के श्रीनाथ ठाकुर और उनकी पत्नी परिवार के प्रति, परिवार की मर्यादाओं के प्रति अर्पित हैं । अपनी सन्तान के प्रति ठाकुर दम्पती के जो कर्त्तव्य हैं उन कर्त्तव्यों का निर्वाह जीवन की अन्तिम सांस तक वे करते हैं । कान्ता के विवाह में यदि वे अधिकार छिनते देख कर अन्तर्मन तक दु:खी हो जाती हैं तो

---

१. प्रेमचन्द, गोदान, पृ० १०६

२. ,, पृ० ११२,३४१

पितृ आश्रय विहीना गुणी के विवाह में अपने कर्तव्यों को पूरा करते हैं । गुणी का विवाह कुल की मर्यादा का प्रश्न है । 'मां' दिखा देना चाहती हैं कि यदि बड़ा पुत्र श्रीमोहन उन्हें सहायता नहीं देगा तो श्रीधर के परिवार को वह भी भूखा नहीं मरने देंगी ।[१] पारिवारिक कर्तव्यों के प्रति सजग और सचेष्ट हैं श्रीमती ठाकुर ।

संयुक्त परिवारों के चित्रण के साथ ही परिवारों के विघटन के चित्र भी प्राप्त होते हैं । परिवारों का विकेन्द्रीकरण भारतीय संस्कृति के लिए नवीन घटना नहीं है । विघटन होकर नए परिवारों की नींव पड़ती है, परिवार पल्लवित होते हैं और पुन: उनमें विघटन उत्पन्न होता है । एक परिवार से अनेक परिवारों की शाखाएं-प्रशाखाएं निकलती जाती हैं । भारतीय संस्कृति में पारिवारिक विघटनों को कल्याणकारी नहीं माना गया है । परस्परता की भावना से परिवार बनता है । जब त्याग का स्थान व्यक्तिगत स्वार्थ लेता है तब परिवार विशृंखलित होता है । हिन्दी-उपन्यासकारों का दृष्टिकोण भारतीय परिवार के सांस्कृतिक रूप के प्रति मोहपूर्ण है । उपन्यासकार स्पष्ट करना चाहते हैं कि व्यक्तित्व की सुरक्षा में लगा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के उदात्त रूप को सुरक्षित नहीं रख पाता । यही कारण है कि विघटन के पश्चात् परिवार ह्रासोन्मुखी चित्रित किए गए हैं । पारिवारिक विघटन सुखपूर्ण न होकर परिवार के व्यक्तियों को दंश दे जाते हैं । विघटन के पश्चात् परिवार में व्याप्त असंतोष का चित्रण नरेश मेहता ने 'यह पथ बन्धु था' में और यज्ञदत्त शर्मा ने 'परिवार' उपन्यास में किया है ।

३. विवाह एक संस्कार --

भारतीय प्रथा में विवाह एक संस्कार है । पुत्र-पुत्री के विवाह की चिन्ता माता-पिता को होती है । भारत में, किन्हीं विशेष परिस्थितियों को छोड़ कर[२] पुत्री तथा पुत्र को अपने विवाह के विषय में निर्णय लेने का अधिकार नहीं है ।

---

१. नरेश मेहता 'यह पथ बन्धु था', पृ० २५४

२. मनुस्मृति, ६०।६।४७७

जब सन्तान अपने विवाह के लिए स्वयं चिन्तावान होकर माता-पिता का विरोध करती है तो परिवार की सामूहिकता पर और मर्यादा पर धक्का लगता है । सम्मिलित परिवारों के जहां चित्रण हुए हैं वहां विवाह के विषय में सन्तान के विचार नगण्य कर दिये गए हैं । 'यह पथ बन्धु था' में श्रीधर की इच्छा न होते हुए भी परिवार के बड़े लोग उनका विवाह कर देते हैं । श्रीधर को माता-पिता और परिवार की मर्यादा के आगे नतमस्तक होना पड़ता है ।[1]

'गिरती दीवारें' का चेतन आधुनिकता के प्रति आकृष्ट और सुशिक्षित है । विवाह के विषय में चेतन की इच्छा और पसन्द का कोई महत्व नहीं रहता । चेतन पिता के निर्णय का विरोध करता है तो बलपूर्वक उसे विवाह के लिए तैयार किया जाता है । अन्त में पिता की मर्यादा का विचार कर चेतन विवशता में विवाह की स्वीकृति देता है ।[2]

कन्या का विवाह भारतीय परिवारों के लिए यज्ञ के समान होता है । कन्यादान का पुण्य भारतीय दम्पत्ती के लिए सबसे बड़ा पुण्य होता है । कन्यादान में भी पारिवारिक मर्यादाओं का निर्वाह करना पड़ता है । 'गोदान' का होरी कर्ज़ से दबा है । पर सोना का विवाह परिवार की मर्यादा के विरुद्ध बिना कुछ दक्षिणा दिए कैसे पूर्ण हो सकता है । वर-पक्ष उदारता पर आकर यदि कुछ नहीं मांगता तो इसका यह आशय नहीं होता कि कन्यापक्ष कृपण बन जाये क्योंकि परिवार की मर्यादा के लिए कुछ तो करना ही पड़ता है ।[3]

'यह पथ बन्धु था' के वृद्ध दम्पती सोचते हैं कि पुत्र की अनुपस्थिति में प्रपौत्री का विवाह करना उनका धर्म है । पत्नी चिन्तित हो पति से प्रश्न करती है --

'तो फिर क्या सोचा आपने ?'

---

१. नरेश मेहता - यह पथ बन्धु था - ७१

२. उपेन्द्रनाथ अश्क, गिरती दीवारें , पृ० २१४

३. प्रेमचन्द - गोदान, पृ० २५०

--'मेरे सोचने का सवाल ही नहीं है । सोचना तो रावल साहब जी महराज को है ।
--'तो इन्दौर तो जाना ही पड़ेगा'
--'और किसे भेजूं ?'
--'तो अब अगहन तो आ गया पौष में वे लोग तिलक करना चाहते हैं, फागुन में ब्याह । दिन ही कितने हैं ।'
--'तो तुम क्या चाहती हो कि इसी समय थाली परसे उठ जाऊं और चल दूं ? लाओ लोटा-डोर ला दो ।[१]

खीफ में निकले हुए श्रीनाथ ठाकुर के शब्द भारतीय परम्परा की याद दिलाते हैं जहां पिता पुत्री के लिए वर की तलाश में लोटा-डोर और सतुवागुड़ बांध कर दृढ़ प्रतिज्ञ होकर निकलता था । श्रीमती ठाकुर के शब्दों में भारतीय विवाह की 'तिलक रस्म' का परिचय मलिता है ।

विवाह निश्चित होते ही 'पुराने ब्याह शादी वाले बहीखाते निकाले गए । पिछले सौ बरस से किस शादी पर कितना खर्च हुआ..... कब कितनी चीनी आई, कब कितना घी आया था, कब कितने चावल आये..... पंडित श्रीनाथ ठाकुर ने एक बहीखाते में श्रीगणेशाय नम: ,

महाप्रभु सदा प्रसन्न

द्वारिकाधीश की जय लिख कर गुणावन्ती के ब्याह का श्रीगणेश किया ।[२]'

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि विवाह धार्मिक कृत्य है । विवाह के कार्य आरम्भ करने के पहले देवताओं से मंगल-कामना करना आवश्यक है ।

विवाह के समय होने वाली रीति-रस्मों का सुन्दर चित्रण 'यह पथ बन्धु था' में हुआ है । पति-पत्नी गांठ जोड़ कर शुभ कार्य करते हैं । 'गृहशान्ति के समय सरो नीचे गई थी । सासू मां और श्वसुर जी कैसे अच्छे लग रहे थे पल्लू बांधे -

---

१. नरेश मेहता - यह पथ बन्धु था , पृ० २३३
२.        ,,             ,,      पृ० २३५

सरो के हृदय में भी पति के साथ शुभ कार्य करने की हुलस उठती है । आज वे होते तो क्या उनके साथ ग्रहशान्ति करवाने में वह नहीं बैठती ? विवाह के समय जैसे पल्लू बांधे थे वैसे ही इस बार फिर बांधते[1] सरो के अन्दर बैठी बैठी भारतीय पत्नी का स्वप्न है, जो पल्लू के बंधन में जीवन के बंधन की मधुरता अनुभव करती है ।

## ४. पारिवारिक मर्यादाओं का पत्नियों द्वारा निर्वाह

पारिवारिकता के प्रति पति-पत्नी के कुछ कर्तव्य होते हैं । भारतीय नारी का अस्तित्व परिवार में ही बनता बिगड़ता है । एक नारी के जीवन की सफलता उसके परिवार की सफलता से ही मापी जाती थी ।[2] पुरुष का कर्तव्य है कि वह पत्नी की रक्षा करते हुए अपनी सन्तान, आचरण, कुल, आत्मा और धर्म इनकी रक्षा करे ।[3] पुरुष अपने कर्तव्यों के प्रति विशेष सचेत नहीं रहा । पारिवारिक मर्यादाओं के सम्पूर्ण बन्धन पत्नी के लिए निर्धारित किए गए । कथाकारों ने ऐसी भारतीय पत्नियों का चित्रण किया है जिन्होंने परिवार की मर्यादा का निर्वाह करते हुए अपने जीवन को पारिवारिकता पर उत्सर्ग कर दिया है । 'सुहाग के नूपुर' की 'कन्नगी का चित्रण प्राचीन सांस्कृतिक परिवेश में हुआ है । विवाह में दिए गए 'सुहाग के नूपुर' कन्नगी के कुलबधू होने के प्रमाण हैं ।[4] कुल की मर्यादा का निर्वाह करना कुलबधू के जीवन का लक्ष्य होता है । माधवी कन्नगी से वेश्या के नूपुरों को पहनने के लिए कहती है । कन्नगी अपनी मर्यादा को स्थिर रखते हुए उत्तर देती है कि उसके पैरों में सुहाग के नूपुर पड़ चुके हैं ।[5] वेश्या के नूपुर पहन कर वह त्याग के उच्च पद से उतर कर भोग्या नहीं बन सकती ।

---

१. नरेश मेहता - यह पथ बन्धु था, पृ० २३६
२. सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ० १६२
३. मनुस्मृति ७।६।४५८
४. अमृतलाल नागर, सुहाग के नूपुर, पृ० २११
५. ,, ,, पृ० ६५

पति द्वारा प्रताड़ित होने पर भी वह पिता के घर नहीं जाती । श्वसुर-गृह से माधवी कन्नगी को निकलवा देती है ।[१] कन्नगी सम्पूर्ण लांछनाओं, दुखों और कष्टों को धारण कर असीम धैर्य के साथ श्वसुर की धर्मशाला में ही रहती है । कन्नगी यश के लिए नहीं जीवन की मर्यादा के निर्वाह के लिए सम्पूर्ण वैभव का त्याग करती है ।

'जीजी जी' में प्रभा आदर्श का निर्वाह करने वाली एक ऐसी नारी है जो माता-पिता की इच्छा से व्यभिचारी व्यक्ति से सहर्ष विवाह कर लेती है । पति का प्रत्येक अत्याचार प्रभा सहती है । कठिनाइयों के आगे वह सर नहीं झुकाती है । पत्नीत्व की दृढ़ता प्रभा के चरित्र में प्राप्त होती है । पति की कुत्सित इच्छा का प्रभा स्पष्टत: विरोध करती है । प्रभा पत्नी है । पत्नी के जीवन की पूर्णता मातृत्व में है भोग्या बनने में नहीं । पति के समक्ष भी वह वेश्या की तरह नहीं जा सकती ।[२]

'यह पथ बन्धु था' की सरो पारिवारिक मर्यादाओं के निर्वाह में शरीर से टूट जाती है परन्तु उसका मन नहीं टूटता । कष्टों को अनवरत झेलते हुए भी वह पतिगृह को छोड़कर नहीं जाती । जिस घर में सरो बहू बनकर आई थी वहां से वह अपने पारिवारिक जनों को छोड़ कर 'अन्तिम यात्रा' पर ही बाहर निकलती है ।[३]

## ५. सन्तान का पालन पोषण --

भारतीय संस्कृति में जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष है । विवाह का लक्ष्य काम, भोग, न होकर सन्तान प्राप्ति होता है । 'काम' जीवन का मुख्य अंग अवश्य माना गया है परन्तु लक्ष्य नहीं । विवाह का लक्ष्य सन्तानोत्पादन है । प्रेमचन्द ने कहा है कि 'विवाह आनन्द नहीं, यह तो तपस्या है ।'[४] नारी भोग्या नहीं माता

---

१. अमृतलाल नागर, सुहाग के नूपुर, पृ० २०५

२. उग्र, जीजी जी, पृ० ११८

३. बस्ती के इस एकमात्र पथ को साक्षी बना, वह पालकी में बैठकर आयी थी, और आज अपनी देह से उत्पन्न प्रजा के बीच उसी पथ से सबको बन्धु बना लौट गयी है
--नरेश मेहता - 'यह पथबन्धु था, पृ० ३२१

४. प्रेमचन्द, गोदान, पृ० ३३३

है 'इसके उपरान्त वह जो कुछ है वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है ।'[१] इस प्रकार काम को कर्तव्य और धर्म के साथ जोड़ कर भोग में सन्तुलन उपस्थित किया गया है ।

पत्नी सन्तानवाली होती है । सन्तान का पालन पोषण भी पत्नी का कार्य है । पति का कार्य अर्जन करना है । गृहिणी का कार्य सुचारु रूप से घर की व्यवस्था चलाना है । भारतीय परम्परा में यह बात अनिवार्य समझी गई है कि 'हर लड़की को प्रारम्भ से ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे जीवन में वह सफल गृहिणी बन सके । सफल गृहिणी बन कर —अपना परिवार सम्हालना अपने पति को सुख देना,सन्तोष प्रदान करना और अपने बच्चों का भविष्य बनाना तथा संवारना लड़की अपना कर्तव्य समझती है ।'[२]

प्रेमचन्द ने 'गोदान' की गोविन्दी का चित्रण भारतीय आदर्श पत्नी कल्पना को मूर्तरूप देने के लिये किया है ।'बच्चों का लालन-पालन और गृहस्थी के छोटे-मोटे कार्य ही उसके लिए सब कुछ हैं । वह उनमें इतनी व्यस्त रहती है कि भोग की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता ।[३] प्रेमचन्द की दृष्टि में 'जो मातृत्व की वेदी पर अपने को बलिदान करती है, जिसके लिये त्याग ही सबसे बड़ा अधिकार है ... वह आदर्श नारी है..... वही आदर्श पत्नी भी हो सकती है ।'[४]

आदर्श पत्नी की रचना भगवतीचरण वर्मा ने' टेढ़े मेढ़े रास्ते में भी की है । पत्नी राजेश्वरी पति तथा सन्तान के प्रति अपने कर्तव्यों का तन्मयता से निर्वाह करती है । समृद्ध परिवार की होते हुए भी सन्तान का लालन-पालन वह स्वयं करती हैं । सन्तान के भोजनादि की व्यवस्था उसका अपना कार्य है, भृत्यों का नहीं ।[५]

---

१. प्रेमचन्द -'गोदान' , पृ० १८६

२. सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ० १६२

३. प्रेमचन्द, गोदान, पृ० १८०

४. ,, पृ० १८६

५. भगवतीचरण वर्मा - टेढ़े मेढ़े रास्ते, , पृ० १२५

'रंगभूमि' में सन्तान-पालन का सांस्कृतिक रूप परिलक्षित होता है। विलास से अलग हटाकर कर्मयोगी सन्तान की कल्पना करने वाली तथा सन्तान को योग्य बनाने के लिए स्वयं भोग-विलास छोड़कर तपस्या में रहने वाली रानी जाह्नवी का चित्रण उपन्यास-परम्परा में अद्वितीय है। भारतीय लोककथाओं में क्षत्राणियों के दर्पपूर्ण मातृत्व के जो वर्णन प्राप्त होते हैं, उसकी प्रतिमूर्ति रानी जाह्नवी हैं।

बीमारी की हालत में रानी जाह्नवी भारतीय वीरों की कथाओं का अध्ययन करती हैं। उसी समय उनके मन में एक इच्छा जागृत हुई -'मेरी कोख से भी कोई ऐसा पुत्र जन्म लेता जो अभिमन्यु, दुर्गादास और प्रताप की भांति जाति का मस्तक ऊंचा करता।' रानी जाह्नवी केवल भावनाओं में बहने वाली नारी नहीं है, उन्होंने इच्छा को संकल्प का रूप दिया और 'तपस्विनी की भांति जमीन पर सोती केवल एक बार रूखा-सूखा भोजन करतीं, अपने बरतन तक हाथ से धोतीं।'[१]

विनय के जन्म के पश्चात् भी जाह्नवी ने विनय को विलासिता से दूर रखा, 'न कभी गद्दों पर सुलाती न कभी महरियों और दाइयों की गोद में जाने देती।'[२] कर्मठता के साथ पुत्र का पालन करते हुए वह पुत्र को अपनी इच्छानुसार ढाल लेती हैं। पुत्र का कर्मयोगी रूप देखकर जाह्नवी का मातृत्व गर्व से फूल उठता है। माता की साधना पुत्र को कर्त्तव्य पर बलि होते देख कर पूर्ण हो जाती है।[३]

भारतीय पत्नी अपने जीवन की सम्पूर्ण विवशता को सन्तान का सहारा लेकर झेल लेती है। दिन भर घर के कार्यों में खटने वाली सरो हृदय में उमड़ते दुःख को झेलने में असमर्थ हो 'देवव्रत को हठात् सीने से लगा कर रो पड़ती है' तो[४] दूसरी तरफ 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' की महालक्ष्मी पति द्वारा सपत्नी लाने का मर्मघाती समाचार भी सुरेश को सीने से लगा कर सहन कर जाती है।[५] भारतीय पत्नी की

---

१. प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृ० ८६
२. ,, पृ० ८६
३. ,, पृ० ८६, ५०१
४. नरेश मेहता, यह पथ बन्धु था। पृ० ३६
५. भगवतीचरण वर्मा - टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृ० २०४

मातृत्व ही विवशता और मातृत्व ही उसके जीवन की दृढ़ता है ।

सन्तान दाम्पत्य-जीवन का लक्ष्य है, इसकी सिद्धि कायाकल्प उपन्यास में होती है । वंशरक्षा के लिए राजा विशाल सिंह पांच विवाह करते हैं । खोयी हुई पुत्री अहिल्या और दौहित्र शंखधर को देख कर उनकी कामना पूर्ण होती है क्योंकि पुत्ररत्न न हो तो कर्म का उद्देश्य ही क्या है,। पुत्र ही जीवन का सर्वस्व है ।

६. बहुपत्नी-प्रथा –

सपत्नी की व्यवस्था भी भारतीय संस्कृति में प्राप्त होती है । पुरुषों को बहु विवाह की वैधानिक मान्यता प्राप्त रही है । भारतीय पत्नी 'सौत' शब्द से भिज्ञ है । सपत्नियों से भरे घर के कलहपूर्ण तथा सहिष्णुता पूर्ण चित्रण उपन्यासों में हुए हैं ।

सपत्नी के प्रति सहिष्णु व्यवहार ही आदर्शनारी का गुण है । टेढ़े मेढ़े रास्ते में महालक्ष्मी विदेश से लौटे पति द्वारा सपत्नी लाने का समाचार सुन कर दु:खित अवश्य होती है परन्तु पति के कार्य को भी महालक्ष्मी अपना दुर्भाग्य समझ कर झेलने के लिए तत्पर हो जाती है । क्योंकि 'हिन्दू स्त्रियों के लिये सौत कोई नहीं चीज तो नहीं है, अपना दुर्भाग्य मुझे वहन करना होगा[१]।' अपने दुर्भाग्य को वहन करने के लिए तत्पर महालक्ष्मी उमानाथ को विश्वास दिलाती है - 'आप उन्हें बुला लें । जब वह पूछे कि मैं कौन हूं तो आप कह दें कि मैं नौकरानी हूं । और मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि मैं उनकी सेवा करूंगी, उनकी पूजा करूंगी[२]।' भारतीय परम्परा में पति के लिए त्याग करने की जिस क्षमता को पत्नी का गुण माना गया है, उसकी पूर्णता महालक्ष्मी में है । पत्नी की उपर्युक्त त्याग की क्षमता का मुख्य कारण आर्थिक विवशता भी है, परन्तु पति की प्रसन्नता के लिए सम्पन्न और समर्थ होते हुए भी महालक्ष्मी का समर्पण, भारतीय पत्नीत्व को गौरवान्वित

---

१. भगवतीचरण वर्मा, टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृ० २०७

२. ,, ,, पृ० २०६

करता है ।

सपत्नियों का परिवार में होना यदि भारतीय संस्कृति की एक प्रथा है, तो सपत्नियों के साथ व्यवहार करना भी एक कला है । इस कला का शिक्षण कन्या को माता-पिता के घर से ही प्राप्त हो जाता है ।`यह पथ बन्धु था` में एक पत्नी के जीवित रहते हुए भी माता-पिता अपनी कन्या का विवाह द्विजवर से करने के लिए तैयार हो जाते हैं । साथ ही माता-पिता को विश्वास रहता है कि`हमारी लड़की को सब बता दिया जायेगा कि सौत के साथ क्या किया चाहिए[१]।' सपत्नियों के बीच दाम्पत्यजीवन प्रेमप्रधान न रहकर राजनीति का अखाड़ा बन जाता है, जहाँ अपने - अपने अधिकारों के लिए पत्नियों में संघर्ष हुआ करता है । ऐतिहासिक उपन्यास` मृगनयनी` तथा सामाजिक उपन्यास `कायाकल्प` में सपत्नियों की भावनाओं का तथ्यात्मक चित्रण हुआ है । रनिवास की कुटिलताएं, कपटपूर्ण व्यवहार और षड्यन्त्रों के चित्रण 'मृगनयनी' में प्राप्त होते हैं । [२]कायाकल्प में परिवार के सांस्कृतिक कार्यक्रम तक हरम-राजनीति का अंग बन जाते हैं । पत्नियां पति को व्रत-अनुष्ठानादि में मात्र इसलिए सहयोग देती हैं कि पति की कृपा दृष्टि की वे पात्री रहें ।[३] स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तक कबूतर खाने जैसे हरम की व्यवस्था, जो भारतीय संस्कृति का एक अंग रही है, का चित्रण सम्पूर्ण रूप से`कायाकल्प` में हुआ है । रनिवास की समस्या उपन्यास का कथ्य बन जाती है, अन्य समस्याएं गौण हो जाती हैं ।

जीवन-यापन के मुख्य अंग -

जीवन-यापन के विभिन्न स्तरों पर भी भारतीय संस्कृति की झलक प्राप्त होती है । भोजन-व्यवस्था में गृहिणी भोजन बनाती है, पूरे परिवार को तृप्त कराने के पश्चात् स्वयं ग्रहण करती है :--

---

१ नरेश मेहता यह पथ बन्धु था पृ० २५३

१. वृन्दावनलाल वर्मा, मृगनयनी, पृ० ३६७,३२३,४१२

२. प्रेमचन्द, कायाकल्प, पृ० ६६,७०

घर का सम्पूर्ण कार्य समाप्त करके, परिवार के प्राणियों को भोजन कराने के पश्चात भी सरो भूखी है क्योंकि श्रीधर ने भोजन नहीं किया है -

'आए हुए श्रीधर से माँ ने कहा , जा खाना खाले, इती देर-देर में तुम लोग आते हो । कभी नहीं सोचते कि तुम्हारे कारण दूसरों को भी भूखा रहना पड़ता है[1]।'

गहरी चुप्पी में श्रीधर को भोजन कराती हुई सरो सोचती है -'उसने जो कुछ सुना है क्या वह इतना गम्भीर है ।' अन्यमनस्क भोजन करते हुए पति को देख कर सरो से भी भोजन नहीं किया गया ।'पति के खाने के बाद सरो ने केवल मुंह जूठा करने के लिए एक-दो गस्से पानी के साथ किसी तरह उतारे और उठ गयी ।'[2]

'प्रेमाश्रम' में दरिद्र-वर्ग की विलासी भी पहले पति-पुत्र को भोजन कराती है तब स्वयं खाती है । भोजन कराते समय वह पति की मानसिक स्थिति को पढ़ती है,उसकी मानसिक उलझनों को अनुभव करती है -

'मनोहर इस भांति रोटियां तोड़-तोड़ कर मुंह में रखता था जैसे कोई दवा खा रहा हो । इतनी ही रुचि से वह ग्रास भी खाता ।' पति की उलझनों को कम करने की दृष्टि से विलासी पूछ ही बैठती है -'क्या भूख नहीं है ?' मनोहर के उत्तर से वह सन्तुष्ट नहीं होती और विलासी की शंका शब्दों में व्यक्त हो जाती है - 'खाते तो नहीं हो, जैसे औंघ रहे हो, किसी से कुछ कहासुनी तो नहीं हुई ?[3]'

भोजन की विधि और स्थान तथा भोज्य पदार्थों में भी भारतीयता की झलक मिलती है ।

यदि भारतीय किसान के चौके का चित्रण है तो 'चौके में मिट्टी के तैल का एक चिराग जल रहा है, किन्तु छत में धुआं इतना भरा हुआ है कि उसका प्रकाश मंद पड़ गया है । उसकी स्त्री विलासी ने एक पीतल की थाली में बथुए की भाजी और जौ की कई मोटी-मोटी रोटियां परस दीं[4] ।'

---

१. नरेश मेहता , यह पथ बन्धु था, पृ० ७३

२. नरेश मेहता ,, पृ० ७४

३. प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, पृ० १२

४. ,, पृ० ११

कुलीन घर के 'रान्नीघर' की अपनी मर्यादाएं हैं -'सरो वही रान्नी घर वाला अबूट्या पहने एकवस्त्रा बनी चूल्हे के पास घुटने के ऊपर हाथ में ठोढ़ी टिकाए घूंघट में बैठी रही ।[1]'

भोजन में सादगी और पवित्रता है -'पिता श्रीनाथ ने हाथ मुंह धोया और रान्नी घर के सामने ही ओसारे में लगे पीढ़े पर भोजन करना आरम्भ किया । पीतल के डिब्बे में से गुनी के हाथ की रोटियां और भाजी पत्नी रखती जा रही थीं । पत्नी जानती है कि बिना दोनों जून दाल-भात के पति का मन नहीं भरता इसलिए कभी ताजे दाल-भात नहीं हुए तो सवेरे के ही दालभात रखे रहते थे ।'[2]

भारतीय प्रथा में भोजन एक संस्कार है । भोजन करने से पहले भोग लगाना आवश्यक है -

'पंडित श्रीनाथ ठाकुर ने दाहिनी अंजुली में जल लेकर थाली के चारों ओर 'ब्रह्मार्पण' किया । तीन ग्रास निकाले और फिर तीन ग्रास चुन कर थोड़ा जल आचमन से पीकर हाथ जोड़ भोजन शुरू किया ।[3]'

सम्पन्न तथा सुशिक्षित परिवारों में भी भोजन की व्यवस्था का भारतीय रूप प्राप्त होता है । भोजन कराना गृहिणी का कार्य है माता हो अथवा पत्नी । 'कमलेश भोजन पर बैठा था । रूपरेखा पंखा झल रही थी । इससे पूर्व इस काम को माता करती थी ।[4]'

भोजन व्यवस्था की भांति ही शयन की व्यवस्था में भी भारतीयता के चिह्न प्राप्त होते हैं । दाम्पत्य-जीवन में सन्तुलित भोग को उचित माना गया है । पति-पत्नी का शयन-कक्ष परिवार के अन्य प्राणियों से अलग अवश्य होगा परन्तु सन्तान के सोने की व्यवस्था माता-पिता के साथ ही होती है । दिन भर बाहर

---

१. नरेश मेहता, यह पथ बन्धु था, पृ० १४३
२. ,, ,, पृ० २३३
३. ,, ,, पृ० २५०
४. ऊषा मित्रा, जीवन की मुस्कान, पृ० १४१

काम में लगा रहने वाला पति लौट कर रात्रि में अपनी सन्तान को देख कर ममत्व से भर उठता है । 'श्रीधर बाबू बिना कुछ बोले-चाले अपने कमरे में पहुंच जाना चाहते हैं, लेकिन गुणावन्ती जैसे आज बाबा से बातें करने के लिए जाग रही हो —
— बाबा आज सिर में बुहत दर्द है --
पास बैठते हुए श्रीधर ने कहा, 'शायद इसीलिए नींद नहीं आ रही है न ? अच्छा लाओ मैं दाबे देता हूं । अच्छे बच्चे जल्दी सो जाते हैं ।'[१]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि पिता सन्तान के लिए दूर अथवा अपरिचित न होकर उतना ही अपना और पास भी हो सकता है जितनी कि मां ।

सन्तान के समक्ष पत्नी पति के लिए मात्र भोग की सामग्री नहीं रह जाती है, दु:ख सुख की सहभागिनी बन जाती है —

'बाहर श्रावण बरस रहा था और सरो अषाढ़ बनी हुई थी । बाहर श्रावण में घर के पीछे कुम्हड़े तथा तरोई की बेलें भीग रही होंगी और यहां अनजाने ही श्रीधर का परिवार भीग रहा था । बच्चे बिस्तरों की हल्की गर्मी में कुनमुना रहे थे ।'[२]

सन्तान माता का एक अंग है । छोटी संतान प्रत्येक स्थिति में माता के साथ ही रहती है । 'टेढ़े - मेढ़े रास्ते' में महालक्ष्मी और उमानाथ के शयन-कक्ष का चित्रण करते हुए भगवतीचरण वर्मा ने लिखा है -'उमानाथ और महालक्ष्मी के पलंग अगल-बगल पड़े थे । महालक्ष्मी के पलंग पर सुरेश सो रहा था ।'[३]

वृद्धावस्था में मर्यादा और पद के निर्वाह के लिए संयम की विशेष आवश्यकता होती है । परिवार में रहते हुए भी पति-पत्नी वाणप्रस्थ-जीवन व्यतीत करते हैं । मधुर और एकांत क्षणों में वे उमड़ कर घिर न आयें इसलिये आसपास ऐसा वातावरण बना लेते हैं कि उन्हें घिरने का अवसर ही प्राप्त न हो ।

---

१. नरेश मेहता, - यह पथ बन्धु था, पृ० ३६
२. ,, ,, पृ० ३६
३. भगवतीचरण वर्मा - टेढ़े मेढ़े रास्ते , पृ० २०३

'यह पथ बन्धु था' में श्रीनाथ ठाकुर और उनकी पत्नी के शयन का स्थान 'औसारे' में है जहां से घर का प्रत्येक व्यक्ति आता-जाता रहता है। एकान्त तथा मधुर स्थितियां पति-पत्नी में 'राग' उत्पन्न करती हैं —'दोनों मुस्कुरा दिए। बरसों बाद दोनों पति-पत्नी की भांति एक दूसरे को देख रहे थे। दोनों की सांसें जोर-जोर से चलने लगीं थीं। दोनों अपनी-अपनी देहों से निकल कर एक दूसरे में अनस्यूत हो जाने के लिए आकुल थे।' परन्तु पद-मर्यादा दम्पती को सचेत कर देती है — 'चेत आते ही दोनों को लगा कि अरे जितना अंधेरा वे समझ रहे थे उतना नहीं था। एक दीप ही कितना आलोक देता है --ढेर सारे अंधेरे में।[1]'

८. आमोद-प्रमोद के साधन —

आमोद-प्रमोद के क्षेत्र में पति पत्नी के अलग अलग साधन हैं। पत्नी घर के अन्दर पूजा-पाठ, व्रत-त्यौहारादि में ही अपने आमोद का साधन ढूंढ़ लेती है। पति के लिए बाहर विस्तृत क्षेत्र है। पति पत्नी के साथ-साथ धार्मिक स्थानों, मेला, गंगास्नान आदि में जाने के चित्रण नरेश मेहता के 'दो एकान्त' तथा 'धूमकेतु: एक श्रुति' में प्राप्त होते हैं।[2] प्राय: स्त्रियां घर में रह कर ही तीज-त्यौहार मनाया करती हैं और पतियों की दीर्घायु तथा मंगल के लिए ईश्वर से प्रार्थना किया करती हैं। 'काले फूल का पौदा' में पत्नी की पूर्ण आस्था 'तुलसी के बिरवे' को समर्पित हो जाती है। सम्पूर्ण मनोयोग से गीता, तुलसी की पूजा करती है। प्रत्येक शाम दीपक 'बालती' है। 'हाथ श्रद्धा में जुड़े आंखें प्रणति में डूबी-चित्त एकाग्र कर जो कुछ अस्फुट स्वर में गीता कहती है उसका आशय यही होता है —'हे प्रभु, सुख की नींद मेरी देवन सोये, सागर सोये, उनके जागरण को मैं जागूं, उनके द्वन्द्व को मैं भोगूं, उनके दु:खों से मैं निकलूं।[3] पुत्र और पति के लिए आपदाओं को अपने ऊपर झेलने वाली भारतीय माता का गरिमामय रूप उपर्युक्त वाक्यों में अभिव्यक्ति प्राप्त करता है।

---

१. नरेश मेहता, यह पथ बन्धु था, पृ० २५१
२. ,, दो एकान्त, पृ० १६
३. लक्ष्मीनारायण लाल - काले फूल का पौदा, १२८, १६६

'बगुला के पंख' की सुहागिन पद्मा हरियाली तीज पर पूर्ण शृंगार करती है। पकवान बनाती है। चोटी में उसने फूल गूंथे हैं। हाथों में मेंहदी रचाई है। अपने सभी आभूषण उसने अंगों पर धारण किये हैं। अब वह नख-शिख-शृंगार करके शोभाराम की शैया के पास आयी। रुग्ण पति को देख कर वह सोचती है --'प्रियतम की मंगलकामना ही अब मेरे जीवन का एक व्रत है.... उनका अनुराग ही मेरे जीवन का सहारा है।'[१] उपर्युक्त वाक्य में रुग्ण पति के लिए पत्नी के हृदय में उत्पन्न होने वाली वात्सल्य मयी श्रद्धा व्यक्त होती है।

व्रत की सांस्कृतिक परिपाटी को यशपाल जी ने भी अपने उपन्यास में स्थान दिया है। 'झूठा सच' की कनक आधुनिका है, शिक्षिता है। रूढ़ियों पर उसका विश्वास नहीं। पर पति के कल्याण की भावना से रखे जाने वाले करवा-चौथ के व्रत को रखना वह नहीं भूलती।[२]

(ख) सांस्कृतिक उत्सव

आमोद-प्रमोद के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का रूप 'मृगनयनी' और 'कायाकल्प' में प्राप्त होता है। 'मृगनयनी' का "मानसिंह" बैजू, कला तथा विजय के संगीत का आनन्द मुख्य भवन में बैठ कर लेता है। उसकी पत्नियाँ झिझरियों में बैठ कर संगीत का आनन्द उठाती हैं।[३] 'कायाकल्प' के राजा विशाल सिंह बाहर जन्माष्टमी का कार्यक्रम धूम-धाम से मनाते हैं। ऐसे में गृहिणी का कर्त्तव्य है कि वह भोग-सामग्री का स्वयं निर्माण कर पति के उत्सव में सहयोग दे। रानी वसुमती पति की इच्छा के लिए नाना प्रकार के व्यंजनों की व्यवस्था करती हैं।[४] सांस्कृतिक कार्यक्रमों में पति-पत्नी बराबरी से सहयोग देते हैं, यद्यपि दोनों के कर्मक्षेत्र और पद-स्थान अलग-अलग होते हैं।

---

१. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, बगुला के पंख, पृ० ३४

२. यशपाल, झूठा सच, पृ० ४१४

३. वृन्दावनलाल वर्मा, मृगनयनी, पृ० ३१८

४. प्रेमचन्द, कायाकल्प, पृ० ७०

९. मृत्यु एक संस्कार

भारतीय समाज में सुहागवती नारी को आदर दिया जाता है । विधवा का स्थान बहुत ही हीन है । पत्नी सुहाग की कामना करती है और साथ ही सुहागवती रहते हुए ही अपनी मृत्यु की इच्छा रखती है ।

मृत्यु एक संस्कार है । सुहागवती नारी का दाहसंस्कार पति करता है । पत्नी की एक मात्र इच्छा होती है कि पति के कन्धों पर चढ़ कर जाये, पति ही उसकी चिता में अग्नि लगाए । 'यह पथ बन्धु था' की सरो पति की अनुपस्थिति में सोचती है -- गीली तकिये पर जलते मस्तक में पत्थर की तरह एक ही प्रश्न भड़-भड़ा रहा था कि क्या वे अब भी नहीं आयेंगे ? तब मेरे इन बच्चों का क्या होगा ? ओसारे में लेटे वृद्ध सास-ससुर का क्या होगा ?' इन चिन्ताओं से ऊपर एक सबसे बड़ी चिन्ता है -'कल यदि वह नहीं रहती तो क्या उसे पति के हाथ से अग्नि नहीं दी जायेगी ?'[१]

मृत्यु के पश्चात् सुहागिन स्त्री का शृंगार वधू की भांति होता है । सरो का कान्ता ने शृंगार किया है --' मांग और टीका कैसे सुलगे पड़ रहे थे लगता था स्वप्न में है , सोयी भी नहीं है । अर्थी पर लेटी कैसी निश्चिन्त लग रही थी, कोई परिताप नहीं, मुख पर , कोई कामना शेष नहीं रह गई थी ।[२]'

१०. दाम्पत्य-जीवन की पूर्णता

पति के साथ सम्पूर्ण जीवन सुख-दु:खों को झेलती हुई पत्नी पति की मृत्यु के पश्चात् अपने जीवन को व्यर्थ सा अनुभव करने लगती है । पति का वियोग सहना पत्नी के लिए दुष्कर हो जाता है । 'श्रीनाथ ठाकुर की मृत्यु के पश्चात् 'मां ने स्नान किया, सोला पहना, ठाकुर जी की पूजा की और यही कहती रही 'ठाकुर जी मेरा भी पुण्य स्वीकार करो । उनके बिना अब नहीं रह पाऊंगी ।' और दूसरे

---

१. नरेश मेहता -'यह पथ बन्धु था, पृ० ३७६ मूल संस्करण से
२. ,, ,, पृ० ३२१

दिन सवेरे उनकी अर्थी ही उठी - कैसी पावन मृत्यु हुई दोनों की ।"[1]

इसी पावन मृत्यु के लिए भारतीय दम्पती जीवन भर पुण्य करते हैं, परस्परता का अनुभव कर कर्तव्य में रत रहते हैं । संघर्ष के साथी विश्वास की दृढ़ता पर मृत्यु के पश्चात् भी साथ रहते हैं । पति पत्नी इतने अनस्यूत हो जाते हैं कि वे अलगाव सहन नहीं कर पाते ।

'गोदान' की धनिया के लिए सोहाग ही वह सहारा है जिसे लेकर संसार सागर को पार कर रही है । जब पति ही नहीं तो उसका जीना भी व्यर्थ है । अपने पति के प्रति उसका जो कर्म है क्या वह उसको बताना पड़ेगा । जो जीवन-संगी था उसके नामको रोना ही क्या उसका धर्म है ?"

पत्नीत्व के कर्तव्य को जानने वाली धनिया घर में शेष रखी हुई बीस आने की राशि लाकर होरी के हाथ पर रख देती है- महाराज न घर में गाय है न बछिया न पैसा । यही पैसे हैं यही इनका गोदान है ।

और पछाड़ खाकर गिर पड़ी --[2]'

दाम्पत्य-जीवन की पूर्णता प्राप्त होती है --'बूंद और समुद्र' के सज्जन और वनकन्या के जीवन में । वस्तुत: वनकन्या में ही पूर्ण पत्नी-भाव है जो पति के लिए सहयोगिनी, सहधर्मिणी, रमणी और ममतामयी है । साथ ही प्रमुख गुण यह है कि वह पति की पथ-प्रदर्शिका भी है । 'बूंद और समुद्र' से पहले के उपन्यासों में पत्नी का ऐसा ज्वलन्त और उदात्त रूप प्राप्त नहीं होता जो अपने सत् से तमस् को दूर कर सके । कथाकारों के दृष्टिकोण में इसके कारण प्राप्त होते हैं । प्रेमचन्द पत्नी के उस रूप को अपना आदर्श बना पाये जो त्याग, दया, ममता की मूर्ति हो साथ ही 'बेज़बान' हो । बेज़बानी की सीमा भी इतनी कि पति को अन्य रमणी के साथ प्रेम करते देख कर भी उसके अन्दर ईर्ष्या का भाव उत्पन्न न हो । प्रेमचन्द

---

१. नरेश मेहता, यह पथ बन्धु था, पृ० ३१६

२. प्रेमचन्द - गोदान, पृ० ३४३

३. ,, पृ० ३४४

पत्नी को मानवीय स्तर से उठा कर दैवी स्तर पर ले जाते हैं । साधारण मानवीय स्तर की पत्नी धनिया का चित्रण उन्होंने किया है परन्तु उसका उग्र रूप सम्पूर्ण सामाजिक अव्यवस्था के प्रति ही आक्रोश प्रकट करता रहा । पति द्वारा मारे जाने पर भी वह पुनः पति की दासी बन कर रह जाती है । धनिया-होरी के सम्बन्धों में दृढ़ता है, परन्तु निम्न श्रेणी के होने के कारण सम्बन्ध का परिष्कृत रूप नहीं है जो भारतीय संस्कृति का आदर्श है । 'गोदान' की गोविन्दी, 'प्रेमाश्रम' की श्रद्धा और 'यह पथबन्धु था', की सरो में पति-पत्नी सम्बन्धों के प्रति उच्चभाव प्राप्त होते हैं परन्तु इनमें नारी की विवशता भी मिलती है । वे पति की अनुगामिनी मात्र बन कर रह गईं, पथ-प्रदर्शक नहीं बन पाई हैं ।

जैनेन्द्र ने कहा है कि "मैं इसको दुर्भाग्य नहीं मानता कि भारत में स्त्री पुरुष के समकक्ष नहीं है बल्कि सहयोगिनी हो तो मैं इसमें कोई अनौचित्य नहीं देखता ।' जैनेन्द्र के विचार में पत्नी बाहर निकल कर कुछ खोती ही है, पाती नहीं है । सम्भवतया यही कारण है कि सुखदा जैसी लचर पत्नी की रचना जैनेन्द्र ने की है जो बाहर निकल कर मात्र खोती है, पाती नहीं है ।

वस्तुतः पूर्ण पत्नीत्व का चित्रण हिन्दी-उपन्यासों में प्राप्त नहीं होता, पत्नी के कुछ गुण ही प्राप्त होते हैं । पत्नीत्व की पूर्णता वनकन्या में है जो अपने उदात्त मानवीय गुणों के साथ सज्जन को समर्पित होती है । वह पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक कार्यों में सज्जन की सच्चे अर्थों में सहयोगिनी है । विपुल सम्पत्ति राम जी को अर्पण कर देने में उसकी त्याग-क्षमता दृष्टिगोचर होती है । सज्जन वनकन्या के सौन्दर्य पर तो मोहित होता ही है किन्तु उसके तेज और गौरवमय रूप से भी वह अत्यधिक प्रभावित है । यही कारण है कि वनकन्या सज्जन की अनुचरी, दासी, अनुवर्तिनी न बन कर सच्चे अर्थों में सहधर्मिणी बनती है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवार, समाज अथवा धर्म में सज्जन को वनकन्या का साथ मिलता है ।

भारतीय दाम्पत्य-जीवन की पूर्णता को जिस प्रकार अमृतलाल नागर ने आधुनिक परिवेश में सज्जन और वनकन्या के माध्यम से प्रस्तुत कर सके हैं वैसा

अन्य कोई उपन्यासकार नहीं कर सका है । वर्तमान जीवन में पति-पत्नी के टूटते-बनते-सम्बन्धों में स्थायित्व और पवित्रता लाने के लिए सज्जन तथा वनकन्या का जीवन प्रेरणादायी है ।

## (ख) पाश्चात्य संस्कृति : भौतिकतावादी दृष्टिकोण

अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ ही पाश्चात्य संस्कृति अपने गुणों तथा अवगुणों के साथ भारत में आई । भारतीय संस्कृति अध्यात्म-प्रधान है जब कि पाश्चात्य संस्कृति भौतिकता प्रधान है । विदेशी लोगों की संस्कृति के प्रति भारतीयों में घृणा का भाव संचरित हुआ, पर साथ ही एक ऐसे वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ जो अपने शासकों के रहन-सहन, बोल-चाल , वेशभूषा आदि से प्रभावित हो रहा था । पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित वर्ग अंग्रेजों की नकल करने में व्यस्त रहने लगा और स्वयं को प्रभु-वर्ग के समकक्ष मानने लगा । अंग्रेजों की सभ्यता के प्रति बहिष्कारात्मक विचार रखने वाला वर्ग अधिक रूढ़िवादी हो गया । परिणामस्वरूप भारतीय परिवारों में दो प्रकार की विचार धाराएं चलीं जिनमें निरन्तर संघर्ष की स्थिति व्याप्त हो गई ।

'पाश्चात्य सभ्यता भौतिकता प्रधान है । भौतिकतावाद तथा सुखवाद के सिद्धान्त त्याग पर बल देने वाले भारतीय आदर्श के प्रतिकूल हैं । पाश्चात्य सभ्यता में व्यक्ति के अधिकारों विशेषत: समानता और स्वतंत्रता के अधिकारों - पर बहुत बल दिया गया ।'[1] समानता और स्वतंत्रता की मांग भारत में भी पाश्चात्य प्रभाव में प्रारम्भ हुई । स्त्री-स्वतंत्रता, स्त्री-शिक्षा, स्त्री-पुरुष समानाधिकार की मांग पाश्चात्य प्रभावान्तर्गत विकसित होती गई । नारियों की स्थिति से दु:खित होकर भारतीय विद्वानों ने भी स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता को महत्व दिया । पत्नी यदि आर्थिक रूप से समर्थ है तो पति की कुचेष्टाओं का शिकार

---

१. डा० गीतालाल 'प्रेमचन्द का नारी चित्रण', पृ० ३३६

नहीं हो जायेगी । नारी के समानाधिकार और अर्थोपार्जन की सक्षमता ने पति-पत्नी के सम्बन्धों में प्रतिद्वन्द्विता और स्पर्धा की भावना को जन्म दिया । पाश्चात्य दाम्पत्य-जीवन में पति-पत्नी का अधिकार समान है । विवाह मात्र सामाजिक सम्बन्ध है, अविच्छेद्य या अटूट नहीं है । पति-पत्नी को कुछ विशेष परिस्थितियों में सम्बन्ध विच्छेद करने का भी अधिकार है । पाश्चात्य संस्कृति व्यक्ति के विकास पर बल देती है । प्रारम्भ से ही वैयक्तिकता, पृथकता और स्वतंत्रता की भावना में पालित पति-पत्नी सामूहिक संगठनों में विश्वास नहीं करते ।

१. कुटुम्ब पर पाश्चात्य प्रभाव -

भारतीय कुटुम्ब पर पाश्चात्य संस्कृति के व्यक्तिवाद का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । भारत में कौटुम्बिक भावना इतनी गहराई से बसी है कि उसका समूल नष्ट होना तो असम्भव हो गया है । आज के उद्योग-प्रधान जीवन में परिवार के जिस लघु रूप का चित्रण प्राप्त होता है वह पाश्चात्य प्रभाव के कारण है । पश्चिम में पारिवारिक जीवन की एक विशेषता है कि वहां परिवार बहुत छोटा होता है, माता, पिता और बच्चे होते हैं ।[१] बड़े परिवार में बंटवारा होना सदस्यों का अलग-अलग हो जाना भारतीय संस्कृति के लिए नवीन स्थिति नहीं है । प्राचीन काल से परिवारों में से उप-परिवारों का सर्जन होता आ रहा है । गोदान में होरी और धनियां के परिवार से हीरा तथा शोभा के परिवारों का अलग हो जाना भारतीय परम्परा के अन्तर्गत आता है । गोबर का धनिया को लेकर शहर चले आना, 'यह पथ बन्धु था' के श्रीवल्लभ का पत्नी को साथ लेकर नौकरी पर चला जाना और पारिवारिकता के बन्धनों से दूर हट जाना, 'गिरती दीवारें' में चेतन का चन्दा के साथ नयी गृहस्थी बनाना आदि ऐसे छोटे परिवारों की रचना है जिन पर पाश्चात्य प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

---

१. कृष्णाचन्द्र, अमेरिका की संस्कृति, पृ० ४६ ( हिन्दी अनुवाद)

शहरोन्मुखी सभ्यता में संक्षिप्त परिवार की भावना इतनी आत्मसात हो चुकी है कि १९१८ के पश्चात् के उपन्यासों में संक्षिप्त परिवार पाश्चात्य प्रभाव की समस्या नहीं लगता है । प्रेमचन्द के अतिरिक्त अन्य उपन्यासकारों ने सम्मिलित परिवार की समस्याओं पर तथा आवश्यकताओं पर विशेष बल नहीं दिया है । परिवार की समस्याएं पति-पत्नी और बच्चे के छोटे से दायरे में सिमट गई । जैनेन्द्र ने प्रेमचन्द के विपरीत शहरी जीवन का चित्रण किया है । जैनेन्द्र के उपन्यासों में दम्पती सुशिक्षित मध्यम वर्ग के तथा स्वतंत्र विचारों के हैं । 'कल्याणी' के परिवार का चित्रण हो ,'सुनीता' के परिवार का निर्माण हो रहा हो अथवा 'सुखदा' के परिवार की समस्या हो या फिर 'व्यतीत' हो, परिवार का संक्षिप्त रूप प्राप्त होता है जिसमें विवाह के पश्चात् पति-पत्नी ही होते हैं । अन्य सम्बन्धियों से सम्बन्ध तो होता है परन्तु पति-पत्नी की स्वतंत्रता में बाधा डालने का उन्हें अधिकार नहीं है । सम्बन्धी दूर के दर्शक मात्र रह गए हैं । जैनेन्द्र के पश्चात् से संक्षिप्त परिवार भारतीयता का एक अंग ही बन गया है क्योंकि उपन्यासकारों ने भारतीय शहरों का वर्णन अधिक किया है जिसमें पाश्चात्य प्रभावों को आत्मसात करने का प्रयत्न किया गया है । आधुनिक उपन्यासों का लक्ष्य तो बड़े-बड़े शहरों का ही जीवन है जहां पाश्चात्य जीवन की ओर दम्पती धावमान है ।

## २. विवाह-प्रथा पर प्रभाव -

जीवन-यापन की प्रणालियों पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्टत: देखे जा सकते हैं । पुरुष तथा स्त्री अपने अनुरूप जोड़ा खोज कर स्वयं विवाह करते हैं, माता-पिता को बीच में बोलने का अधिकार नहीं होता है । 'प्रेमविवाह' गान्धर्व-विवाह के रूप में भारतीय समाज में भी प्रचलित था, परन्तु पाश्चात्य प्रभावान्तर्गत होने वाले प्रेम विवाहों में और भारतीय गान्धर्व-विवाहों में मौलिक अन्तर है । भारतीय गान्धर्व-विवाह भावना-प्रधान होता है । विवाह में लौकिकता के साथ ही अलौकिकता का समावेश करके विवाह को कर्तव्य की वेदी बना दिया जाता है । पाश्चात्य प्रेम-विवाह एक प्रणाली है जिसमें बुद्धि प्रधान होती है । आर्थिकता पर खड़ा विवाह सामाजिक कर्तव्य बन जाता है उसके आगे कुछ नहीं । उषा प्रियम्वदा ने 'वचन का मोल', इलाचन्द्र जोशी ने 'निर्वासित' तथा यशपाल ने 'झूठा सच'

ं में पाश्चात्य विवाह प्रणालियों का चित्रण किया है ।'वचन का मौल' में माता-पिता स्वयं कन्या और वर के मिलने का प्रबन्ध करते हैं, उनमें कौर्टशिप द्वारा प्रगाढ़ता बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं तत्पश्चात् कन्या की इच्छानुकूल वर को देख कर विवाह करते हैं ।[१]

'निर्वासित' में इलाचन्द्र जोशी ने आर्थिकता पर खड़ी पाश्चात्य प्रथाओं का चित्रण किया है जहां आदर्श से अधिक अर्थ को महत्त्व दिया जाता है ।[२]

भुवनेश्वरी सुसंस्कृत, शिक्षिता और आधुनिका है । पुत्री के लिए योग्य वर देख कर वे कितनी कोशिशों के बाद में ठाकुर साहब को इस बात के लिए राजी कर पाई थीं कि वह अपने को खन्ना परिवार का ही एक आदमी समझें । यह देख कर उन्हें प्रसन्नता होने लगी थी कि नीलिमा और वह दोनों एक दूसरे से हिलने लगे हैं ।[३]

श्रीमती भुवनेश्वरी पुत्री नीलिमा के सामने स्पष्टत: कह देती हैं -" तुम्हीं बताओ नीलिमा अगर कोई मां ऐसे व्यक्ति को अपना दामाद बनाने की इच्छा करे तो वह कौन बड़ा अपराध करती है ?"[४]

आधुनिका सुशिक्षिता पुत्री मां की इच्छा को समझ लेती है-जो प्रवृत्ति खुले तौर से उसकी मां को परिचालित कर रही थी वह चोरी-छिपे उसके मन के नीचे के दो-एक छिद्रों से झांकने का प्रयत्न कर रही थी ।" ठाकुर साहब की आर्थिक सम्पन्नता का आकर्षण कितना बड़ा है, यह कठोर वास्तविकता स्पष्ट-से-स्पष्ट रूप में उसके सामने आती जा रही थी ।"[५]

---

१. उषा मित्रा- वचन का मौल, पृ० ५३
"चेष्टा की कमी नहीं है, वैसा वर करोड़ों में एक न मिलेगा । लड़कियों के लिए ही पैसा खर्च करके सदा पार्टी दिया करती हूं । अब उन्हें अपनाना लड़कियों का काम है ।

२. इलाचन्द्र जोशी, निर्वासित , पृ० ७३
३. ,, ,, पृ० ६८
४. ,, ,, पृ० ७०
५. ,, ,, पृ० ७७

'झूठा सच' में कनक और पुरी का विवाह पूर्णतः पाश्चात्य प्रभावान्तर्गत स्वीकारा जा सकता है। कनक अपना वर स्वयं पसन्द करती है। थोड़ी आपत्तियों के पश्चात् कनक के माता-पिता कनक का विवाह जयदेव पुरी से कर देते हैं। कनक का सुशिक्षित,स्वच्छन्दतावादी,स्वतंत्र व्यक्तित्व, जिस प्रकार अपने कृतित्व के प्रति विश्वस्त होकर दृढ़ रहता है, वह पाश्चात्य नारी का प्रतिनिधित्व कर जाता है।[१]

नारी-शिक्षा और आर्थिक सहायता ने यदि एक तरफ विवाह-क्षेत्र में नारी को पति-वरण करने की स्वतंत्रता दे दी तो दूसरी तरफ माता-पिता के दृष्टिकोण को भी परिवर्तित किया। भारतीय रूढ़ परम्परा में विवाह के क्षेत्र में कन्या की इच्छा कोई अर्थ नहीं रखती परन्तु पढ़ी-लिखी, पुरुषों में उठने-बैठने वाली कन्या से माता उसके भविष्य और विवाह के विषय में राय लेती है --'एक बात पूछूं बेटी! सचसच बताना। तू भी पढ़ी-लिखी है। मैं निपट गंवार हूं।'[२] 'तू मोहन से विवाह करेगी? यदि तुझे मंजूर हो तो तेरे बापू को इलाहाबाद सोहन-लाल के पास भेजूं?'[३]

उपर्युक्त वाक्य अंचल के 'चढ़ती धूप' में ममता से पूछा गया प्रश्न है। ममता और मोहन के स्वतंत्र-मिलन,बातचीत को माता-पिता लड़के-लड़की की स्वीकृति समझते हैं। माता अपने समय और पुत्री के समय के अन्तर को स्वीकार करती हुई कहती है -'मेरी बात छोड़, वह जमाना दूसरा था। हम छोटे थे। तू छोटी नहीं। अपना भला-बुरा समझती है। काफी पढ़-लिख गई है।'[४]

उपर्युक्त विचारों से ज्ञात होता है कि माता-पिता अपनी सुशिक्षिता कन्या को इस योग्य समझते हैं कि अपने भविष्य के जीवन के बारे में वह स्वयं निर्णय ले सकती है।

---

१. यशपाल, झूठा सच, पृ० ५५५
२. अंचल, चढ़ती धूप, पृ० ३५
३. ,, पृ० ३५
४. ,, पृ० ३५

३. पति-पत्नी में समानाधिकार का भाव

पति-पत्नी की समकक्षता ने घर के अन्दर भी दम्पती के जीवन में पूर्णत: परिवर्तन ला दिया है। पति-पत्नी जब बराबरी से घर के बाहर कमाने जायेंगे तो उनके आचार-विचार और व्यवहार का परम्परा से अलग हो जाना स्वाभाविक है। पाश्चात्य परम्परा पर आधारित भारतीय शहरी दम्पती का चित्रण करते हुए यशपाल ने लिखा है -"उसने पोस्ट आफिस के ही एक बाबू से ब्याह कर लिया है। गीता को सवा सौ मिलता है, उसके पति को एक सौ पचहत्तर। दोनों अच्छी तरह रहते हैं। सुबह घर में नाश्ता बना लेते हैं। सांझ दोनों होटल में खाते हैं, सैर करते हैं। दोनों मिल कर घर संभाल लेते हैं। इतवार को गीता घर में पका लेती है और उसका आदमी बर्तन धो देता है।"[१]

इतना तो स्वीकार करना पड़ेगा ही कि भारतीय नारी के प्रति पति में सदाशयता की भावना का संचार भी पाश्चात्य संस्कृति की देन है। क्योंकि पश्चिमी सभ्यता के आगमन से पूर्व पत्नी घर की साम्राज्ञी समझी भर जाती थी, वस्तुत: उसकी स्थिति क्रीत-दासी की तरह होती थी। समकक्षता ने पति-पत्नी को परस्पर समझने का, एक दूसरे के दु:ख-सुखों को बांटने का भी अवसर प्रदान किया।

४. सन्तान की व्यवस्था -

~~पर~~ -पत्नी जब पति की भांति ही बाहर कमाने जाने लगी तो सन्तान का पालन-पोषण एक समस्या बन गया। सन्तान का भी पाश्चात्य प्रथा के अनुसार प्रबन्ध हुआ। विवाह के प्रारम्भिक दिनों में सन्तान अवांछित हो गई। परिणाम-स्वरूप पहले गर्भ का गर्भपात एक आम प्रथा बन गयी। गर्भपात (दाम्पत्य जीवन में) पत्नी की समस्याओं को लेकर प्रारम्भ हुआ। "कनक, पुरी" के साथ नाबिर में काम करती है। बाहर सभाओं में जाती है। "पुरी निमंत्रणों और सभा-समाजों में कनक

---

१. यशपाल, झूठा सच, पृ० ५७८

को साथ ले जाता था '[१] फिर अन्य समस्याएँ सामने आने लगीं -'अगर ऐसा है तो तुम्हारा बाहर आना-जाना तो मुश्किल हो जायेगा । नाजिर का काम भी कैसे कर सकोगी ।' इसके साथ ही पुरी स्वयं इतनी जल्दी पिता नहीं बनना चाहता था ।[२] ' ऐसी स्थिति में पत्नी की कार्यक्षमता को बनाए रखने और पिता बनने की समस्या से छुटकारा पाने का एक मात्र साधन भ्रूणहत्या रह जाती है ।[३]

सन्तान हो जाने के पश्चात् घर में उसकी व्यवस्था करना पत्नी का कार्य नहीं गवर्नेस का कार्य हो गया । भारत में गवर्नेस रखने की प्रथा भी ब्रिटिश-राज्य से अंग्रेजों की नकल की परिपाटी के अन्तर्गत प्रचलित हुई । पत्नियाँ घर के बाहर यदि सामाजिक कार्य करती हैं तो बच्चों को पूरी तरह गवर्नेस के अधिकार में दे देती हैं । गवर्नेस का कार्य बच्चों को खाना खिलाना, शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध, खेल-कूद की व्यवस्था, साथ ही उनकी अन्य आवश्यकताओं का ध्यान रखना होता है । 'झूठासच' में श्रीमती अगरवाला तारा को अपने बच्चों की गवर्नेस बनाकर रखती हैं । उनके यहां 'अछवट मिस्साब थीं । इस्कट पहनती थीं । चौसिया साहब के यहां तो बिलातीमिस गवर्नस है ।' परन्तु श्रीमती अग्रवाला ने हिन्दुस्तानी गवर्नेस रखी ।[४] एक तो मिस-एछवर्ड से कहीं सस्ती है दूसरे वह बच्चों को पाश्चात्य और भारतीय दोनों प्रकार से शिक्षा दे सकती है ।

कनक नाज़िर में खपी रहती है । घर में वह हीरां माई को आया रूप में रख लेती है जो घर की जिम्मेदारी और सन्तान की सुरक्षा का ध्यान रखती है । आया होते हुए भी कनक पुत्री को अपने स्नेह से वंचित नहीं कर पाती । पुत्री को तैयार करने का अधिकार कार्य वह स्वयं करती है ।[५]

---

१. यशपाल- झूठा सच , पृ० ३३८
२. ,, ,, पृ० ३३६
३. ,, ,, पृ० ३३६
४. ,, ,, पृ० १७४
५. ,, ,, पृ० ५१३

'काले फूल का पौदा' में गीता भारतीय पत्नी है । सन्तान का पालन-पोषण उसके लिए कठिन नहीं है । पाश्चात्य संस्कृति में ढला हुआ देवन गीता को सन्तान के साथ इस प्रकार लगा हुआ नहीं देख सकता, न ही वह स्वयं पसन्द करता है कि जब वह आफिस से आए तो गीता घर के कामों में डूबी हुई मिले । गृहकार्य और सन्तान का पालन-पोषण पत्नी का नहीं, आया का कार्य रह जाता है ।[१]

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व सम्पन्न घरानों में गवर्नेस रखने का प्रचलन था जो आद्यान्त अंग्रेजों की नकल थी । अंग्रेज आयाएं बच्चों की उचित शिक्षा-दीक्षा के लिए रखी जाती थीं पर साथ ही उन्हें गृहस्वामिनियों की ईर्ष्या का पात्र भी बनना पड़ता था क्योंकि गवर्नेस के साथ गृहपति के सम्बन्ध बहुत स्वस्थ नहीं होते थे । 'लज्जा' में रूसी आया का घर में स्थान, बच्चों के ऊपर उसका नियंत्रण तथा गृहपत्नी की आया के प्रति ईर्ष्या-भाव का सजीव चित्रण हुआ है ।[२]

सन्तान की चिन्ताओं से मुक्त होने का एक और उपाय 'सुखदा' में व्यक्त हुआ है । प्रारम्भ में सुखदा सन्तान के दायित्व से मुक्त होने के लिए पुत्र को मां के पास छोड़ देती है ।[३] जब माता पुत्र को नहीं रखना चाहती तो वह पुत्र को अपने पास से दूर हटाकर नैनीताल के स्कूल में भेजने का प्रबन्ध करती है ।[४] बाह्य संघर्ष में रत परिवार और सन्तान को अवांछित समझने वाली सुखदा का व्यक्तित्व नितान्त पाश्चात्य प्रभाव का परिणाम है ।

'कल्याणी' की कल्याणी के जीवन में आधुनिकता इस सीमा तक बढ़ गई है कि वह स्त्री पत्नी और माता से अलग हट कर पैसा कमाने का यंत्र भर रह गई है । गृहस्थी का कार्य करने के लिए भृत्यों की व्यवस्था है । दोनों पुत्रियां उससे दूर कानवेंट में रह कर पढ़ती हैं ।[५] सुशिक्षिता होते हुए भी कल्याणी में सुखदा की

---

१. लक्ष्मीनारायण लाल, काले फूल का पौदा, पृ० १०६

२. गौरी राड़ से अम्मां बेतरह जलती थीं । उनके लिए इसका कारण भी था । उन्हें शायद संदेह था कि काका का उसके साथ कोई अनुचित संबंध रहता है,
—इलाचन्द्र जोशी, लज्जा, पृ० १४

३. जैनेन्द्र सुखदा, पृ० ६७,७१

४. ,, पृ० ६८

५. जैनेन्द्र ~~सुखदा~~ कल्याणी पृ० ७५

तरह पाश्चात्य सभ्यता के प्रति अन्धा मोह नहीं है । वह पारिवारिकता को ठुकरा कर सामाजिक नहीं बनना चाहती । पारिवारिकता में अपने को प्राप्त करना चाहती है । वस्तुत: आधुनिकता कल्याणी की विवशता है जिसमें पड़कर वह अतृप्त नारी रह जाती है ।

सन्तान के आहार का प्रथम आधार माता का स्तन होता है । पाश्चात्य सभ्यता में शिशु को प्रारम्भ से ही बोतल का दूध पिलाने की परम्परा है । इसके लिए उनका अपना तर्क होता है कि 'माता से पृथक रह कर शिशु एक पृथक व्यक्ति बन जाता है । बच्चों का अलग कमरा, खेलने का सामान तथा अन्य उपयोग की वस्तुएं अलग होती हैं ।'[१]

बोतल द्वारा बच्चे को दूध पिलाने की प्रथा का विशद चित्रण नहीं हुआ है । 'काले फूल का पौदा' में देवन गीता को दूध पिलाते देखता है तो उसे ऐसा लगता है जैसे उसने वह देख लिया हो जो कभी नहीं देखा । भारतीयों ने पाश्चात्य दृष्टिकोण को एक फैशन की तरह लिया । माता के दूध से अलग हटाने में सन्तान का भविष्य , सन्तान की वैयक्तिकता, सन्तान के स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास जैसी भावनाएं उनके मस्तिष्क में नहीं आतीं यदि कुछ आता है-पाश्चात्य सभ्यता की कुत्सित भावनाएं । जहां माता के विशेष अंग का कुछ मूल्य होता है ।'[२] यह सत्य मूल्य मातृत्व का तो नहीं है । सम्भवतया नारी के रमणीत्व को स्थाई रखने के लिए अंग विशेष के मूल्य को स्वीकारा गया है ।

सन्तान की वैयक्तिकता की सुरक्षा का चित्रण राजकमल चौधरी ने 'देहगाथा' में किया है । एक ही परिवार में एक ही मकान के अन्दर अपने-अपने कमरों तक सीमित रहने वाली सन्तान के व्यक्तित्व का चित्रण हुआ है । 'माता-पिता 'को फाहशा मजाक सुनाने वाले, बियर और पौर्चपाउडर का प्रयोग करने वाले, होटल रेस्टरां, काकटेल-पार्टी में जाने वाले, मीनल और हरि पाश्चात्य स्वतंत्र जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं ।'[३] 'देहगाथा' में वर्णित परिवारों में यदि माता-पिता तथा

---

१. ब्रेड फोर्ड स्मिथ, अमेरिका की संस्कृति , पृ० ५५ (हिन्दी अनुवाद)

२. लक्ष्मीनारायण लाल, कालेफूल का पौदा, पृ० १५४

३. राजकमल चौधरी, देहगाथा , पृ० ५०

सन्तान का कोई सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है तो वह आर्थिक सम्बन्ध है । आर्थिक आवश्यकताओं के लिये सन्तान मातापिता से जुड़ी है अन्यथा अपने क्षेत्र में प्रत्येक सन्तान स्वतंत्र है , वह उपभोग के साधनों में समानाधिकार रखती है ।

५. भोजन की व्यवस्था

घर के अन्दर तथा बाहर भोजन की व्यवस्थां पर भी पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । मेजकुर्सी पर भोजन करना कांच के बर्तनों का प्रयोग करना आदि पाश्चात्य सभ्यता के प्रतीक हैं, जिनका चित्रण अधिकतर हिन्दी- उपन्यासों में प्राप्त होता है ।

ऊषा मित्रा के उपन्यास 'जीवन की मुस्कान' तथा 'पिया' में पाश्चात्य प्रभाव परिलक्षित होता है । 'जीवन की मुस्कान' में भारतीय परिवार की उपस्थिति का वर्णन है जब भारतीय वृद्धास्त्रियों ने पुरुषों को अंग्रेजों की नकल करने की स्वच्छन्दता दे दी थी परन्तु घर की बहू को पाश्चात्य रंग-ढंग में ढला हुआ नहीं देख सकती थीं । रूपरेखा के मायके से आई हुई आया ने देखा कि - 'कैसी असभ्य है यहां की स्त्रियां । सब खाली पैर रहती हैं, छि: छि: । भोजन - सो भी टेबल पर नहीं, जमीन पर बैठ कर । केवल कमलेश टेवल पर भोजन करता है[१] ।'

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट होता है कि भारत में कुछ परिवार ऐसे भी थे जो पूर्णतया हिन्दुस्तानी थे परन्तु पाश्चात्य संस्कृति उनके घर के अन्दर प्रवेश कर चुकी थी ।

'पिया' में जमींदार घराने का चित्रण हुआ है । कविता पत्नी है और उसका अधिकतर समय घर की चार दीवारों में ही कटता है । घर के बाहर जाने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता परन्तु घर के अतिथि/सत्कार में पति-पत्नी तथा परिवार के अन्य प्राणी एक साथ डाइनिंग टेबिल पर बैठकर

---

१. उषा मित्रा, जीवन की मुस्कान, पृ० ६५,६६

भोजन प्राप्त करते हैं ।[१] भोजन की व्यवस्था में पाश्चात्य और भारतीय सभ्यताओं का मिलाजुला रूप प्राय: भारतीय परिवारों में प्राप्त होता है । इलाचन्द्र जोशी के 'निर्वासित' में बड़े से कमरे में मेज पड़ी है जहां ठाकुर साहब अपने अतिथि को भोजन के लिये ले जाते हैं । अतिथि के स्वागत में पूरा परिवार भोजन की मेज पर आकर भोजन करता है । परन्तु भोजन के पात्र चीनी मिट्टी के न होकर थालियां हैं जिनको नितान्त भारतीय सभ्यता का प्रतीक माना जाता है ।[२]

पत्नी के आफिस जाने, क्लब घरों में जाने तथा सामाजिक कार्यों में भाग लेने से परिवार की भोजन-व्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ा । पत्नी को भी भोजन बनाने और खिलाने की दिनचर्या में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होने लगी । पति-पत्नी एक साथ ही काम पर जाते हैं और थक कर आते हैं तो भोजन की व्यवस्था कौन करे । अर्थ की प्रधानता ने नारी को चौके-चूल्हे से हटाकर आफिस का बना दिया । चौके में पति-पत्नी या तो मिल कर काम करते "पत्नी खाना बनाती और उसका आदमी बर्तन धोता," अथवा आया की व्यवस्था की जाती । आया की व्यवस्था यदि न हो पाती तो पति-पत्नी "सुबह घर में नाश्ता बना लेते । सांझ दोनों होटल में खाते ।"[३]

सम्पन्न परिवारों में होटल में खाना खाना सभ्यता का प्रतीक समझा जाने लगा है । 'कालेफूल का पौदा' में देवन गीता से आग्रह करता है, "हम दिन का भोजन ....... कपूर में या क्वालिटी में करेंगे । और - एक बजे का समय था देवन गीता के साथ कपूर होटल के एकांत में बैठा था । दोनों आमने-सामने थे । बीच में प्लेट्स थीं ।"[४]

---

१. उषा मित्रा - पिया, पृ० २००
२. इलाचन्द्र जोशी, निर्वासित, पृ० ३६,५६
३. यशपाल - झूठासच, पृ० ५७८
४. लक्ष्मीनारायण लाल, कालेफूल का पौदा, पृ० ४१

देवन कह रहा था, 'यहां का कायदा है, हर सप्ताह में कम से कम एक दिन का भोजन ऐसी ही जगह हो । इसमें नयापन तो है ही, इसके साथ ही जीवन का स्तर बढ़ता है । जीवन-स्तर में विकास के अर्थ हैं, जीवन की उत्तरोत्तर प्रगति[१]।' 'जीवन-स्तर का विकास' तथा 'उत्तरोत्तर प्रगति' पाश्चात्य भौतिक प्रगति का लक्षण है । पति-पत्नी समृद्ध और सुसंस्कृत होने का दिखावा बाह्य व्यवहारों से करते हैं, पति-पत्नी का बाहर होटलों में खाना, शराब पीना, चाय या काफी पीना उनके सुसंस्कृत होने का प्रमाण है ।

६. आमोद-प्रमोद के साधन –

पत्नियां घर के बाहर निकलने लगीं । उनके आमोद-प्रमोद के उपकरण भी बदल गए । पतियों के साथ अथवा स्वतंत्र रूप से पार्कों में घूमना , होटल में जाना, क्लब में डांस करना, सिनेमा जाना , एक आम प्रथा हो गई है । क्लब में डांस करने के अतिरिक्त अन्य साधन तो आधुनिक युग में भारतीय जन-साधारण द्वारा प्रयुक्त हो रहे हैं ।

'झूठा सच' का अगरवाला परिवार पाश्चात्य सभ्यता के प्रति आकृष्ट और उसका अनुयायी है । श्रीमती अगरवाला और अगरवाला साहब यदि खद्दर पहन कर भारतीय बन जाते हैं और जनता की सेवा का स्वांग भरते हैं तो अन्दर ही अन्दर पाश्चात्य सभ्यता के पुजारी भी हैं । अपने मित्रों को घर में डिनर पर आमंत्रित करते हैं । ड्रिंक से लेकर भोजन की मेज और छुरी-कांटे तक की सम्पूर्ण व्यवस्था पर पाश्चात्य प्रभाव परिलक्षित होता है ।[२]अगरवाला दम्पती क्लब जाने के भी शौकीन हैं ।[३] यद्यपि श्रीमती अगरवाला पाश्चात्य सभ्यता, खानपानादि की विरोधी हैं परन्तु उच्चवर्ग और सभ्य समाज की होने के नाते पाश्चात्य विचारों को अपनाने के अतिरिक्त उनकी कहीं निष्कृति भी नहीं है ।

---

१. लक्ष्मीनारायण लाल कालेफूल का पौदा, पृ० ४१
२. यशपाल, झूठा सच, पृ० २०८,२१७
३. " " " ३०२

सन्तान को आया के ऊपर छोड़ कर पार्टियों में शामिल होने तथा क्लब में जाने का चित्रण 'काले फूल का पौदा' में हुआ है। 'कालेफूल का पौदा' में कथाकार भारतीय माता के मातृत्व को पाश्चात्य सभ्यता के अन्दर छटपटाते हुए दिखाता है। गीता शिशु को आया के पास छोड़ कर आधुनिक पार्टियों में भाग लेना पसन्द नहीं करती। फिर भी गीता और देवन उस वर्ग विशेष को द्योतित करते हैं, जिसके लिए क्लब और होटलों में मनोरंजन आवश्यक है।

७. भौतिक सुखों की वृद्धि में पत्नी एक साधन --

पाश्चात्य प्रथा में पत्नी पति की आत्मिक नहीं भौतिक उन्नति का साधन है। अर्जन द्वारा पति की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने में सहयोग देने के अतिरिक्त ऐसे भी चित्रण प्राप्त होते हैं, जहां पति की व्यापार वृद्धि के लिए पत्नी गृहणीत्व को त्याग कर वैश्या के समकक्ष खड़ी हो जाती है।

प्रेमचन्द के 'कर्मभूमि' उपन्यास में पुरुष के अत्यधिक भौतिकता प्रधान दृष्टिकोण की भर्त्सना तथा पत्नी के गृहणीत्व की रक्षा का प्रयत्न परिलक्षित होता है। मनीराम अपनी पत्नी नैना से मात्र इसलिए असन्तुष्ट है कि नैना पाश्चात्य नारी की भांति उसके व्यापार की उन्नति में सहयोग नहीं देती। वह चाहता है कि घर में आए मेहमानों का नैना पाश्चात्य प्रथा के अनुसार मुक्त रूप से स्वागत-सत्कार करे। उसकी दृष्टि में पत्नियां व्यापारिक उन्नति में अधिक सहायता दे सकती हैं।[१]

सुखदा के माध्यम से प्रेमचन्द ने मनीराम जैसे पाश्चात्य प्रथा के अन्धे अनुयायियों की भर्त्सना की है।[२]

'मनुष्य के रूप' में पति की व्यापारिक वृत्ति का नग्न चित्रण हुआ है। व्यापार में पैसा लगाने वाले सेठ जी के साथ पत्नी को भेज देना, पत्नी को व्यापार

---

१. प्रेमचन्द, कर्म भूमि, पृ० २४५

२. आप अंग्रेजी सभ्यता के बड़े भक्त बनते हैं। क्या आप समझते हैं कि अंग्रेजी पहनावा और सिगार ही उस सभ्यता के मुख्य अंग हैं? उसका प्रधान अंग है महिलाओं का आदर और सम्मान। --प्रेमचन्द, कर्मभूमि, पृ० २४५

का माध्यम बनाने की प्रवृत्ति है ।[१] पति पत्नी की व्यापारिक उपयोगिता के बारे में सोचता है । मनोरमा सुतलीवाला की इस हरकत से अन्त तक फुलस जाती है । क्रोध में वह सेठ वदानिया के फ्लैट से निकल आती है । अपने मकान में पहुंच दो घन्टे बराम्दे में ही बैठी है सुतलीवाला की प्रतीक्षा करती रही । सुतलीवाला के आने पर आधा मिनट दोनों ही एक दूसरे के बोलने की प्रतीक्षा में चुप रहे । मनोरमा से न रहा गया -"मैं नहीं समझती की रुपये के लिए कोई आदमी इतना गिर सकता है ?"[२]

सुतलीवाला की दृष्टि में पत्नी की पवित्रता का कोई अर्थ नहीं होता । पत्नी मात्र भौतिक उन्नति में सहयोगिनी है । सुतलीवाला मनोरमा की प्रताड़ना करता है "तुम्हारे घूमने-फिरने, मिलने पर मैंने कभी रोक नहीं लगाई । तुम मेरी कोई बात सहन नहीं कर सकती तो साथ रहने से फायदा क्या है ?[३]

इससे स्पष्ट होता है कि पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावस्वरूप नारी को जो स्वतंत्रता मिली है वह भी पुरुष की दी हुई है और पुरुष के अपने स्वार्थों के लिए है । पति पत्नी को स्वतंत्रता देता है तो अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए, पत्नी के वैयक्तिक विकास के लिए नहीं ।

८. स्वच्छन्द भोग

समानाधिकार और स्वतंत्रता की मांग करने वाली नारी भोग की स्वच्छन्दता में भी पुरुष की बराबरी करने लगी । पाश्चात्य सभ्यता ने पति-पत्नी के सम्बन्धों को परस्परता के स्थान में प्रतिद्वन्द्विता पर आधारित कर दिया । "पति के एकाधिकार को स्वीकार करने के लिए पत्नी तैयार नहीं है ।"[४] सीमाओं की बात है उनका निर्वाह कर सकती है । 'पति अपने स्थान पर है, पर किसी से मानसिक सन्तोष पाने का भी अधिकार न हो, यह वह नहीं मानती ।[५] स्वतंत्रता की इच्छा

---

१. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ० २२३
२. ,, पृ० २२३
३. ,, पृ० २२४
४. यशपाल , झूठा सच, पृ० ५१३
५. ,, ,, ,,

रखने वाली कनक सम्भोगपक्ष में पति के प्रति एकनिष्ठा को स्वीकार कर लेती है। आधुनिक दम्पती- मन को निर्लिप्त रखते हुए भी शरीर को दिया जा सकता है। मनुष्य स्वयं अपने शरीर के एक भाग को 'वस्तु' की तरह दूसरे के हवाले कर सकता है, कुछ देर के लिये के सिद्धान्त को मानकर शारीरिक पवित्रता को भी महत्त्व नहीं देते।[1]

'रेखा' में पाश्चात्य स्वतंत्र भोग के सिद्धान्त से प्रभावित दम्पती का नग्न चित्रण हुआ है। दम्पती अपनी शारीरिक तुष्टि के लिए स्वतंत्र प्रयोग करते हैं। एक दूसरे के विषय में जानते हुए भी चुप रहते हैं। जब तक उनकी सामाजिक स्थिति का प्रश्न नहीं उठता। स्वतंत्र भोग का निकृष्टतम रूप रत्ना के रूप में प्राप्त होता है। रत्ना नारी का भोग्या रूप है। रत्ना अपनी पुत्री शीरी के होने वाले पति निरंजन से भी सम्बन्ध स्थापित करने में संकोच नहीं करती। निरंजन स्वयं रत्ना से अपने होटल के कमरे पर चलने का आग्रह करता है।[2] रत्ना तथा निरंजन के बनते हुए सम्बन्ध पाश्चात्य संस्कृति की कुप्रथा का परिणाम है, जहां सम्बन्धों के औचित्य तथा आयु के औचित्य पर ध्यान नहीं दिया जाता। स्त्री-पुरुष का स्त्री और पुरुष होना ही सार्थक है। इसके अतिरिक्त अन्य सम्बन्धों की सार्थकता लुप्त हो जाती है। रत्ना श्रीमती चावला कहलाने से घृणा करती है।[3] रत्ना का भोग्या रूप इतना प्रबल है कि वह श्रीमती चावला कहलवाकर यह अनुभव नहीं करना चाहती कि वह किसी की पत्नी है, मां है और उसके ऊपर परिवार का उत्तरदायित्व है।

'काले फूल का पौदा' में पाश्चात्य संस्कृति के लक्षण स्वतंत्र भोग में भी परिलक्षित होते हैं। ओम चित्रा से विवाह करता है परन्तु चित्रा की स्वतन्त्रता में बाधा नहीं डालता। पति-पत्नी के मध्य एक समझौता-सा है जो उनके बाह्य सम्बन्धों को प्रश्न नहीं बनने देता। ओम और देवन चित्रा में साझे की पत्नी की व्यवस्था कर लेते हैं।[4]

---

१. देवराज, अजय की डायरी, पृ० ३१६

२. भगवती चरण वर्मा, रेखा, पृ० १५६

३. ,, ,, पृ० १७०

४. लक्ष्मीनारायण लाल - कालेफूल का पौदा, पृ० ८६-६१

देवन का विवाह होता है। ओम के गीता के पास जाने पर देवन किसी प्रकार का विरोध नहीं करता। ओम गीता से स्पष्ट शब्दों में कहता है 'तुममें मेरा हिस्सा है।'[१] गीता का भारतीय परिणीता की भावना-प्रधान हृदय ओम की नीचता को सहन नहीं कर पाता। वह देवन से अपने पूर्ण हृदय की व्यथा कह देती है। ओम की नीच हरकतों को भी देवन 'परिहास' कह कर उपेक्षित कर देता है[२]। गीता का नारीत्व देवन और ओम की सभ्यता से घृणा करने लगता है। विवशता में वह इतना ही कह पाती है 'वह परिहास नहीं था देवन, पाप की भूमिका थी। तुम्हारी मित्रता और तुम्हारे बहुत आगे बढ़े हुए समाज का विष था.... ।[३]

पाश्चात्य प्रभाव में आगे बढ़े हुए समाज का विष राजेन्द्र यादव के 'कुलटा' उपन्यास में स्वीकृत सभ्यता के आधार पर, देवराज के 'अजय की डायरी' में बिखरते सिद्धान्तों में तथा 'अँधेरे बन्द कमरे' में नीलिमा और हरबंस के दाम्पत्य-जीवन में पड़ जाने वाली दरार में व्यक्त होता है।

'कुलटा' में फौजी जीवन की सभ्यता का चित्रण हुआ है। पाश्चात्य प्रभाव से अनुप्राणित सभ्यता में पति अपनी कामुकता को पत्नी और समाज के समक्ष व्यक्त करने में संकोच अनुभव नहीं करता है।[४] कामुकता की अभिव्यक्ति भी सुसंस्कृत होने का एक प्रमाण है। क्लब में डांस करती हुई स्त्रियाँ पुरुषों के पुरुषत्व तक का अनुभव कर लेती हैं।[५]

'अँधेरे बन्द कमरे' का हरबंस नीलिमा को स्वयं आगे बढ़ा कर आधुनिक समाज में लाकर खड़ा कर देता है। स्वच्छन्द हो जाने पर नीलिमा के लिए पुनः परिवार की मर्यादाओं में बंधना असम्भव हो जाता है। हरबंस अपनी गल्तियों को और स्वतंत्रता वादी समाज की त्रुटियों को अनुभव कर हताश हो जाता है।[६] आधु-

---

१. लक्ष्मीनारायण लाल - काले फूल का पौदा, पृ० ८६ -९१, ४६ .
२. ,, ,, ,, पृ० ४६
३. ,, ,, पृ० ४६
४. राजेन्द्र यादव, कुलटा, पृ० ८५
५. ,, ,, पृ० १०५
६. मोहन राकेश, अँधेरे बन्द कमरे, पृ० ५२२

निकता की दौड़ में हरबंस का भारतीय पतित्व कुचलने लगता है। भौतिकता वादी स्वच्छन्द जीवन की परम्परा से ऊब कर वह मरने की कल्पना तक करने लगता है।[१]

'अजय की डायरी' का नायक अजय विदेश जा कर वहां की सभ्यता, स्वच्छन्द भोग और डेटिंग पद्धति से प्रभावित होता है।[२] नारी-शरीर का सुख वह क्रय द्वारा भी प्राप्त करता है और उन्मुक्त भोग की सराहना करता है। परन्तु जब अपने देश में लौट कर स्वच्छन्द भोग का कुपरिणाम भोगती हुई अपनी पत्नी को देखता है, तो उसकी सिद्धान्तवादिता समाप्त हो जाती है।[३] पाश्चात्य भौतिकता के सिद्धान्त उसे व्यर्थ लगने लगते हैं।

## ६. तलाक-प्रथा -

भारतीय विधान में तलाक को वैधानिक मान्यता भी पाश्चात्य प्रभावान्तर्गत प्राप्त हुई है। पीड़ा सहती हुई नारी के प्रति उपन्यासकार के हृदय में करुणा और सहानुभूति उत्पन्न हुई। प्रेमचन्द ने 'गोदान' उपन्यास में मीनाक्षी का उसके ऐयाश पति से सम्बन्ध-विच्छेद अवश्य कराया है परन्तु चित्रण की शैली स्पष्ट करती है कि वे तलाक को दाम्पत्य-जीवन, विशेष रूप से नारी-जीवन के लिए उचित नहीं मानते हैं।[४] यशपाल ने तलाक को नारी की सहायता का अस्त्र माना है।[५] पति द्वारा पीड़ित होती हुई 'झूठा सच' की कनक तारा तथा 'मनुष्य के रूप' की मनोरमा तलाक लेकर मुक्त हो जाती है और पुनर्विवाह करके स्वस्थ जीवन व्यतीत करती है। तलाक के द्वारा पति-पत्नी निरन्तर मिलने वाले मानसिक क्लेश से मुक्त हो जाते हैं।

---

१. मोहन राकेश, अंधेरे बन्द कमरे, पृ० २११
२. डा० देवराज, अजय की डायरी पृ०३१५, ३१६
३. ,, ,, पृ० २२८, २२६
४. प्रेमचन्द - गोदान, पृ० ३०८
५. यशपाल, झूठा सच, पृ० ६७६

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतीय दाम्पत्य-जीवन पर पाश्चात्य संस्कृति का जो प्रभाव पड़ा है, चाहे वह पति-पत्नी के व्यक्तित्व पर हो चाहे परिवार पर, चाहे समाज पर, प्रत्येक दशा का चित्रण हिन्दी-उपन्यासों में प्राप्त होता है। भौतिकता-वादी दृष्टिकोण से यशपाल के अतिरिक्त अन्य कथाकार सहमत नहीं प्रतीत होते। भौतिकतावाद तथा जीवन में अर्थ-प्रधानता पति-पत्नी को प्रतिद्वन्द्वी बनाकर समानान्तर लाकर खड़ी कर देती है, जो भारतीय पारिवारिक जीवन के लिए कल्याणकारी नहीं है। पाश्चात्य स्वतंत्र भोग पद्धति के चित्रण आधुनिक उपन्यासों का कथ्य बन गए हैं। पाश्चात्य द्रुत जीवन की मृगमरीचिका में उलझे हुए दम्पती के जीवन में निराशा, कुण्ठा एवं ऊब दिखाकर आज का कथाकार एक प्रकार से पाश्चात्य प्रणाली के कुपरिणामों से ही अवगत कराता है।

पाश्चात्य प्रभावों से भारतीयता को बचाने की प्रवृत्ति प्रेमचन्द कालीन उपन्यासकारों से लेकर आज तक के उपन्यासकारों में प्राप्त होती है। भारतीय आदर्श दाम्पत्य-जीवन की रचना, आदर्श भारतीय पत्नियों की सर्जना इसका प्रतीक है कि उपन्यासकार भौतिकता के पीछे दौड़ते दम्पती को पुन: भारतीय आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करता है। भारतीय आध्यात्मिक संस्कार पर खड़ा दाम्पत्य-जीवन तभी सुखी बन सकता है जब कि भारतीय पति-पत्नी व्यक्ति बनने के स्थान पर परिवार के जीवन के साथ अपनी आत्मा को मिला देंगे। 'बूंद और समुद्र' के पश्चात् हिन्दी उपन्यासों में ऐसे दम्पती का चित्रण नहीं प्राप्त होता है, जो वर्तमान दिशा-भ्रान्ति की स्थिति में, अपने जीवन से भारतीय संस्कृति के उदात्त रूप को प्रस्तुत कर समाज निर्माण में सहयोग दें।

---

अस्तु

सन् १६१८ से १६७० तक के विस्तृत काल में हिन्दी-उपन्यासों में दाम्पत्य-जीवन के संदर्भ में जिन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है उन पर समग्र रूप से दृष्टि-पात करने के पश्चात् कुछ निष्कर्ष निकलते हैं । 'विवाह', जिसके द्वारा बंधने के पश्चात् नर-नारी सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिये पति-पत्नी बन जाते हैं, के संदर्भ में भिन्न-भिन्न कथाकारों के भिन्न-भिन्न विचारों से एक ही मूल-भाव प्रतिध्वनित होता है कि पति-पत्नी का सम्बन्ध सामाजिक है तथा उनके ऊपर सन्तान, परिवार, समाज, राष्ट्र और इस प्रकार सम्पूर्ण मानवता का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है ।

हिन्दी-उपन्यासों में समाज में प्रचलित भिन्न-भिन्न विवाह-प्रणालियों को स्थान देने के पश्चात् कथाकार 'प्रेम-विवाह' को अधिक स्वस्थ प्रणाली स्वीकार करते हैं यदि यह प्रेम-विवाह मात्र वासनात्मक दृष्टि से सम्पन्न न होकर सामाजिक नैतिकता के निर्माण में सहयोग देने की दृष्टि से किया गया है ।

बहुपत्नीत्व एक प्रथा थी जो समय के अनुसार समाज में उत्पन्न हुई और विकृतियों से ग्रसित होकर सामाजिक समस्या बनगई थी । आज के समाज में बहु-विवाह अवैध है क्योंकि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तथा आर्थिक दृष्टि से यह एक अस्वस्थ प्रणाली है । परन्तु बहुपत्नीत्व का नितान्त व्यक्तिगत कारण-'पुरुष की सम्भोग की विविधता में रुचि'-आज दाम्पत्य-जीवन के संदर्भ में भिन्न रूप लेकर प्रकट हुआ है । आज के उपन्यासों का कथ्य सम्भोग में स्वतंत्रता बन गया है, जो सम्पूर्ण परम्परागत नैतिक मूल्यों पर आघात करने के कारण दाम्पत्य-जीवन की सामाजिक आवश्यकता पर प्रश्न-चिह्न लगा देता है ।

पराधीन भारत में एक ऐसे आदर्श की आवश्यकता थी जो परतंत्र भारतीय जन के लिए स्वस्थ-स्वतंत्र और सुनियोजित समाज की स्थापना कर सके । इसलिए प्रेमचन्दकालीन उपन्यासों में दाम्पत्य-जीवन के संदर्भ में नैतिक आदर्श का आग्रह प्राप्त होता है ।

मनोवैज्ञानिक कथाकारों ने व्यक्ति के अन्दर सोई अनैतिक भावनाओं को कुरेदा है । उनके विचार में दमित अनैतिक भावनाएं ही व्यक्ति की विकृतियों का कारण होती हैं इसलिए उन्होंने यह आवश्यक माना कि व्यक्ति दाम्पत्य-जीवन के अतिरिक्त यदि अन्य सम्बन्ध रखता है तो उसकी विकृतियों का रेचन हो जाता है और व्यक्ति स्वस्थ सामाजिक प्राणी बनता है । फ्रायडी मनोवैज्ञानिक विचार-धारा से प्रभावित उपन्यास व्यक्ति के सामाजिक व्यक्तित्व के निर्माण में सृजनात्मक नहीं वरन् संहारात्मक प्रमाणित हुए । व्यक्ति जिस भावना को अनैतिक मान कर छुपे रूप से तुष्ट करता था उसको अब मनोवैज्ञानिक दृष्टि से साधारण मान कर खुले रूप से तुष्ट करने की ओर अग्रसर हुआ । स्वतंत्र सम्भोग तथा विवाहेतर सम्बन्ध आज के समाज और साहित्य की मुख्य समस्या है । इसके मूल में कारणारूप में मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं जिन्होंने व्यक्ति को मूल प्रवृत्यात्मक जीवन जीने के लिए प्रेरित किया है ।

आज जब व्यक्ति मूल प्रवृत्यात्मक जीवन जीने की ओर उन्मुख हो चुका है तो उसके समक्ष परम्परागत समाज, परिवार और दाम्पत्य-जीवन एक समस्या बन कर उभरे हैं । पुरुष के समान ही नारी शारीरिक सम्बन्धों में अपने को स्वतंत्र मानती है, जिससे परिवार की पवित्रता पर भी प्रश्न-चिह्न लगते हैं । पति-पत्नी एक ही छत के नीचे मिलते हैं पर उनमें नाना प्रश्न और समस्यायें पड़ी हुई रहती हैं । वे विश्वास से चलते हैं पर विश्वास पर एक दबाव बना रहता है । दबाव की स्थिति में पति-पत्नी मात्र शिष्टाचार पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यास वस्तुत: आज के दाम्पत्य-जीवन में पड़ी दरारों, विसंगतियों और विडम्बनाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं ।

स्वतंत्रता के पश्चात् समाज में एक और समस्या ने जन्म लिया वह है 'स्त्री के पुनर्विवाह की समस्या ।' हिन्दी के कथाकारों ने जहां भी इस समस्या को उठाया है उन्होंने पति-पत्नी की कुंठाओं, टूटन और बिखराव के ही चित्रण किये हैं । मोहन राकेश का 'न आने वाला कल' तथा मन्नू भण्डारी का 'आप का बन्टी'

(१६७१) उपन्यास स्त्री के पुनर्विवाह के अस्वस्थ पक्ष को चित्रित करते हैं। समाज में भी पुनर्विवाह बहु प्रचलित प्रथा तो नहीं है फिर भी उसके कतिपय उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि पुनर्विवाह के पश्चात् भी पति-पत्नी स्वस्थ दाम्पत्य-जीवन व्यतीत कर सकते हैं। परन्तु कथाकार व्यक्ति की उन मानसिक उलझनों का चित्रण करता है, जो सामाजिक जीवन में हमारे सामने प्राय: प्रकट नहीं होती हैं। वस्तुत: पुरुष आज भी मध्ययुगीन भावबोध से ही घिरा है। वह स्वयं के लिये स्वतंत्रता चाहता है परन्तु जहां पत्नी का प्रश्न आता है, वह ऐसी पत्नी की इच्छा रखता है जो आधुनिक युग के साथ चलने के पश्चात् भी शारीरिक रूप से पवित्र तथा पति के प्रति एकनिष्ठ हो। दूसरी ओर पत्नी की स्वतंत्रता और समानाधिकार की मांग भी सम्भोग के क्षेत्र में ही सिमट आई है।

अस्तु। कल्पना ( जो प्राचीन आदर्शों से अलग नहीं है ) और वास्तविकता (जो भौतिकवाद से प्रभावित है) की टकराहट से दाम्पत्य-जीवन में उत्पन्न होने वाले मानसिक तनाव, बिखराव, अनास्था तथा अस्तित्ववाद ही आज उपन्यासों का कथ्य बन गये हैं।

पति-पत्नी के बनते-बिगड़ते सम्बन्धों की अस्थिरता को प्रस्तुत करने वाले उपन्यासों के मध्य भी कुछ स्वस्थ उपन्यासों की रचना हुई है, जो जीवन में संघर्ष की प्रेरणा देते हैं, तथा व्यक्ति को निष्ठापूर्वक जीने के लिए उत्साहित करते हैं। फणीश्वर रेणु का 'मैला आंचल' प्रेम और विश्वास के आधार पर टिके दाम्पत्य-जीवन की स्थिरता को प्रस्तुत करता है। दाम्पत्य-जीवन की सामाजिक उपादेयता को स्पष्ट करने वाला एकमात्र उपन्यास 'बूंद और समुद्र' है। दिग्भ्रमित समाज को पुन: मर्यादित और अनुशासित करने के लिए ऐसे ही उपन्यास-साहित्य की आवश्यकता है जो वर्तमान 'अस्वीकृति' और 'विद्रोह' के जीवन में सामाजिक निर्माण में सहयोग देने वाले दम्पती के निष्ठापूर्ण दाम्पत्य-जीवन को प्रतिबिम्बित कर समाज को एक स्वस्थ परम्परा दे सके। इस प्रकार के स्वस्थ दृष्टिकोण का हमारे आज के हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में अभाव है। यदि

इस अभाव का एकमात्र कारण सामाजिक वृत्तियों से अधिक हम उपन्यासकार का व्यक्तिगत दृष्टिकोण मानें तो अनुचित नहीं होगा क्योंकि समाज के प्रति साहित्य-कार भी तो उत्तरदायी है ।

---

# ग्रन्थानुक्रमणिका

## उपन्यास


| | | |
|---|---|---|
| अंचल | चढ़ती धूप | हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन, इलाहाबाद, १९४५ |
| अज्ञेय | शेखर एक जीवनी, भाग १ | सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, १९७० |
| ,, | ,, भाग २ | ,, ,, १९६१ |
| अमरकान्त | काले उजले दिन | वोरा एण्ड कम्पनी, इलाहाबाद, १९६९ |
| ,, | दीवार और आंगन | अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६६ |
| अमृतलालनागर | अमृत और विष | लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६८ |
| ,, | बूंद और समुद्र | किताब महल, लखनऊ, १९७३ |
| ,, | महाकाल | भारती भण्डार, इलाहाबाद, १९४७ |
| ,, | सात घूंघट वाला मुखड़ा | राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९६८ |
| ,, | सुहाग के नूपुर | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६५ |
| इलाचन्द्र जोशी | निर्वासित | भारती भण्डार, इलाहाबाद, १९४६ |
| ,, | लज्जा | ,, ,, सं० २०१४ |
| ,, | सन्यासी | भारती-भण्डार, इलाहाबाद, १९४९ |
| उग्र | जीजी जी | आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५५ |
| उपेन्द्रनाथ अश्क | गिरती दीवारें | नीलाभ प्रकाशन, लखनऊ, १९५७ |
| उषादेवी मित्रा | जीवन की मुस्कान | सरस्वती प्रेस, बनारस, १९४५ |
| ,, | पिया | सरस्वती प्रेस, बनारस, १९४५ |
| ,, | वचन का मोल | सरस्वती प्रेस, बनारस, १९४५ |
| कृष्णा बल्देव वैद्य | उसका बचपन | सरस्वती प्रेस, बनारस, १९५७ |
| कृष्णा सोबती | डार से बिछुड़ी | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली १९७२ |
| गंगाप्रसाद विमल | अपने से अलग | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६९ |
| गुरुदत्त | बहती रेता | भारतीय साहित्य सदन, दिल्ली, १९५१ |
| चतुरसेन शास्त्री | धर्मपुत्र | राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५४ |
| ,, | पत्थर युग के दो बुत | राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५९ |
| ,, | बगुला के पंख | ,, ,, , १९५९ |

| | | |
|---|---|---|
| जयशंकर प्रसाद | तितली | भारती भंडार, इलाहाबाद, १६६५ |
| जैनेन्द्र कुमार | कल्याणी | हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, दिल्ली, १६४६ |
| ,, | त्यागपत्र | ,, बम्बई, १६३७ |
| ,, | परख | ,, ,, १६४१ |
| ,, | व्यतीत | पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, १६६२ |
| ,, | सुखदा | ,, ,, १६५२ |
| ,, | सुनीता | हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, दिल्ली, १६५६ |
| देवराज | अजय की डायरी | राजपाल एण्ड सन्स, १६६० |
| ,, | बाहर भीतर | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १६५४ |
| धर्मवीर भारती | गुनाहों का देवता | भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, १६७३ |
| नरेश मेहता | डूबते मस्तूल | आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, १६५४ |
| " | दो एकान्त | लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १६६८ |
| " | धूम केतु: एक श्रुति | नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १६६२ |
| " | प्रथम फाल्गुन | वोरा एण्ड कम्पनी, इलाहाबाद, १६६८ |
| " | यह पथ बन्धु था | ईशान प्रकाशन, इलाहाबाद, १६७१ |
| प्रतापनारायण श्रीवास्तव | वंदिता | हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, १६६८ |
| ,, | विकास | गंगापुस्तक माला, लखनऊ, १६४६ |
| ,, | विजय | ,, ,, १६३७ |
| ,, | विदा | ,, ,, १६२७ |
| प्रेमचन्द | कर्मभूमि | सरस्वती प्रेस, बनारस, १६४६ |
| ,, | कायाकल्प | ,, इलाहाबाद, १६६४ |
| ,, | गबन | हंस प्रकाशन इलाहाबाद, १६७१ |
| ,, | गोदान | सरस्वती प्रेस, बनारस, १६७२ |
| ,, | निर्मला | हंस प्रकाशन, १६६६ |
| ,, | प्रेमाश्रम | सरस्वती प्रेस, वाराणसी, १६२१ |
| ,, | रंगभूमि | ,, इलाहाबाद, १६६५ |
| ,, | सेवासदन | सरस्वती प्रेस, बनारस, १६१७ |

| | | |
|---|---|---|
| फणीश्वर रेणु | मैला आंचल | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७३ |
| भगवती चरण वर्मा | टेढ़े मेढ़े रास्ते | लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९४८ |
| ,, | रेखा | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६४ तथा ६६ |
| भगवतीप्रसाद बाजपेयी | एक प्रश्न | हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली, १९६६ |
| ,, | उनसे न कहना | ,, १९६६ ई० |
| ,, | सपना बिक गया | प्रभात प्रकाशन मथुरा, १९६६ |
| मोहन राकेश | अंधेरे बन्द कमरे | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६१ |
| ,, | न आने वाला कल | राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली १९६८ |
| यज्ञदत्त शर्मा | परिवार | साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, १९५५ |
| यशपाल | झूठा सच, भाग १ | विप्लव प्रकाशन, ~~दिल्ल~~ लखनऊ, १९५८ |
| ,, | ,, भाग २ | ,, १९६३ |
| ,, | दिव्या | ,, १९५८ |
| ,, | देशद्रोही | ,, १९५३ |
| ,, | मनुष्य के रूप | लोक भारती प्रका० इलाहाबाद, १९७२ |
| यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र | अपने अपने दायरे | सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली १९७१ |
| ,, | एक और मुख्यमंत्री | नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली १९६६ |
| ,, | सपना | राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली १९५६ |
| रमेश बक्षी | अठारह सूरज के पौधे | भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली १९६५ |
| ,, | चलता हुआ लावा | पारिजात प्रकाशन, दिल्ली-१९६८ |
| रांगेय राघव | पक्षी और आकाश | राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, १९५८ |
| ,, | पथ का पाप | ,, १९६० |
| राजकमल चौधरी | देहगाथा | पारिजात प्रकाशन, दिल्ली, १९६६ |
| राजेन्द्र अवस्थी | सूरज किरन की छांव | राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५६ |
| राजेन्द्र यादव | कुलटा | हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली, १९५८ |
| ,, | सारा आकाश | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६० |
| राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी | एक इंच मुस्कान | राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, १९६३ |

| | | |
|---|---|---|
| लक्ष्मीनारायण लाल | काले फूल का पौदा | भारती भंडार, इलाहाबाद, १९५५ |
| वृन्दावन लाल वर्मा | अचल मेरा कोई | मयूर प्रकाशन, झाँसी, १९४६ |
| ,, | कचनार | ,, ,, १९५४ |
| ,, | कुण्डली चक्र | ,, ,, १९५६ |
| ,, | गढ़ कुण्डार | ,, ,, १९२७ |
| ,, | मृगनयनी | ,, ,, १९५० |
| शानी | नदी और सीपियाँ | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७० |
| शैलेश मटियानी | चौथी मुट्ठी | आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९६२ |
| सर्वेश्वरदयाल सक्सेना | सोया हुआ जल | भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५६ |

आलोचनात्मक-ग्रन्थ

| | | |
|---|---|---|
| उषा सक्सेना | हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास | शोध साहित्य प्रका०, इलाहाबाद, १९७३ |
| उर्मिला गम्भीर | प्रतापनारायण श्रीवास्तव के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन | आर्य बुक डिपो, दिल्ली, १९७२ |
| ओम अवस्थी | प्रेमचन्द के नारी पात्र | नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६२ |
| कुसुम वार्ष्णेय | भगवती चरण वर्मा ( चित्रलेखा से सबहिं नचावत राम गोसाईं तक ) | साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९६८ |
| कृष्णा बिहारी मिश्र | आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य | आर्य बुक डिपो, दिल्ली, १९७२ |
| गंगाप्रसाद पाण्डेय | हिन्दी कथा साहित्य | भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० २००८ |
| गीतालाल | प्रेमचन्द का नारी चित्रण | हिन्दी साहित्य संसार, पटना, १९६५ |
| चण्डीप्रसाद | हिन्दी उपन्यास- समाजशास्त्रीय विवेचन | अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर १९६२ |

| | | |
|---|---|---|
| जनार्दनप्रसाद द्विज | प्रेमचन्द की उपन्यास कला | वाणी मन्दिर, छपरा, १९३३ |
| जयनारायण | उपन्यास के मूल तत्व | अजंता प्रेस, पटना, सं० २०१० |
| जितेन्द्रनाथ पाठक | कथाकार प्रेमचन्द और गोदान | सरस्वती प्रेस, बनारस, १९५५ |
| त्रिभुवन सिंह | हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद | ओमप्रकाश वेदी, बनारस, १९५५ |
| ,, | हिन्दी साहित्य एक परिचय | हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, ६८ |
| त्रिलोकी नारायण दीक्षित | प्रेमचन्द ~~साहित्य~~ | साहित्य निकेतन, कानपुर, १९५२ |
| देवराज | जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन | पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली १९६८ |
| ,, | साहित्य एवं शोध : कुछ समस्याएं | अनुपम प्रकाशन, जयपुर, १९७० |
| धनराज मानधाने | हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास | रामबाग, कानपुर १९७१ |
| नगेन्द्र | आस्था के चरण | नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली १९६८ |
| प्रताप नारायण टंडन | हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास | हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, १९६० |
| ,, | हिन्दी उपन्यासों में कथाशिल्प का विकास | हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, १९५९ |
| बैचन एम०ए० | आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास | सन्मार्ग प्रका०, दिल्ली १९६५ |
| बिन्दु अग्रवाल | हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण | राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९६८ |
| ब्रजनारायण शर्मा | हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन | नवयुग प्रकाशन, लखनऊ, १९६० |
| भारतभूषण अग्रवाल | हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव | ऋषभचरण जैन, दिल्ली, १९७१ |

मंजुलता सिंह — हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग — आर्य बुक डिपो, दिल्ली १९७१

महेन्द्र चतुर्वेदी — हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण — नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६२

मुकुन्द द्विवेदी — हिन्दी उपन्यास युग चेतना और पाठकीय संवेदना — लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७०

मोहन अवस्थी — हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास — सरस्वती प्रेस, दिल्ली १९७०

रामप्रकाश कपूर — हिन्दी के सात युगान्तकारी उपन्यास — नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, १९५८

रामरतन भटनागर — कलाकार प्रेमचन्द — किताब महल, इलाहाबाद, १९४८

रामलखन चतुर्वेदी तथा लक्ष्मीनारायण टंडन — मृगनयनी समीक्षा — हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, १९५५

रामविनोद सिंह — हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में नारी चित्रण — शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७३

राम विलास शर्मा — प्रेमचन्द और उनका युग — मेहरचन्द मुरार जी राम, दिल्ली १९५३

,, — साहित्य के स्थायी मूल्य और मूल्यांकन — अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, १९६८

रामविलास शर्मा — स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य — हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, १९५६

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास — राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९७३

" — २० वीं, शताब्दी हिन्दी साहित्य नए संदर्भ — साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९६६

" — हिन्दी उपन्यास उपलब्धियां - राधाकृष्ण प्रका०, दिल्ली, १९६९

" — हिन्दी साहित्य का इतिहास-महामना प्रकाशन मन्दिर, इला०, ६४

लाल साहब सिंह — डा० रांगेय राघव और उनके उपन्यास — अनुपमा प्रकाशन, बम्बई, १९७२

वाचस्पति गैरोला — कामसूत्र परिशीलन — संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६७

विनोद शंकर व्यास — उपन्यास कला — हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, १९५०

,, — प्रसाद और उनका साहित्य — हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस, सं०२००१

शशिभूषण सिंहल — उपन्यासकार वृन्दावन-लाल वर्मा — विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९६०

शिवरानी देवी — प्रेमचन्द घर में — सरस्वती प्रेस, बनारस

सत्येन्द्र — मृगनयनी कला और कृतित्व — साहित्य प्रकाशन, ग्वालियर, १९५३

सुरेश सिन्हा — हिन्दी उपन्यास — लोक भारती प्रकाशन, १९७२

,, — हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना — अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९६४

## अन्य सहायक-ग्रन्थ

के०एम० कपाड़िया — भारत वर्ष में विवाह एवं परिवार — सुन्दरलाल जैन, दिल्ली
( अनु० हरिकृष्ण रावत)

कैलाशनाथ शर्मा तथा शम्भूरत्न त्रिपाठी — पारिवारिक समाजशास्त्र — किताब महल, इलाहाबाद, १९६२

गंगाप्रसाद उपाध्याय — विधवा विवाह मीमांसा — चांद-कार्यालय, इलाहाबाद, १९२६

गोपीनाथ कविराज — भारतीय संस्कृति और साधना — बिहार राष्ट्रभाषा परि०, पटना, १९६३

जैनेन्द्र कुमार — इतस्तत: — पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, १९६२

,, — समय और हम — ,, ,, १९६२

,, — समय और समस्या, और सिद्धान्त — ,, ,, १९७१

| | | |
|---|---|---|
| डी०एन० मजूमदार | भारतीय संस्कृति के उपादान | एशिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली १९५८ |
| बर्ट्रेन्ड रसेल | विवाह और नैतिकता (अनु० धर्मपाल) | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली |
| ब्रैड फोर्ड स्मिथ | अमेरिका की संस्कृति (अनु० कृष्णाचन्द्र) | यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस, नईदिल्ली १९५४ |
| महात्मा गान्धी | विवाह और समस्या अर्थात स्त्री जीवन | मातृभाषा मन्दिर, दारागंज, १९६८ |
| मोहनलाल महतो | जातक कालीन भारतीय संस्कृति | बिहार राष्ट्रभाषा परि०, पटना, १९५८ |
| रांगेय राघव और प्रो० श्याम वर्मा | सामाजिक समस्याएं और विघटन | विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९६१ |
| राजबली पाण्डे | हिन्दू संस्कार | चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, सं०२०१४ |
| राधाकृष्णानन् | धर्म और समाज (अनु० विराज एम०ए०) | राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली १९६१ |
| रामचन्द्र शुक्ल | चिंतामणि (भाग १) | इण्डियन प्रैस इलाहाबाद, १९७३ |
| राममनोहर लोहिया | जाति प्रथा | नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, १९६४ |
| लालजी राम शुक्ल | आधुनिक मनोविज्ञान | काशी मनोविज्ञान शाला, बनारस १९५७ |
| ,, | सरलमनोविज्ञान | नन्दकिशोर, एण्ड ब्रदर्स, १९५७ वाराणसी |
| वुड वर्थ | मनोविज्ञान (अनु० उमापतिराय चंदेल) | अपर इण्डिया हाउस, दिल्ली, १९५२ |
| वैस्टर मार्क | विवाह और समाज (अनु०शम्भूरतन त्रिपाठी) | समाजशास्त्र संसद, कानपुर |
| सम्पूर्णानन्द | हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान | भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९५४ |
| हरिदत्त वेदालंकार | भारत का सांस्कृतिक इतिहास | आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, १९५२ |

संस्कृत - ग्रन्थ

| | | |
|---|---|---|
| अग्नि पुराण | पं० श्रीरामशास्त्री जी आचार्य | संस्कृत संस्थान, बरेली |
| अर्थशास्त्र(कौटिल्य) | वाचस्पति गैरोला | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १६६२ |
| कामसूत्र (वात्स्यायन) | | |
| दक्ष स्मृति | अथाष्टादशस्मृतय: | श्रीवेंकटेश्वर छापाखाना, बम्बई, सं० १६५१ |
| मनुस्मृति: | पं० हरिगोविन्द शास्त्री | चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफिस, वाराणसी |
| याज्ञवल्क्य स्मृति: | उमेशचन्द्र पाण्डेय | चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, १६६७ |
| यजुर्वेद संहिता | शिवचन्द्र ... | वैदिक संस्थान गुरुकुल विद्यालय |

पत्रिकाएं

| | | |
|---|---|---|
| आलोचना | उपन्यास विशेषांक | अक्टूबर-दिसम्बर, १६५४, अप्रैल-जून, १६६७ |
| धर्मयुग | | अगस्त, १६७४ |
| युग चेतना | | अप्रैल १६५७ |
| सरस्वती | | अगस्त १६७०, मार्च, १६७१ |
| हिन्दुस्तानी त्रैमासिक शोध पत्रिका | | जनवरी मार्च, १६७२ |

शोध-प्रबन्ध

सामाजिक परिवे और उसका आधुनिक हिन्दी साहित्य पर प्रभाव
( १६२ - १६४७ ) विश्वनाथप्रसाद खत्री-प्रयाग, विश्ववि० १९६०

हिन्दी उपन्याससाहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन
(प्रारम्भ से १६४ तक प्रेमचन्द को छोड़ कर) रमेश तिवारी, १६७१ प्र० वि० वि०

---

अंग्रेजी ग्रन्थ

बैबर मैरिज एण्ड द फैमिली लन्दन, १६५३

भगवानदास- द साइन्स आफ द इमोशन्स इण्डिया, १६००

एडवर्ड वैस्टर मार्क - द हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरिज - लन्दन, १६२५

,, ,, ए शार्ट हिस्ट्री आफ मैरिज लन्दन, १६२६

जान जे०बी० मारगन - ऐन इन्ट्रोडक्शन टु एण्ड ए०आर० गिलीलैण्ड साइकालॉजी न्यूयार्क १६२७

मार्गरेट कारमैक हिन्दू वोमन न्यूयार्क- १६५३

डबल्यू चार्ल्स लूजमोर आवर सैल्व्स एण्ड आवर इमोशन्स लन्दन, १६२८


---